खंड 4
स्थानीय शासन के प्रकार

खंड 4 स्थानीय शासन के प्रकार

खंड परिचय

इस खण्ड में ग्रामीण तथा शहरी स्थानीय सरकार की रचना, कार्यों और भूमिका के सहित विशेषकर संविधान के 73वें और 74वें संशोधनों की चर्चा की जाएगी। इसमें ग्रामीण तथा शहरी संस्थाओं और कार्यकर्त्ताओं के क्षमता निर्माण की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला जाएगा।

इकाई 12 : स्थानीय शासन का विकास (73वें और 74वें संविधान संशोधन से पहले)

इस इकाई में विद्यार्थी भारत में स्थानीय शासन के उद्गम की जानकारी प्राप्त करेंगे। इसमें स्थानीय सरकारी निकायों के विकास, स्थानीय सरकार पर विभिन्न समितियों द्वारा उठाए गए कदमों तथा 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों से पूर्व स्थानीय सरकार की पहचान की गई कमज़ोरियों पर भी चर्चा की गई है।

इकाई 13 : 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों की विशेषताएँ

इस इकाई में हम स्थानीय सरकार के अनिवार्य तत्वों की पृष्ठभूमि की चर्चा करेंगे। हम 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों की विशेषताओं की पहचान, आर्थिक सुधारों के पश्चात् उठाए गए कदमों की चर्चा और संशोधन के बाद विभिन्न राज्यों में स्थानीय सरकार के कार्यों पर प्रकाश भी डालेंगे।

इकाई 14 : ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं की संगठनात्मक संरचना

गाँव, खण्ड और जिला स्तरों पर स्थानीय सरकारी संस्थाओं की रचना या उद्गम पंचायती राज में समाविष्ट हैं। ये ग्राम विकास में बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इस इकाई में हम ग्रामीण स्थानीय निकायों की संरचना की चर्चा करेंगे, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण तथा राष्ट्रीय, राज्य, जिला, प्रखण्ड अथवा ब्लाक और ग्राम स्तर पर पंचायती राज प्रणाली की संरचना को समझने का प्रयास करेंगे।

इकाई 15 : शहरी स्थानीय निकायों की संगठनात्मक संरचना

1992 में लागू किया गया संविधान का 74वाँ ऐतिहासिक संशोधन एक प्रमुख नीति निर्देशक अधिनियम था, यह शहरी स्थानीय सरकार के जीवन और कार्यों में बदलाव का महत्त्वपूर्ण मोड़ था। इस इकाई में हम भारत में शहरी स्थानीय सरकार के ऐतिहासिक विकास को समझ सकेंगे और शहरी स्थानीय सरकार की संगठनात्मक संरचना की रूपरेखा प्रस्तुत करेंगे। हम 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के अंतर्गत अथवा उसको ध्यान में रखते हुए शहरी स्थानीय सरकार की भी चर्चा करेंगे।

इकाई 16 : अंतर-स्थानीय सरकार संबंध – I : ग्रामीण

73वें संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा स्थानीय शासन में प्रमुख संरचनात्मक परिवर्तन अधिनियमित किए गए हैं। इस इकाई में हम स्थानीय सरकारी निकायों की विभिन्न श्रेणियों या स्तरों के बीच अंतःसंबंधों की चर्चा करेंगे और संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची के अनुसार अन्तःस्तरों के उत्तरदायित्वों के संबंध में विद्यार्थियों को अवगत भी कराएँगें तथा अन्तः स्तरों के बीच कार्यान्वयन में आने वाली बाधाओं का विश्लेषण करेंगे।

इकाई 17 : अंतर-स्थानीय सरकार संबंध – II : शहरी

शहरी स्थानीय सरकार में विभिन्न स्तरों के बीच श्रेणीबद्ध पदानुक्रम की व्यवस्था नहीं होती है, प्रत्येक स्तर या श्रेणी के संगठन सीधे ही राज्य सरकार के अंतर्गत कार्य निष्पादन करते हैं। इस इकाई में हम अन्तःस्तरीय स्थानीय सरकार संबंधों में प्रमुख मुद्दों की पहचान करेंगे तथा बहुकेन्द्रियता के संबंध में विशेष रूप से चर्चा करेंगे। हम कार्यात्मक उत्तरदायित्वों के विभाजन, सरकार के विभिन्न स्तरों के बीच संबंधों एवं शहरी स्थानीय सरकार के विभिन्न स्तरों की भी चर्चा करेंगे।

MPA-016 (H) Book-1

इकाई 12 स्थानीय शासन का विकास (73वें और 74वें संविधान संशोधन से पहले)

रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 ऐतिहासिक परिदृश्य

12.3 स्वाधीनता उपरान्त विकास क्रम

12.3.1 स्वाधीनता उपरान्त उठाए गए कदमों की संक्षिप्त समीक्षा

12.4 विभिन्न उपायों का कालानुक्रम

12.5 नई पंचायती राज व्यवस्था की कमजोरी

12.6 भारत में शहरी स्थानीय शासन का विकास

12.7 शहरी शासन के मुद्दे

12.8 सारांश

12.9 मुख्य अवधारणाएँ

12.10 संदर्भ व अन्य लेख

12.11 अभ्यास

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- भारत में स्थानीय शासन की उत्पत्ति (origin) को समझ सकेंगे;
- पंचायती राज संस्थाओं के विकास की व्याख्या कर सकेंगे;
- स्थानीय शासन पर विभिन्न समितियों द्वारा उठाए गए कदमों की विवेचना कर सकेंगे; और
- 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों से पहले स्थानीय शासन में पाई जाने वाली कमज़ोरियों की पहचान कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

"मानव संस्थाएँ कालांतर में विकसित होती हैं और इस प्रक्रिया में लोगों की परम्पराओं और स्वभाव से साथ समायोजन कर लेती हैं" (लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण पर बनी समिति की रिपोर्ट, महाराष्ट्र सरकार, 1969)। इसलिए विशिष्ट ऐतिहासिक संदर्भ के अंतर्गत स्थानीय स्वशासन संस्थाओं की कार्य प्रणाली को समझना प्रासंगिक हो जाता है। इतिहास से विभिन्न कालों में स्थानीय स्वशासन के ऐतिहासिक विकास और उनके कार्यों के अध्ययन से बनी समझ के चलते आप उनकी वर्तमान कार्य

प्रणाली को बेहतर ढंग से समझ पाते हैं और उसमें और सुधार के सुझाव दे सकते हैं। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण में यह संभावना होती है कि वह जमीनी स्तर पर लोगों को उनसे संबद्ध नीतिगत विकल्पों और प्रशासनिक महत्त्व के अन्य मामलों में संलिप्त करके वास्तविक लोकतंत्र को प्रभावित कर सकती है। क्योंकि, जमीनी स्तर पर ही नीतियों का वास्तविक कार्यान्वयन होता है और उनके परिणाम प्राप्त होते हैं और वहीं योजनाओं तथा परियोजनाओं की सफलता-विफलता का आकलन हो सकता है।

इस इकाई में हम भारत में, स्वाधीनता से पूर्व और उसके बाद, स्थानीय स्वशासन के विकास का अध्ययन करेंगे। ग्रंथ हमें बताते हैं कि भारत के लिए न तो लोकतंत्र और न लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा ही अपरिचित है। एक अंतराल रहा जब शासन में स्थानीय स्वायत्तता का स्थान केन्द्रीकृत प्रशासनों ने ले लिया। किन्तु स्वाधीनता उपरान्त हुए लगातार प्रयासों के बाद स्थानीय प्रशासन की वांछित तीन-स्तरीय व्यवस्था स्थापित हो गई।

12.2 ऐतिहासिक परिदृश्य

गाँव के स्तर पर स्थानीय स्वशासन की एक संस्था के रूप में पंचायतों की उत्पत्ति प्राचीन भारत में हुई। इन ग्राम पंचायतों अथवा ग्राम संघों के सदस्य गाँव के सयाने लोग होते थे और ये निकाय प्रशासनिक और न्यायिक कार्य करते थे। मनु स्मृति, महाभारत और कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* (400 ई. पू.) में भी हमें ग्राम संघों का छिटपुट उल्लेख मिलता है। महाभारत के "शांति पर्व" में "संसद" नाम की एक सभा का भी उल्लेख मिलता है। इसमें आम लोग होते थे, इसलिए इसे "जन संसद" कहा जाता था। बाल्मीकि की रामायण में गणपद की बात कही गई है जो ग्राम गणराज्यों का एक तरह का परिसंघ था। इसके सदस्य केवल वे लोग हो सकते थे जिनके मन में लोगों के आम कल्याण की भावना होती थी (कश्यप, 2003)।

उत्तर-पश्चिम से होने वाले आक्रमणों के बाद स्थानीय स्वशासी संस्थाएँ नष्ट-भ्रष्ट हो गईं। मध्य युग में उनकी पुनः स्थापना के अधिक प्रयास नहीं हुए। मुगल शासन अत्यधिक केन्द्रीकृत था। गाँवों में केवल राजस्व उगाही के लिए पैठ की जाती थी, प्रशासनिक उद्देश्य से बहुत कम। अंतिम नियंत्रण तो सम्राट के हाथों में होता था, किन्तु मुगलों के अभिजात्य वर्ग के सदस्य-जागीरदार और जमींदार-किसानों से संपर्क साधते थे, किन्तु उनके शोषण के लिए। इससे ग्राम्यांचल में कृषि सम्बन्ध जटिल हो गए। अंग्रेजों की पूर्ववर्ती मुगल प्रशासन व्यवस्था में अत्यधिक नौकरशाह प्रकृति के छोटे-बड़े अधिकारी थे। अंग्रेजों ने इस प्रशासनिक व्यवस्था का भरपूर उपयोग करते हुए अपनी आवश्यकतानुसार ज़रूरी बदलाव किए। अंग्रेजों के शासनकाल में जो प्रशासनिक और राजनीतिक सुधार हुए वे अधिकतर व्यापारिक हितों को ध्यान में रखकर ही किए गए। फैलते व्यापार और निजी संपत्ति के चलते यह ज़रूरी हो गया कि अनुबंध के दायित्वों को लागू करने के लिए कानून का शासन और आधिकारिक तंत्र हो। इसलिए, समय-समय पर राजनीतिक और प्रशासनिक सुधार किए गए, जिनमें अंग्रेजी सिद्धान्त और अभ्यास के अनुसार स्थानीय स्वशासी संस्थाओं की स्थापना भी शामिल थी। उनमें स्थानीयता का रंग तो नहीं था, फिर भी वे थीं।

भारत के "सामंतीकरण" (Feudalisation) का श्रेय मुख्यतः गुप्त काल को जाता है, जिसमें पूर्ववर्ती मौर्य साम्राज्य के केन्द्रीकृत शासन की जगह एक विकेन्द्रीकृत व्यवस्था आ गई। गुप्त काल में, अभिजात्य वर्ग ने भूमि के अधिकार प्राप्त कर लिए और प्रजा पर सत्ता जमा ली। इस अल्पतंत्र का सम्राट पर काफी प्रभाव था, क्योंकि लड़ाई के समय वे सैन्य सहायता और सहयोग के लिए उन्हीं पर निर्भर रहता था। यह स्थिति हर्ष के शासन के दौरान जारी रही, और बाद में बिगड़ गई। बारहवीं शताब्दी आते-आते भारत एक परस्पर जुड़ा हुआ राज्य तंत्र नहीं रह गया था और उसमें असंख्य कबीले और "प्रभुता" (Paramountcy) के लिए चलने वाली अंतहीन लड़ाइयाँ थीं। किन्तु, प्रभुता, बहुत बाद में जाकर, अंग्रेजों

ने हासिल की। उन्होंने, स्पष्ट तौर पर अपने निजी लाभ के लिए ही सही, "राष्ट्र-राज्य" को मजबूत किया और शासन की आधुनिक व्यवस्थाएँ लागू कीं। अंग्रेज शासकों ने पहली बार केन्द्रीकरण के दौर को पलटने का विचार 1882 में ही किया जब रिपन की सरकार ने स्थानीय स्वशासन की दिशा में कदम उठाने का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव में प्रान्तीय सरकारों से कहा गया था कि वे "स्थानीय परिषदों" का एक तंत्र स्थापित करें, जिसके पास पूरे देश में निश्चित कोष हों।

तदनुसार, लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण (ग्रामीण स्थानीय शासन) का वर्तमान विचार लॉर्ड मेयो प्रस्ताव (1870) और लॉर्ड रिपन प्रस्ताव (1882) का परिणाम है। विकेन्द्रीकरण पर रॉयल कमीशन की रिपोर्ट (1909), और 1919 तथा 1935 के भारत सरकार के अधिनियमों ने इस दिशा में और अधिक योगदान किया (मलिक, 2002)।

अंग्रेजी हुकूमत ने, अपने राजनीतिक नियंत्रण को बरकरार और स्थिर रखने के विचार से, अनेक कदम उठाए और ग्राम पंचायतों को मान्यता दी। 1909 में स्थानीय स्वशासन पर एक विशेष आयोग नियुक्त किया गया, जिसने स्थानीय मामलों को निपटाने के लिए ग्राम पंचायतों को फिर से अनुप्राणित करने की ज़रूरत को इंगित किया। विकेन्द्रीकरण आयोग ने 1909 में अपनी रिपोर्ट दी जिसमें उसने स्थानीय परिषदों की कार्य प्रणाली की कुछ कमियों को दूर करने के लिए सुझाव दिए। 1915 में एक सरकारी प्रस्ताव ने आयोग के प्रस्तावों का समर्थन कर दिया। किन्तु, प्रान्तीय सरकारों ने एक बार फिर इस मामले में कोई कदम नहीं उठाए। 1917 की मांटेग्यू घोषणा में क्रमशः स्थानीय निकायों से शुरू करते हुए ज़िम्मेदार शासन चालू करने की बात कही गई थी, और उसके बाद 1918 में भारत सरकार ने एक प्रस्ताव जारी किया, और प्रान्तीय द्विशासन की योजना के अंतर्गत 1919 तक ग्रामीण स्वशासन को भारतीय मंत्रिमंडलों के प्रभार में दे दिया गया। कुछ प्रगति हुई। नगरनिगम और स्थानीय परिषद अधिनियमों के अतिरिक्त, लगभग सभी प्रान्तों में गाँवों में पंचायतें बनाने के लिए, कानून पारित किए गए (हेनरी, 1970)।

बाद में, गाँवों के मामलों और उनके विकास से सम्बन्धित कुछ मामलों को देखने के लिए अनेक अधिनियम पारित किए गए – जैसे 1919 का बंगाल ग्राम स्वशासन अधिनियम, 1920 का मद्रास, बम्बई और संयुक्त प्रान्त ग्राम पंचायत अधिनियम; 1926 का असम ग्रामीण स्वशासन अधिनियम; बिहार और उड़ीसा ग्राम प्रशासन अधिनियम; 1935 का पंजाब ग्राम पंचायत अधिनियम आदि। भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अंतर्गत प्रांतीय स्वायत्तता लागू की गई और अप्रैल 1937 से प्रांतों में चालू हो गई। कांग्रेस सरकारों ने ग्यारह में से आठ प्रान्तों में कार्य भार संभाला। कांग्रेसी राज के दौरान ग्राम पंचायत की दिशा में काफी प्रगति हुई। गांधीजी की जनवरी 1948 की योजना के अनुसार, प्रत्येक ग्राम पंचायत में एक निर्वाचित नेता वाली सक्रिय पार्टी होनी थी। ग्राम पंचायत के ऊपर अप्रत्यक्ष तौर पर निर्वाचित निकायों – तालुका और जिला पंचायतों – का स्थान था, जिनमें से प्रत्येक में अगली निम्नतर पंचायत के सरपंच होते थे। जिला और नगर (Municipal) पंचायतों के सदस्यों से प्रांतीय पंचायत बनती थी। राष्ट्रीय पंचायत की ज़िम्मेदारी के दायरे में रक्षा, मुद्रा, कस्टम, राष्ट्रीय महत्त्व के प्रमुख उद्योगों का संचालन और प्रान्तीय आर्थिक विकास योजनाओं का समन्वयन आता था (एन.वी. राज, 1948)।

किन्तु इन अधिनियमों के अंतर्गत गठित पंचायतें लोकतान्त्रिक निकाय नहीं थीं क्योंकि अधिकतर सरकार ही उनके सदस्यों को नामजद करती थी। उनको दिए गए अधिकार बहुत कम थे और उनके वित्तीय संसाधन भी सीमित थे। अंग्रेज़ी शासन काल में पंचायतों की प्रस्थिति पर टिप्पणी करते हुए मैडिक (Maddick) ने कहा है, *"अधिक गंभीर मामलों में पंचायतों के पारंपरिक अधिकारों के स्थान पर रोमन न्याय बोध का प्रयोग करने वाले, अपनी कर संग्रह और प्रशासन की व्यवस्था वाले अंग्रेज़ी प्रशासन में इतना भीषण प्रभाव डाला कि गाँवों का सामूहिक जीवन कमजोर हो गया और अधिकांश मामलों में तो "मर गया"*।

12.3 स्वाधीनता उपरान्त विकास क्रम

ग्रामीण निकायों को और अधिक स्वायत्तता देने की दलील को उस समय अवधारणात्मक मजबूती मिली जब राष्ट्रीय परिदृश्य में महात्मा गांधी का प्रादुर्भाव हुआ और उन्होंने स्वायत्त ग्रामीण संगठनों के माध्यम से राष्ट्रीय विकास के सिद्धान्त की वकालत की, और इसे प्राचीन भारत में प्रचलित पंचायत व्यवस्था के अनुसार ढालने की कोशिश की। उन्होंने पंचायतों, तालुका पंचायतों, जिला पंचायतों, प्रान्तीय पंचायतों और अखिल भारतीय पंचायतों की पाँच-स्तरीय व्यवस्था की संकल्पना की। उन्होंने जिस प्रशासनिक व्यवस्था की संकल्पनां की वह पिरामिड के आकार की थी, जिसका व्यापक आधार देश के असंख्य ग्राम समुदायों से बना था।

महात्मा गांधी ने 1946 में ठीक ही कहा था कि भारतीय स्वाधीनता सबसे नीचे से शुरू होनी चाहिए और प्रत्येक गाँव की पंचायत का गणराज्य होना चाहिए, जिसके पास शक्तियाँ, अधिकार हों। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि संविधान सभा में ये माँगें उठीं कि स्थानीय स्तर पर पंचायती शासन व्यवस्था को बहाल किया जाए। स्वाधीनता के शीघ्र बाद, कुछ प्रान्तों ने पंचायती राज अधिनियम पारित कर दिए थे और ग्राम पंचायतों को ग्रामीण स्वशासन की इकाइयों के रूप में संगठित करने हेतु और उन्हें प्रशासन के कुछ अधिकार और शक्तियाँ देने हेतु कदम उठाए थे।

एस. एन. अग्रवाल द्वारा प्रारूपित *"स्वतंत्र भारत हेतु गांधीवादी संविधान"* में आत्म-निर्भर, स्वशासी ग्राम समुदायों की संकल्पना की गई थी। गांधीजी ग्राम स्वराज के घोर प्रशंसक और प्रतिपादक थे। उनके अनुसार, इसका अर्थ ग्राम स्वायत्तता और आत्म-निर्भरता को समाविष्ट करना है। इस प्रकार, गांधीजी प्रत्येक गाँव को एक छोटे गणराज्य की भूमिका में देखना चाहते थे जिसमें लोग अपनी समस्याओं को अपने आप ही सुलझाएँगे और विकास के लिए नीति और कार्यक्रम भी बनाएँगे (गांधीजी के आग्रह पर पंचायतों से सम्बन्धित एक धारा "राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त" विषयक अध्याय में अनुच्छेद 40 में जोड़ा गया था। इसके अनुसार ग्राम पंचायत के सदस्यों का चुनाव गाँव के सभी वयस्कों को मिलकर करना था)। गाँव ही विकास आयोजना की प्राथमिक इकाई और आधारशिला होनी थी। बाद में, सर्वोदय आंदोलन ने भी प्रसारित लोकतंत्र और विकेन्द्रीकरण के इस दर्शन से प्रेरणा ली थी। परिणामस्वरूप, "पंचायती राज के लिए चले आंदोलन ने एक बौद्धिक सम्माननीयता भी हासिल कर ली और भावनात्मक अपील भी, और इस बात पर जोर दिया कि इस स्थिति में गाँव के सर्वोत्तम सेवकों को पंचायत बनानी चाहिए, सर्वसम्मति से चुना जाना चाहिए और ग्राम स्तर से फिर उप-जिलों, प्रान्तीय और केन्द्रीय प्रशासन के लिए अप्रत्यक्ष चुनाव होने चाहिए (हेनरी, 1970)।

जवाहरलाल नेहरू ने भी प्राचीन भारत में ग्राम स्तर पर लोकतान्त्रिक संस्थाओं का उल्लेख किया था और कहा था कि भारत की शक्ति वास्तव में "ग्राम गणराज्यों अथवा स्वशासी पंचायतों की उसकी व्यापक व्यवस्था में निहित है।" ये पंचायतें ग्रामीणों द्वारा चुनी जाती थीं और इस प्रकार इस व्यवस्था में एक लोकतान्त्रिक आधार था"। नेहरू तो यह जानकर चकित थे कि इन पंचायतों को अधिशासी और न्यायिक दोनों प्रकार के अधिकार मिले हुए थे "और राजा के अधिकारी उन्हें अत्यधिक सम्मान देते थे" (नेहरू, 1962)। नेहरू ने 16 मार्च 1963 को कहा था कि सामुदायिक विकास और पंचायती राज देश के सर्वाधिक सहायक विकासक्रमों में थे और दोनों ने मिलकर एक आंदोलन का रूप लिया हुआ था। इस आंदोलन के परिणाम भले ही अपेक्षा के एक-चौथाई ही रहे हों, किन्तु यह एक अद्भुत सफलता रही और इसने भारत को जड़ से मजबूत किया और लाखों पुरुषों और महिलाओं को ज़िम्मेदारी लेने और आत्मनिर्भर बनने के लिए तैयार किया। और भी बाद में, 22 जून 1963 को नेहरू ने कहा था: *"मुझे इसकी सफलता में पूरा विश्वास है क्योंकि मुझे भारतीय जनता में पूरा विश्वास है।"*

ग्राम पंचायतों को 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना की शुरूआत से और भी बल मिला। संविधान में

निदेशक सिद्धान्तों (अनुच्छेद 40) में मात्र उल्लेख से संवैधानिक दर्जा हासिल करने तक भारत में पंचायती राज संस्थाओं ने लंबी दूरी तय की है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 40 में कहा गया है : "राज्य ग्राम पंचायतें गठित करने के लिए कदम उठाएगा और उन्हें ऐसी शक्तियाँ और अधिकार देगा जो उन्हें स्वशासन की इकाइयों के रूप में काम करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक होंगे।" कई वर्षों तक यह अनुच्छेद निष्क्रिय रहा, और फिर 1957 में बलवंत राय मेहता अध्ययन दल रिपोर्ट के रूप में इसे थोड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान मिला। इस दल ने एक गाँव अथवा गाँवों के समूह के लिए सीधे निर्वाचित और सहयोजित पंचायतों की, एक ब्लॉक के लिए पंचायत समिति नाम के एक शासी निकाय की, जिला स्तर पर अप्रत्यक्ष तरीके से गठित जिला परिषद की (जिसमें निम्न स्तर से एक पदेन सदस्य और अन्य होंगे और कलेक्टर उसका अध्यक्ष होगा) साथ-साथ संकल्पना की थी (मिश्र, एस. एन. कुमार, लोकेश, पाल चैताली, 1996)।

12.3.1 स्वाधीनता उपरान्त उठाए गए कदमों की संक्षिप्त समीक्षा

"पंचायती राज" शब्द का इस्तेमाल लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण पर बलवंत मेहता अध्ययन दल की सिफारिशें मजूर होने के बाद शुरू हुआ। पहले "ग्राम पंचायत", "जिला परिषद" अथवा "उप जिला परिषद" जैसे शब्दों का इस्तेमाल होता था, जो ग्रामीण अथवा क्षेत्रीय स्तर के स्वशासी निकाय थे। पंचायती राज में ग्राम, ब्लॉक और जिला स्तरों पर स्थानीय शासन संस्थाएँ बनाने का आशय निहित है। वैधानिक पंचायती राज (1992) के रूप में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण को संस्थागत बना देने से इतिहास का एक नया अध्याय शुरू हुआ और यह भारत में ग्रामीण स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के विकास में एक नया मोड़ साबित हुआ (मैथली, 1995)।

पंचायती राज में जिला, ब्लॉक और ग्राम स्तरों पर लोकतान्त्रिक संस्थाओं का एक तीन-स्तरीय ढाँचा – क्रमशः जिला परिषद, पंचायत समिति और ग्राम पंचायत – शामिल है। इन संस्थाओं को लोकतंत्र और राजनीतिक शिक्षा की प्रशिक्षण भूमि माना जाता है। ग्राम विकास योजनाओं और कार्यक्रमों को इसी स्तर पर लागू किया जाता है ताकि इस स्तर पर विकास के फल सीधे समुदाय को मिल सकें। विकेन्द्रीकरण और ग्राम स्वराज के दर्शन पर आधारित इन संस्थाओं की स्थापना 1959 में की गई थी। भारत में स्वाधीनता के बाद उभरने वाले विकास के दर्शन में एक ऐसे ढाँचे में लोगों की संलिप्तता पर जोर दिया गया जो उन्हें निर्णय करने की प्रक्रिया में सक्रियता से भाग लेने योग्य बनाए। लोकतंत्र को जमीनी स्तर तक लाने और लोगों को निर्णय करने की प्रक्रिया में शामिल करने के उद्देश्य से निर्वाचित प्रतिनिधियों को शक्ति संपन्न करने और ज़िम्मेदारी तथा वित्तीय संसाधन देने का एक प्रयोग किया गया क्योंकि यह महसूस किया गया कि ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए यह एक बड़ा संस्थागत साधन होगा।

पंचायती राज के आगमन का स्वाधीन भारत में होने वाले एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक प्रवर्तन के रूप में स्वागत किया गया। इसे एक क्रांतिकारी कदम भी माना गया। पंचायती राज तो स्थानीय स्वशासन की एक व्यवस्था है जिसमें लोग विकास की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेते हैं। यह लोगों की पहल और भागीदारी के माध्यम से ग्राम विकास का लक्ष्य प्राप्त करने के संस्थागत प्रबंध की भी व्यवस्था है। सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास, सामुदायिक और कल्याणकारी सेवाओं के प्रावधान आदि लक्षित विकास कार्यक्रमों का प्रशासन इन स्थानीय स्वशासी संस्थाओं को सौंपा जाता है।

जब तक जिला, तालुका और गाँव के स्तरों पर निर्वाचित तत्वों के साथ स्थानीय स्वशासन काम नहीं करता, तब तक एक कल्याणकारी राज्य का लक्ष्य कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता – ये शब्द कहने वाले बलवंत राय मेहता ने खुद "पंचायती राज" का प्रस्ताव रखा था। उनके अनुसार, पंचायत और सहकारिता ऐसी दो संस्थाएँ हैं जिनके जरिए लोगों को नेतृत्व के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। 1962 तक, पंचायती राज को एक राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में स्वीकार किया जा चुका था। यह ज़रूरी

समझा गया कि पंचायती राज को लोगों का व्यापकतम समर्थन मिले, और इसलिए ग्राम पंचायतों के चुनाव में दलगत राजनीति से दूर रहने की आवश्यकता को भी समझा गया। यह भी आशा की गई कि राजनीतिक दल पंचायत चुनावों में पार्टी के आधार पर प्रत्याशी खड़े करने से बचेंगे।

बलवंत राय मेहता समिति की नियुक्ति इसलिए की गई थी कि वह अन्य बातों के अलावा ग्रामीण जन में पहल के अभाव, विरक्ति और उदासीनता की जाँच करेगी। इस समिति के अनुसार, ब्लॉक के स्तर पर एक पंचायत समिति होनी चाहिए जिसका चुनाव अप्रत्यक्ष तौर पर ग्राम पंचायतों द्वारा हो। जिला स्तर पर एक समन्वयक निकाय – जिला परिषद – हो, जिसमें पंचायत समितियों के अध्यक्ष, विधायक और सांसद और विकास विभाग के जिला स्तर के सभी अधिकारी सदस्य के रूप में हों, और कलेक्टर उनका अध्यक्ष हो।

संविधान के 73वें संशोधन अधिनियम में यह प्रयास रहा था कि सभी स्तरों पर लोकतान्त्रिक प्रक्रिया को एकीकृत करने के लिए एक तंत्र बनाया जाए जिसमें लोगों को सभी स्तरों पर उनके कल्याण और विकास से सम्बन्धित मुद्दों में खुलकर भागीदारी करने का अवसर मिले। निस्संदेह, ग्राम सभा की संस्था को विविध प्रकार के कार्य सौंपे गए हैं किन्तु राज्यों में कार्य सौंपे जाने में कोई एकरूपता नहीं हैं और अधिकांश मामलों में वे निष्क्रिय हैं। ग्रामीण जन निर्णय-निर्माण प्रक्रिया और वित्तीय प्रबंधन में पूर्ण रूप से शामिल नहीं हैं। उन्हें ग्राम विकास की योजनाओं और कार्यक्रमों की आयोजना से लेकर निष्पादन तक विकास प्रक्रिया से दूर रखा जाता है। अधिकार देने और पंचायती राज व्यवस्था के विभिन्न स्तरों को मजबूत करने की प्रक्रिया अधिकांश राज्यों में बहुत धीमी गति से चल रही है। पंचायती राज संस्थाओं पर नौकरशाही का नियंत्रण अभी भी बहुत मजबूत बना हुआ है। केन्द्र से राज्यों और फिर पंचायती राज संस्थाओं को वित्त देने का काम अभी तक नहीं हुआ है। पंचायतों में अभिलेखों और रजिस्टरों का सही रख-रखाव नहीं हो रहा है। निर्वाचित प्रतिनिधि पढ़े-लिखे और जागरूक नहीं होने के कारण अपने बेहतर साथियों की तुलना में असफल रह जाते हैं। नौकरशाही पंचायतों को सशक्त करने की इच्छुक नहीं है। राजनीतिकरण पंचायतों के सुचारु ढंग से कार्य करने के संदर्भ में अवरोध बना हुआ है (सिंह, 2005)।

12.4 विभिन्न उपायों का कालानुक्रम

सामुदायिक विकास कार्यक्रम

ग्रामीण जनता के सामाजिक-आर्थिक विकास के लक्ष्य को लोकतान्त्रिक तरीके से प्राप्त करने के उद्देश्य से, 2 अक्तूबर 1952 को सामुदायिक विकास कार्यक्रम (Community Development Programme: CDP) चालू किया गया था। भारत में उसी से पंचायती राज व्यवस्था का विकास हुआ है। राष्ट्रीय विस्तार सेवा (National Extension Service: NES) ने 1953 में इसकी और संपूर्ति की। किन्तु, कुछ ही वर्षों में, यह समझ लिया गया कि विकास कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी न होने के कारण इस कार्यक्रम के वांछित परिणाम नहीं निकले हैं और जैसी कि प्रथम पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज में अपेक्षा की गई थी, यह ग्रामीण जन के सामाजिक-आर्थिक जीवन के रूपांतरण की प्रक्रिया को शुरू नहीं कर पाया (दर्शनकर, ए. वाई., 1979)।

संयुक्त राष्ट्र ने सामुदायिक विकास को "समूचे समुदाय के लिए आर्थिक और सामाजिक प्रगति की स्थितियाँ सृजित करने हेतु निर्मित एक प्रक्रिया के रूप में" परिभाषित किया है जिसमें "इसकी सक्रिय भागीदारी और सामुदायिक पहल पर यथासंभव विश्वास "सम्मिलित है (संयुक्त राष्ट्र, 1955)। सामुदायिक विकास तो सामाजिक कार्यवाही की एक प्रक्रिया है जिसमें एक समुदाय के लोग अपने आपको आयोजना और कार्यवाही के लिए संगठित करते हैं; अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं और समस्याओं को परिभाषित करते हैं; अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने और अपनी समस्याओं को हल

करने हेतु सामूहिक और व्यक्तिगत योजनाएँ बनाते हैं; सामुदायिक संसाधनों पर अधिक से अधिक विश्वास करके इन योजनाओं पर अमल करते हैं; और समुंदाय से बाहर के सरकारी तथा ग़ैर-सरकारी अभिकरणों से प्राप्त आवश्यक सेवाओं और सामग्री से इन संसाधनों की संपूर्ति करते हैं (सामुदायिक विकास समीक्षा, 1956)।

सामुदायिक विकास के कार्यक्रम की शुरूआत 2 अक्तूबर 1952 को 55 सामुदायिक परियोजनाएँ आरंभ करने के साथ हुई जिनमें लगभग 1,50,000 एकड़ कृषि क्षेत्र, दो लाख की आबादी और 27,388 गाँव शामिल थे। 2 अक्तूबर 1953 को, राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम को तैयार और चालू किया गया। भारत के ग्रामीणों के उत्थान हेतु यह एक महत्त्वपूर्ण योजना थी। इस कार्यक्रम को शुरू करने का उद्देश्य था ग्रामीण लोगों की मानसिक सुस्ती को दूर करना, अर्थात् बेहतर रहन-सहन की इच्छा और पहल जागृत करना। यह एक मानवीय आंदोलन है जिसका उद्देश्य है "लोगों में एक बेहतर जीवन के प्रति इच्छा पैदा करना, उनमें उनके अपने ही प्रयासों के जरिए और पड़ोसियों के पूरे सहयोग से अपने जीवन स्तर को सुधारने की ललक पैदा करना।"

बलवंत राय मेहता समिति की रिपोर्ट, 1957

सरकार ने बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिशों को 1958 में मंजूरी दी और पंचायती राज व्यवस्था का उद्घाटन 2 अक्तूबर 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने किया। दूसरे राज्यों ने भी अपनी आवश्यकताओं और स्थितियों के अनुसार इस व्यवस्था को अपनाया। किन्तु ये संस्थाएँ वांछित लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकीं और कालांतर में सम-विषम कारणों से उनका पतन हो गया। उनकी कार्य प्रणाली और स्थिति की समीक्षा के लिए विभिन्न राज्यों ने विभिन्न समितियाँ बनाईं।

सामुदायिक विकास कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी और संलिप्तता का, और अंततः उन्हें स्थानीय संस्थाओं के हाथों में दे दिए जाने का आश्वासन ही इस संदेश के मूल में था। समिति के सामने लोगों की कम भागीदारी की समस्या थी, जिसके रहते "जन भागीदारी के साथ सरकारी कार्यक्रम" (Government Programme with people's participation) का पूरा उद्देश्य ही विफल हो जाता था (मिश्र, श्वेता, 1994)।

समिति ने ग्रामीण स्थानीय शासन की तीन-स्तरीय व्यवस्था का सुझाव दिया, जिसे वैधानिक दर्जा दिया जाना था और जिस पर प्रखण्डों (ब्लॉक) के विभिन्न विकास कार्यक्रमों की ज़िम्मेदारी रखी जानी थी। इस प्रक्रिया को "लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण" (*Democratic Decentralisation*) का नाम दिया गया। बाद में, लोक भाषणों और साहित्य में इसे "पंचायती राज" कहा गया, जो "भारत में ग्रामीण स्थानीय स्वशासन" (*Rural local-self government in India*) का पर्याय भी है।

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना को पूरे जोश-खरोश के साथ लागू करने वाले सर्वप्रथम राज्य राजस्थान और आंध्र प्रदेश थे। स्व. पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 2 अक्तूबर 1959 को राजस्थान के नागौर में एक भव्य समारोह में पंचायती राज का उद्घाटन किया। यह आंदोलन जंगल की आग की तरह पूरे देश में फैल गया। 1963 के अंत तक, अधिकांश राज्य अपने यहाँ पंचायती राज लागू करने के लिए विधान बना चुके थे। आशा थी कि 1964-65 तक सभी राज्य अपने यहाँ पंचायत विधान लागू कर देंगे।

पंचायती राज संस्थाओं के पीछे मूल दर्शन था विकास के उस कार्यक्रम में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करना, जिसको लेकर यह अपेक्षा थी कि उससे बदलाव और विकास की अवरुद्ध प्रक्रिया चालू हो जाएगी। किन्तु, ये संस्थाएँ काम न करने के कारण दोनों ही मोर्चों पर अधिकतर विफल रहीं। यहाँ तक कि 1970 के दशक में इसने "नाकाम ईश्वर" का भाव जगा दिया। फिर भी ग्रामीण भारत

के औसत नागरिक को सक्रिय करने की दिशा में इसका स्पष्ट असर दिखाई दिया, और जहाँ कहीं भी इसने जड़ें पकड़ीं वहाँ भी इसका असर हुआ, इसने नौकरशाही और लोगों के बीच अंतर को कम कर दिया।

अशोक मेहता समिति (1977)

अशोक मेहता की अध्यक्षता वाली समिति की नियुक्ति 1977 में तत्कालीन जनता सरकार ने की और उसे यह काम सौंपा कि वह पंचायती राज संस्थाओं की खराब हालत की जाँच करें और उसे सुधारने के उपाय सुझाए। अशोक मेहता समिति की 132 सिफारिशें उसके विचारार्थ विषयों और महत्त्वपूर्ण पहलुओं के बारे में बहुत कुछ कहती हैं। रिपोर्ट के पहले तीन अध्यायों में तीन चरणों में पंचायती राज के विकास और पृष्ठभूमि का सर्वेक्षण किया गया है: 1959 से 1964 – जड़ें जमना; 1964 से 1969 – संरक्षण का चरण; 1967 – निष्क्रियता का चरण।

समिति ने पंचायती राज संस्थाओं के पतन के ये कारण बताए: बेतरतीब कार्यक्रम, निष्क्रियता, निहित स्वार्थों का उत्थान, पर्याप्त वित्तीय संसाधनों का न होना। पंचायती राज की अवधारणा स्वतः ही परस्पर विरोधी व्याख्याओं में गुम हो गई। रिपोर्ट में प्रमुख जोर विकेन्द्रीकरण पर था। रिपोर्ट में कहा गया कि "पंचायती राज संस्थाओं में वित्तीय, प्रशासनिक तथा मानव संसाधनों के सदुपयोग और ढाँचागत कार्य के निरुपण का निर्धारण विकास के प्रबंधन की उभरती क्रियात्मक आवश्यकता के अनुसार होना चाहिए।"

हालाँकि सत्ता परिवर्तन के कारण केन्द्र सरकार ने इस समिति की सिफारिशों को स्वीकार नहीं किया, फिर भी कुछ राज्यों में पंचायती राज के काम-काज पर इनमें से कुछ का अलग-अलग असर हुआ। कुछ वर्ष बाद (1983-85 में) कर्नाटक और आंध्र प्रदेश ने अपनी-अपनी पंचायती राज व्यवस्था को नया रूप दिया। अशोक मेहता समिति की सिफारिशों पर 1979 में आयोजित मुख्यमंत्रियों के एक सम्मेलन में विचार हुआ, और तीन-स्तरीय व्यवस्था को जारी रखने का समर्थन किया गया। इस सम्मेलन में एक ऐसे मॉडल विधेयक का सुझाव रखा गया जिसे राज्य अपनी स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार संशोधित करके अंगीकार और लागू कर सकें।

केन्द्र सरकार द्वारा चिंता जताए जाने के बाद मध्य प्रदेश, बिहार और राजस्थान सहित कुछ राज्यों ने भी इस दिशा में गंभीर कदम उठाए। योजना आयोग ने भी सातवीं और आठवीं पंचवर्षीय योजनाओं में ग्राम विकास के प्रोन्नयन और प्रबंधन में पंचायती राज की भूमिका को विस्तारित और अनुप्राणित करने की दलील को दोहराया। क्योंकि इसकी व्यापकता, विविधता और जटिलता बढ़ रही है। आयोग का यह विचार था कि पंचायती राज के जरिए ग्राम विकास में लोगों की प्रभावी भागीदारी से लोगों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के प्रति, और इस विकास की विचारित और समन्वित और त्वरित प्रगति के प्रति बेहतर क्रियात्मक जवाब मिल सकेगा (खन्ना, बी. एस., 1994)।

कार्ड – सी ए ए आर डी (1985) (CAARD)

वर्ष 1985 में, ग्राम विकास तथा गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के प्रति प्रशासनिक प्रबंधों की समीक्षा के लिए डॉ. जी. वी. के. राव की अध्यक्षता में एक बारह सदस्यी समिति नियुक्त की गई। इस समिति ने यह सिफारिश की कि नीतिगत आयोजना और कार्यक्रम क्रियान्वयन की मूल इकाई जिला होनी चाहिए और पंचायती राज संस्थाओं के नियमित चुनावों की आवश्यकता पर जोर दिया। जमीनी स्तर के इन निकायों को ग्राम विकास कार्यक्रमों की आयोजना, क्रियान्वयन और निगरानी के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण भूमिका दिए जाने की बात की गई। जिला स्तर की प्रभावी विकेन्द्रीकृत आयोजना के लिए राज्य स्तर के कुछ योजनागत कार्यों को जिला स्तर को हस्तांतरित करना पड़ सकता है (भारत सरकार, कार्ड)।

एल. एम. सिंघवी समिति (1986)

समिति की रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद, तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने सरपंचों की राय जानने के लिए नई दिल्ली में अखिल भारतीय सरपंच सम्मेलन आयोजित किया। 1986 में एक बार फिर, डॉ. एल. एम. सिंघवी की अध्यक्षता में एक और समिति की नियुक्ति राजीव गांधी ने की। इस समिति को यह काम सौंपा गया कि वह यह सुझाव दे कि पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा कैसे दिया जा सकता है। समिति ने सिफारिश की कि ग्राम पंचायतों को अधिक सक्षम बनाने के लिए गाँवों का पुनर्गठन होना चाहिए। समिति ने यह भी सुझाया कि इन संस्थाओं को और अधिक वित्तीय संसाधन दिए जाएँ। समिति ने यह भी सिफारिश की कि स्वराज की अवधारणा के एक अंग के रूप में नीचे से शुरू करते हुए आयोजना और विकास की प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी को सुलभ बनाने का काम स्वाभाविक तौर पर पंचायती राज संस्थाओं को करना चाहिए, और विकास की योजना लोकतान्त्रिक योजना होनी चाहिए (भारत सरकार, ऑकेजनल पेपर, 1988)।

सरकारिया आयोग (1988)

जब ये गतिविधियाँ चल रही थीं, इसी बीच सरकारिया आयोग, विशेषकर केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के संदर्भ में, संघीय ढाँचे की जाँच कर रहा था। उसने भी अपनी रिपोर्ट में ग्रामीण और शहरी स्थानीय स्वशासन की प्रकृति पर सरसरी तौर पर टिप्पणी की। इस आयोग के अनुसार अनेक स्थानीय स्वशासी निकाय इसलिए प्रभावी ढंग से काम नहीं कर रहे थे क्योंकि चुनाव नियमित तौर पर नहीं हो रहे थे और इन निकायों के अधिकारों का अतिक्रमण किया जा रहा था। इस आयोग ने पंचायती राज निकायों के अतिक्रमण और नियमित चुनावों के संदर्भ में राज्यों में कानून की एकरूपता पर जोर दिया (भारत सरकार, सरकारिया आयोग, 1988)।

पी. के. थुंगन समिति

कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय से संबद्ध संसदीय परामर्श समिति की एक उप समिति का गठन, जिला स्तरीय आयोजना के लिए आवश्यक राजनीतिक तथा प्रशासनिक ढाँचे की किस्म पर विचार करने के लिए, डॉ. पी. के. थुंगन की अध्यक्षता में किया गया। समिति का विचार था कि पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता दी जानी चाहिए और पाँच वर्ष के अंतराल से इन निकायों के नियमित चुनाव होने चाहिए। उस समिति की राय में, जिला परिषद को जिले का एकमात्र आयोजना और विकास अभिकरण होना चाहिए। इस समिति का सुझाव था कि राज्य स्तर पर मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में एक योजना तथा समन्वय समिति गठित की जाए और जिला परिषद अध्यक्षों को इस समिति का सदस्य बनाया जाए (भारत सरकार, जिला आयोजना पर कार्य समूह की रिपोर्ट, 1988)।

वी. एन. गाडगिल समिति (1988)

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (Indian National Congress) ने भी नीति और कार्यक्रम पर एक समिति की नियुक्ति वी.एन गाडगिल की अध्यक्षता में की, जिसे यह जाँच करने का काम सौंपा गया कि पंचायती राज संस्थाओं को किस तरह प्रभावी बनाया जा सकता है (अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस समिति, 1988)। इस समिति ने पंचायती राज के लिए तीन-स्तरीय व्यवस्था की, कमजोर तबकों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने हेतु अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं के लिए चुनाव क्षेत्रों के आरक्षण की, पंचायती राज संस्थाओं के लिए पाँच वर्ष के कार्यकाल की, राज्य वित्त निगम के गठन आदि की सिफारिश की।

इन समितियों की सिफारिशों का कुल परिणाम यह रहा कि लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा को नया जोर देने के पक्ष में एक उचित वातावरण का निर्माण हुआ। सभी राजनीतिक दल मोटे तोर

पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अब समय आ गया है कि पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिया जाए। इस सर्वसम्मति के परिणामस्वरूप, संसद में जुलाई 1989 में 64वाँ संविधान संशोधन विधेयक लाया गया।

64वाँ संविधान संशोधन विधेयक लोक सभा द्वारा पारित कर दिए जाने के बावजूद संविधान का हिस्सा नहीं बन पाया, क्योंकि राज्य सभा ने इसे पारित नहीं किया। इस विधेयक में सभी राज्यों में ग्राम, माध्यमिक और जिला स्तरों पर पंचायतों के गठन का प्रावधान रखा गया। इसमें उन राज्यों को छोड़ दिया गया जिनकी आबादी 20 लाख से अधिक नहीं है, जहाँ राज्य माध्यमिक स्तर नहीं हो सकते। इसमें पंचायती राज संस्थाओं को दिए जाने वाले कार्यों को मूर्त रूप देने वाली संविधान की "ग्यारहवीं अनुसूची" का भी प्रावधान था।

संवैधानिक दर्जा

भारत में पंचायती राज संस्थाओं की हैसियत-जमीनी स्तर पर विकेन्द्रीकरण के प्रमुख साधन की है। विकास हेतु अल्प संसाधनों के अधिकतम उपयोग और आबादी के अदम्य दबाव को नियंत्रित करने की ज़रूरत के कारण वे महत्त्वपूर्ण हो गई हैं। वे इस अर्थ में वाहक की भूमिका निभाती हैं कि वे लोगों तक उस सत्ता को लौटा ले जाती हैं जो वास्तव में लोगों की ही है। पंचायती राज, अथवा स्थानीय स्वशासन, प्रशासनिक अधिकार के विकेन्द्रीकरण की दिशा में किया गया एक प्रयास है। यह व्यवस्था निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है :

73वें संविधान संशोधन अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

i) गाँव से जिला स्तर तक स्थानीय स्वशासन निकायों की एक तीन-स्तरीय व्यवस्था होनी चाहिए, जिसमें नीचे से ऊपर के स्तर तक व्यवस्थित संपर्क हो;

ii) इन निकायों को पर्याप्त वित्तीय संसाधन हस्तांतरित किए जाएँ जिससे वे अपनी ज़िम्मेदारियाँ निभा सकें;

iii) इन निकायों को सत्ता और ज़िम्मेदारी का वास्तविक हस्तांतरण किया जाए;

iv) इन स्तरों पर समस्त विकास कार्यक्रमों को इन्हीं निकायों के माध्यम से विकसित और निर्देशित किया जाए; और

v) विकसित व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि भविष्य में वह सत्ता और ज़िम्मेदारी के मामले में विकेन्द्रीकरण को और भी सुगम बना सके (पद्माकर, 1998)।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने पंचायतों के गठन और उन्हें जन संस्था बनाने में रूचि ली। महात्मा गांधी कह ही चुके थे कि स्वाधीनता सबसे निचले स्तर से शुरू होनी चाहिए। प्रत्येक गाँव को पूर्ण अधिकार संपन्न गणराज्य अथवा पंचायत होना चाहिए। पंचायतों के पास जितने अधिक अधिकार होंगे, लोगों के लिए उतना ही अच्छा होगा। महात्मा गांधी ने एक बार कहा था, "भारत की आत्मा गाँवों में निवास करती है ..."। उच्चतर पंचायत, प्रशासन और सार्वजनिक सेवाओं की सक्षमता बढ़ाने की दृष्टि से, ठोस सलाह देगी, विशेषज्ञ मार्गदर्शन और जानकारी देगी, और ग्राम पंचायतों की गतिविधियों का पर्यवेक्षण और समन्वयन करेगी। जय प्रकाश नारायण की पंचायती राज सम्बन्धी अपनी अलग अवधारणा थी जिसमें राजनीतिक दलों के लिए कोई जगह नहीं थी। उनकी राय थी कि पंचायती राज संस्थाओं की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि राजनीतिक दल उनमें हस्तक्षेप करने और उन्हें अपनी चेरी बनाने से, और इसका इस्तेमाल सत्ता तक पहुँचाने के लिए उछाल-तख्ते के रूप में करने से किस हद तक बाज आते हैं। "गुटीय झगड़ों के माध्यम से मिला स्वराज तो स्वराज नहीं स्व-विनाश होगा" (मिश्रा, एस. एन., 1996)।

पंचायती राज संस्थाओं के अधिकारों और कार्यों के संदर्भ में, तीन प्रकार के नमूने उभरते हैं (वाजपेयी, 1997)। पहला, वे राज्य जिन्होंने ग्यारहवीं अनुसूची में उल्लिखित विषय के अनुरूप एक नियमित ढंग से पंचायतों के विभिन्न स्तरों के लिए कार्यों और गतिविधियों की सूची बनाई है। इन राज्यों ने कुछ अन्य कार्य भी इनमें जोड़ दिए हैं जैसे वार्षिक योजनाओं की तैयारी, पंचायत के निम्न स्तर द्वारा तैयार योजनाओं को समेकित करना, वार्षिक बजट तैयार करना, प्राकृतिक विपदाओं में राहत प्रदान करना। इस श्रेणी में आने वाले राज्य हैं: असम, कर्नाटक, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान और उत्तर प्रदेश। दूसरा नमूना जिन राज्यों में प्रचलित है वे हैं उड़ीसा, केरल, गुजरात, तमिलनाडू और पश्चिम बंगाल। इन राज्यों में कार्यों को दो श्रेणियों में रखा गया है : (क) बाध्यकर अथवा अनिवार्य कार्य; (ख) विवेकगत कार्य। तीसरी श्रेणी में आने वाले राज्य हैं, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और हिमाचल प्रदेश।

12.5 नई पंचायती राज व्यवस्था की कमजोरी

तीनों स्तरों में समन्वयन

नई पंचायती राज व्यवस्था की एक कमजोरी की तरफ हमारा ध्यान गया है। वह है, एक ओर पंचायती राज संस्थाओं के तीन स्तरों और दूसरी ओर नौकरशाही, ग़ैर-सरकारी संगठनों के बीच समन्वय। यदि हम तालमेल की इस समस्या पर विचार करें, तो हमें यह सब दिखाई देगा – (i) ग्यारहवीं अनुसूची में उल्लिखित पंचायती राज संस्थाओं के तीन स्तरों के बीच अधिकारों और कार्यों के वितरण के संदर्भ में स्पष्टता का अभाव; (ii) विभिन्न राज्यों के पंचायती राज अधिनियम इस विषय में स्पष्ट नहीं है कि पंचायती राज संस्थाएँ क्या विकास कार्यक्रम को लागू करने वाली संस्थाएँ हैं या फिर वे योजना बनाने वाली संस्थाएँ भी हैं और लागू करने वाली संस्थाएँ भी; (iii) ये अधिनियम पंचायती राज संस्थाओं और स्थानीय स्तर की नौकरशाही के परस्पर सम्बन्ध के बारे में भी स्पष्ट नहीं हैं; और (iv) पंचायती राज संस्थाओं और ग़ैर-सरकारी संगठनों के बीच खुली भागीदारी की समस्या।

पंचायती राज की पुरानी व्यवस्था में नौकरशाही की प्रधान भूमिका होती थी और अब नई व्यवस्था में वह इतनी आसानी से अपना व्यवहार बदलने को तैयार नहीं है। किन्तु इसमें निराशा होने से कोई लाभ नहीं क्योंकि नौकरशाही की पुरानी और मौजूदा मानसिकता को बदलने में थोड़ा समय लगेगा। पंचायती राज संस्थाओं के तीन स्तरों में ज़िम्मेदारियों का स्पष्ट विभाजन अत्यंत ज़रूरी है। इस प्रकार, ज़रूरत इस बात की है कि समन्वय की समस्या को सुलझाने के लिए स्थानीय स्तर पर एक नई और ज़िम्मेदार सहभागी संस्कृति का विकास किया जाए। इसके अतिरिक्त, विभिन्न राज्यों के पंचायती राज अधिनियमों में आवश्यक संशोधन होना चाहिए, और यह वास्तविक राजनीतिक तथा प्रशासनिक इच्छाशक्ति के माध्यम से संभव है। पंचायती राज संस्थाओं को स्थानीय समुदाय के लिए विकास कार्यक्रमों की आयोजना और क्रियान्वयन दोनों के प्रति ज़िम्मेदार बनाया जाना चाहिए। यदि नई पंचायती राज व्यवस्था सही ढंग से काम नहीं कर रही है तो इसका कारण जिला ग्रामीण विकास अभिकरण की स्वाधीन सत्ता है। केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा प्रायोजित और वित्त पोषित जवाहर रोजगार योजना (Jawahar Rojghar Yojana: JRY) के अतिरिक्त सभी कार्यक्रमों का क्रियान्वयन जिला ग्रामीण विकास अभिकरण (District Rural Development Agency:DRDA) के माध्यम से होता है। यही कारण है कि 1996 में केन्द्र सरकार ने जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के पंचायती राज में विलय अथवा जिला ग्रामीण विकास अभिकरण को पंचायती राज संस्थाओं के नियंत्रण में रखने की सिफारिश की। किन्तु मध्य प्रदेश, केरल और उत्तर प्रदेश को छोड़ अन्य किसी भी राज्य ने इन सिफारिशों को लागू नहीं किया है। इसका कारण नौकरशाही और राज्य स्तरीय राजनीतिक नेतृत्व की सांठगांठ हो सकती है। इसलिए, यदि पंचायती राज संस्थाओं को सफल होना है तो जिला ग्रामीण विकास अभिकरण को इन संस्थाओं के अधीन करना होगा (मिश्रा, 2002)।

तेहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम के विश्लेषण से पता चलता है कि पंचायती राज संस्थाओं को

ऐसे प्राधिकार और अधिकार देने ही थे जिससे वे स्वशासन की प्रभावी संस्थाओं के रूप में कार्य करने योग्य बन सकें। इसका निहितार्थ यह हुआ कि राज्य विधायिकाओं द्वारा ये प्राधिकार और अधिकार दिए जाने से पंचायती राज संस्थाएँ (अनिवार्य और नियमित चुनावों के माध्यम से) प्रदत्त मूल्यों, प्राथमिकताओं और नीतियों के साथ, लोकतान्त्रिक प्रकृति ग्रहण कर सकती थीं और अपने सदस्यों को ग्राम सभा के माध्यम से स्वशासन की प्रक्रिया में भागीदारी करने का मौका दे सकती थीं। विश्लेषण से यह भी पता चलता है कि पंचायती राज संस्थाओं को एक कल्याणकारी शासन के रूप में काम करना चाहिए, जिसका निहितार्थ यह होता है कि उन्हें विकास की गतिविधियों को शुरू, आयोजित और निष्पादित करना है और सामाजिक न्याय लाना है। भारत एक संघ राज्य है। राज्य विधायिकाओं के अस्तित्व और विवेक को मान्यता देते हुए, अनुच्छेद 243 ए में कहा गया है कि ग्राम सभा ग्राम स्तर पर ऐसे प्राधिकारों का इस्तेमाल कर सकती है और ऐसे कार्य कर सकती है जो उसे राज्य की विधायिका से कानून द्वारा मिले हैं। यह अपेक्षा की गई थी कि वे तेहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम की भावना को राज्य के अधिनियमों के माध्यम से आगे बढ़ाया जाएगा।

व्यवहार में, ऐसा नहीं हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि तेहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम और उसके बाद के राज्य अधिनियमों के बीच आवश्यक मंथन नहीं किया जा सका। यह दौड़ यथार्थवादी चिंतन की न होकर अंतिम समय सीमा को छूने की हो गई। अधिकांश मामलों में, कुछ संशोधनों को पहले से मौजूद राज्य अधिनियमों में समाविष्ट कर लिया गया, जिससे कि वे तेहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम के अनुरूप दिखाई दें। काश, अनुच्छेद 234-ए को अनिवार्य और व्याख्यात्मक बनाया जाता।

जिला स्तरीय योजना बनाते समय, जिला योजना समितियों (District Planing Committees; DPCs) किसी भी परियोजना के स्थानिक पहलू को ध्यान में रखेंगी; और अवसंरचना तथा पर्यावरणीय संरक्षण के एकीकृत विकास और प्राकृतिक तथा वित्तीय संसाधनों की साझेदारी पर विचार करेंगी। जिला योजना समितियों के गठन को राज्य के विवेक पर छोड़ दिया गया है, किन्तु यह अनुबंधित किया गया है कि 80 प्रतिशत सदस्य वे होंगे जो पंचायतों और नगरपालिकाओं के लिए निर्वाचित होंगे (मिश्रा, एस. एन.; वहीं)। फिर, जिला योजना समितियाँ अभी भी एक प्रभावी योजना निकाय नहीं हैं, क्योंकि अधिकांश परियोजनाओं को सम्बन्धित केन्द्रित मंत्रालयों द्वारा केस-दर-केस मंजूरी दी जाती है। योजना बनाने के लिए पर्याप्त धन अथवा विषयों की पर्याप्त आजादी नहीं होती। जिला स्तरीय आयोजना तब तक यथार्थ का रूप नहीं लेगी तब तक जिला स्तर पर संयुक्त प्रखण्ड (ब्लॉक) अनुदान नहीं दिए जाते और योजना आयोग द्वारा राज्य स्तरीय योजनाओं को पारित किए जाने के पहले जिला योजनाओं को राज्य योजनाओं में एकीकृत नहीं किया जाता। जिला स्तरीय बजट का जैसा प्रयास केरल और मध्य प्रदेश में हुआ है वैसा अन्य राज्यों में भी किए जाने की ज़रूरत है।

दसवीं पंचवर्षीय योजना के मध्यावधि मूल्यांकन (2005) में कहा गया है कि (ग्यारहवीं अनुसूची में उल्लिखित) पंचायती राज संस्थाओं को कार्य सौंपने की प्रक्रिया के साथ अधिकांश राज्यों में कोष और कार्यकर्त्ताओं का हस्तांतरण नहीं किया गया है। जहाँ कहीं पंचायतों को कोष और कार्यकर्त्ता हस्तांतरित किए गए हैं, वहाँ भी पंचायतों को हस्तांतरित कार्मिकों और वित्तीय संसाधनों पर राज्य सरकार के अधिकारियों का नियंत्रण जारी है। पंचायतों के लिए नियत राजस्व स्रोत पर्याप्त तो बिल्कुल नहीं हैं। कराधान का अधिकार केवल सबसे निचले स्तर – ग्राम पंचायत – को है। उच्चतर स्तरों, अर्थात् पंचायत समिति और जिला परिषद् के पास कराधान का कोई अधिकार नहीं है और राज्य सरकार को प्रदत्त मात्रा अत्यंत अपर्याप्त है। राज्यों में भी इस संदर्भ में स्थिति में बहुत व्यापक अंतर है। स्थानीय स्तर पर वित्तीय अनुशासन के मुद्दे को तत्काल महत्त्व से नहीं लिया गया है। बहुत कम राज्यों ने इस स्तर पर पंचायत अनियमितताओं और निर्वाचित कर्मियों के दुराचरण से निपटने के लिए विशेष नियम बनाए हैं। इस सम्बन्ध में नियंत्रक और महालेखा परीक्षक (कैग) द्वारा जारी दिशा-निर्देशों का राज्यों को सख्ती से पालन करना चाहिए।

12.6 भारत में शहरी स्थानीय शासन का विकास

भारत में योजनाबद्ध नगर प्रशासन का इतिहास तीसरी शताब्दी ई.पू. में मौर्य काल से शुरू होता है। मैगस्थनीज के अनुसार, नगर प्रशासन से सम्बन्धित विशेष विषयों को देखने वाली समितियाँ शहरी क्षेत्रों का शासन संभालती थीं। मुगल काल में, नगर का प्रशासन "कोतवाल" के हाथों में होता था, जो नगर के विविध कार्यों पर नज़र रखने के साथ ही समस्त न्यायिक, पुलिसिया और वित्तीय मामलों में भी सर्वोच्च अधिकार का इस्तेमाल करता था। अंग्रेज़ों ने शुरू में स्थानीय शासन के संदर्भ में प्रत्यक्ष तौर पर केन्द्रवादी रुख अपनाया किन्तु बाद में उसने विकेन्द्रीकरण का दृष्टिकोण अपना लिया। पहले नगर निगम का गठन ईस्ट इंडिया कम्पनी ने, इंग्लैण्ड के स्थानीय निकायों के नमूने पर, मद्रास में 1687 में किया। बम्बई और कलकत्ता की नगरपालिकाओं ने इस पहल का अनुसरण किया। किन्तु, इसका नियमित प्रचलन उन्नीसवीं शताब्दी में ही हुआ। 1880 में, लॉर्ड मेयो ने आधिकारिक तौर पर स्थानीय स्वशासन में भारतीयों को प्रशिक्षित करने की ज़रूरत को पहचाना। किन्तु विकासक्रम केवल शहरी क्षेत्रों तक सीमित रहा। स्थानीय निकायों में निर्वाचित तत्वों का प्रचलन करने वाले लॉर्ड रिपन ने इस व्यवस्था को ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँचाया। जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका है, 1907 में एक विकेन्द्रीकरण आयोग ने कुछ सिफारिशें कीं। उन सिफारिशों को 1915 के एक प्रस्ताव में अमली जामा पहनाया गया। परिणामस्वरूप, इस व्यवस्था में कुछ सुधार किए गए। निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई; जिला परिषद को निर्वाचित अध्यक्ष रखने का अधिकार दिया गया। 1919 के भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत स्थानीय स्वशासन का विषय एक हस्तांतरित विषय बन गया। इसका मतलब यह हुआ कि स्वशासन का मंत्रालय भारतीय मंत्रियों के हाथों में आ गया। उसके बाद, अधिकारों के विकेन्द्रीकरण के लिए और निर्वाचकों के प्रति स्थानीय कर्मचारियों की जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए प्रयास किए गए। नगर प्रशासन को एक निर्वाचित अध्यक्ष के प्रभार में रखा गया जिसके पास विधायी और अधिशासी दोनों ही प्रकार के कार्य थे। बाद में, विभिन्न अधिनियमों के द्वारा अधिशासी कार्यों को विधायी कार्यों से अलग कर दिया गया। स्वाधीनता के बाद, भारत सरकार ने इनमें और संशोधन किए। नामजद और आधिकारिक सदस्यों की व्यवस्था समाप्त कर उन्हें और अधिक लोकतान्त्रिक बनाया गया। आज, नगर प्रशासन तो आधिकारिक निकाय हैं और वे पहले की अपेक्षा कहीं अधिक कार्य कर रहे हैं।

12.7 शहरी शासन के मुद्दे

नगर सुधार शहरी क्षेत्रों के विकास के साथ कदम मिलाकर नहीं चल पाया है। शहरीकरण और औद्योगीकरण एक-दूसरे से जुड़ी प्रक्रियाएँ हैं। आर्थिक वृद्धि क्योंकि शहरी क्षेत्रों पर केन्द्रित हैं, इसलिए अनेक प्रकार की समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं; जैसे मुख्यतः आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों और सीमांत कस्बों से लोगों के आने के कारण शहरी आबादी में बढ़ोतरी (देखिए चार्ट) :

वर्ष	प्रतिशत
1961	17.97
1971	19.91
1981	23.34
1991	25.71
2001	27.78

इससे शहरी स्थान और शहरी सुविधाओं की भारी माँग हो गई है और वे इस बढ़ते बोझ को संभाल नहीं पाए हैं। शहरी निकायों के पास हमेशा ही संसाधनों की कमी थी, अब अतिरिक्त आबादी को संभालने का और भी बोझ आ पड़ा है। इसका सीधा परिणाम हुआ है शहरी पर्यावरण का प्रदूषण, मलिन बस्तियों का प्रसार, स्वच्छता की बिगड़ती हालत के कारण बीमारियों में बढ़ोतरी, और कानून-व्यवस्था की बिगड़ती स्थिति।

इस समस्या से निपटने के उल्लेखनीय प्रयास हैं पानी, बिजली जैसी जन उपयोगी सेवाओं की व्यवस्था और शहरी अवसंरचना के विकास में सरकारी-निजी भागीदारी पर अधिक ज़ोर। दसवीं योजना के मध्यावधि मूल्यांकन के अनुसार, निजी भागीदारी तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात में संरक्षण, स्वच्छता, कूड़ा संग्रहण तथा निपटान, कम्पोस्ट संयंत्र, सड़कों की बिजली, जल आपूर्ति, स्थानीय कर संग्रहण, उद्यानों और पार्कों के विकास और रखरखाव, बस अड्डे, और विकास तथा बाजार विकास आदि क्षेत्रों में देखी गई है। अधिकांश पीपी परियोजनाएँ जल आपूर्ति, स्वच्छता और ठोस वेस्ट प्रबंधन में हैं। क्षमता का पूरा उपयोग करने के लिए, इस उद्देश्य हेतु एक नियामक ढाँचा स्थापित होना चाहिए। वाणिज्यिक राजस्व को बढ़ाने के लिए जनसुविधाओं पर "तर्क संगत" शुल्क लेना चाहिए जबकि यह माना जाता है कि, अब तक इनका पर्याप्त शुल्क नहीं लिया गया है; और वाणिज्यिक राजस्व के संग्रह की प्रशासनिक प्रक्रिया भी अपर्याप्त रही है, जिसके फलस्वरूप उगाही ज़रूरत से कम हुई है।

स्थानीय निकायों के राजस्व को बढ़ाने के लिए, सुधार पैकेज के हिस्से के रूप में, शासन आने वाले वर्षों में और कठोर होने को तैयार है। बीते कुछ वर्षों में, जायदाद के लेन-देन में प्रतिबंधक ड्यूटी और कठोर प्रक्रियाओं, भूमि सीलिंग, क्षेत्रण, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (Foreign Direct Investment; FDI) और निजी क्षेत्र पर प्रतिबंध के कारण शहरी अवसंरचना के विकास की गति धीमी हो गई है। इसका कारण संपत्ति बाजार की धीमी वृद्धि है, जिसका असर कीमतों के अस्वाभाविक तौर पर बढ़ने और शहरी अवसंरचना की वृद्धि की गति के धीमे होने के रूप में हुआ है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इसका असर यह हुआ है कि निवास की माँग के मुकाबले उसकी आपूर्ति में कमी आई है। इन प्रतिबंधों को हटाया जाएगा, जिससे जायदाद के लेन-देन में अधिक दमदार बाजार का मार्ग प्रशस्त होगा, जिसमें बाजार के जरिए तय कीमतों के अधिक "तर्कसंगत" होने की अपेक्षा है। संपत्ति बाजार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को प्रोत्साहित किया जाएगा, और निजी क्षेत्र की शहरी अवसंरचना के विकास में अधिक भागीदारी होगी। इससे जमीन के अवैध लेन-देन और अनधिकृत कालोनियों की बढ़ोतरी पर भी लगाम लगेगी। किराये इतने कम हैं कि मकान मालिकों के लिए जर्जर भवनों के जीर्णोद्वार हेतु कोई प्रोत्साहन ही नहीं है। इसलिए, किराया नियंत्रण का उदारीकरण भी तय है। इसके अतिरिक्त, संस्थागत क्षमता बढ़ाई जाएगी, जिसमें स्थानीय शासन को विकेन्द्रीकृत आयोजना के लिए विकसित किया जाएगा। इसके लिए कार्यों को अधिकारियों और संसाधनों के अनुसार तय किया जाएगा। ई-शासन से अपेक्षा है कि इससे प्रक्रियाओं की गति तेज होगी, आँकड़ों के विश्लेषण में सुविधा होगी और सेवाओं की व्यवस्था में लगी संस्थाओं और अभिकरणों के बीच बेहतर संपर्क सुनिश्चित होगा (भारत सरकार, दसवीं योजना, 2002-07)।

12.8 सारांश

संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि स्थानीय शासन स्थानीय लोगों की आवश्यकताओं की बेहतर समझ देता है, उन्हें उनके विकास और कल्याण से सम्बन्धित बेहतर निर्णय प्रक्रिया में अपनी बात रखने का अधिक अधिकार देता है, कार्यक्रमों के बीच बेहतर समन्वय और एकीकरण करता है, लोगों की प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित करता है, जिससे लोगों की अनुभूत आवश्यकताओं हेतु संसाधन जुटाने के माध्यम से आत्म-निर्भरता आती है। यह सुनिश्चित करने के हर संभव प्रयास किए जा रहे हैं कि आरोपित

आवश्यकताएँ ही न लाद दी जाएँ और वही हमारी योजनाओं और परियोजनाओं का वास्तविक आधार न बन जाएँ। स्थानीय लोगों की प्रभावी भागीदारी है, जो योजनाओं के क्रियान्वयन को अभिप्रेरणात्मक सहारा देती है और स्व-निर्भर विकास की ओर भी ले जाती है। सबसे बड़ी बात तो यह कि लोगों में पहल और आत्म-निर्भरता की भावना बनती है। पंचायती राज संस्थाएँ पर्याप्त ज्ञान और कौशल के अभाव में अपने उद्देश्यों का प्राप्त नहीं कर पाईं।

जवाबदेही और पारदर्शिता का भरोसा भी नहीं दिया गया है। इसके अतिरिक्त, पंचायती राज संस्थाओं द्वारा सरकारी धन के दुरुपयोग की भी अनेक शिकायतें हैं। यहाँ जिन कमजोरियों का उल्लेख किया गया है, उन पर चिंतन और कार्यवाहीं की ज़रूरत है। तत्काल आवश्यकता है कि पंचायती राज संस्थाओं को आवश्यक अधिकार, कार्य, वित्त और कर्मचारी देकर उन्हें मजबूत किया जाए। पंचायती राज संस्थाओं के कर्मचारियों के क्षमता निर्माण पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। मजबूत होने के बाद पंचायती राज संस्थाएँ ग्रामीण जन की बेहतर ढंग से भलाई और सेवाएँ कर सकेंगी।

तमाम कमियों के बावजूद, 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों ने जमीनी स्तर के जिस लोकतंत्र की हवा चलाई है वह बना रहेगा और समय बीतने के साथ इसे वित्तीय और क्रियात्मक अधिकार मिल जाएँगे और सत्ता को ऊपर से नीचे नहीं-बल्कि नीचे से ऊपर ले जाने का गांधीजी का सपना पूरा होगा। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम 1993 के माध्यम से स्थानीय स्वशासन को मजबूत करने हेतु आवश्यक कदम उठाया गया है, जिसमें विभिन्न राज्यों में स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के रूप में पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना की संकल्पना की गई है। इसे अगली इकाई में विस्तार से समझाया गया है।

इसी प्रकार, 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के बाद नवनिर्मित शहरी स्थानीय शासन संस्थाओं के लिए एक समाकलित ग्रामीण-शहरी विकास परिप्रेक्ष्य अपनाया गया है। शहरी घिच-पिच और प्रसार जैसे अनेक विषय हैं जिन पर विचार होना है।

12.9 मुख्य अवधारणाएँ

स्थानीय स्वशासन (Local Self-government) : स्थानीय स्वशासन का अर्थ है "स्वयं जनता द्वारा अथवा उनके अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से अपने पर शासन"। स्थानीय स्वशासन को यूरोप के घोषणापत्र में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है कि "यह लोकतांत्रिक रूप से स्थापित निर्णय-निर्धारक निकायों तथा अपनी ज़िम्मेदारियों के निभाने के संबंध में व्यापक स्वायत्तता प्राप्त, जो अपनी ज़िम्मेदारियों को लागू करने के लिए सभी तरह के साधन सम्पन्न उपायों से परिपूर्ण एवं अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयुक्त संसाधन उपलब्ध होना, इत्यादि अनिवार्य शर्तें हैं (सट्रासबर्ग, 1985)।

राष्ट्र-राज्य (Nation-State) : यह राजनीति शास्त्र का शब्द है। यह वह स्थिति है जब देश राजनीतिक एकता की अवस्था प्राप्त कर लेता है, जिसमें शासन की आधुनिक संस्थाओं की विशेषताएँ होती हैं, जैसे एक प्रतिनिधि संसद, निष्पक्ष न्यायपालिका, कानून का राज और सभी को वयस्क मताधिकार। राष्ट्र-राज्य को तर्कणीय नाम से जाना जाता है, यह वेस्टफालिया की शान्ति संधि में स्थापित हुआ है, जब अक्तूबर 1648 में दो बार संधियों पर हस्ताक्षर हुए थे जिससे 30 वर्ष के युद्ध का अन्त हुआ था। इन

संधियों पर 24 अक्तूबर 1648 में हस्ताक्षर हुए थे जिसमें पवित्र रोम के सम्राट् फर्डीनाड तृतीय, अन्य जर्मन के राजकुमार, फ्रांस तथा स्वीडन शामिल थे, इसमें अनेक वर्षों तक अराजकता और रक्तपात हुआ था। इससे पहले धर्मनिरपेक्ष और धार्मिक क्षेत्रों पर राज्यशाही और धर्म का आधिपत्य था। यद्यपि जो परिवर्तन चाहने वाले थे उन्होंने इसे चुनौती दी थी तथा जैसा कि हम जानते हैं, उन्होंने "आधुनिकता" शब्द को प्रचालित किया था। (*दि विकिपीडिया इनसाइक्लोपीडिया*)।

पंचायती राज (Panchayati Raj) : "पंचायत" शब्द का अर्थ लोगों के सामूहिक निकाय का नाम है जो सार्वजनिक मुद्दों पर विचार-विमर्श कर उनका समाधान निकालने का प्रयास करती है। पंचायत राज का अर्थ लोगों के सामूहिक निकाय द्वारा शासन करना है।

"पंच" शब्द का अर्थ शासन के लिए सामूहिक समूह के सदस्यों की संख्या से संबंधित है अर्थात् पंच या पाँच। पंचायत गाँव के प्रमुख लोगों या समझदार लोगों के लिए स्थानीय शब्द है, जो मानवी तथा सामाजिक कार्यों में भाग लेते हैं। यह "परम्परागत" और "चमत्कारिक" प्राधिकृत लोग हैं जो पंचों के रूप में कार्य करते हैं। अब पंचायत संवैधानिक स्तर की स्वीकृति के पश्चात् स्थानीय स्व-शासन की एक संस्था के रूप में स्थापित हो चुकी हैं।

12.10 संदर्भ व अन्य लेख

भार्गव, बी. एस., 1979, "पंचायती राज इंस्टीट्यूशंसः ऐन एनालिसिस ऑफ इशूज, प्रॉब्लम्स एण्ड रिकमंडेशंस", अशोक समिति, आशीष पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

चीमा, जी. शब्बीर और रोंडिनेली, डेनिस, ए. (सं.), 1983, "डिसेंट्रलाइजेशन एंड डेवलपमेंट : पॉलिसी इम्प्लीमेंटेशन इन डेवलपिंग कंट्रीज", सेजल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।

दर्शंकर, ए. वाई., 1979, "लीडरशिप इन पंचायती राज", पंचशील, जयपुर।

यूरोपियन चॉर्टर ऑफ लोकल सेल्फ गवर्नमेंट, एक्सप्लेनेटरी रिपोर्ट, कौन्सिल ऑफ यूरोप, 1985, स्ट्रासबूर्ग, http://www.conventions.coe.int

भारत सरकार, 1988, रिपोर्ट्स ऑफ द वर्किंग ग्रुप ऑन डिस्ट्रिक्ट प्लानिंग, योजना आयोग, नई दिल्ली।

भारत सरकार, 1985, रिपोर्ट ऑफ द कमेटी टू रिव्यू द इक्सीस्टींग एडमिनिस्ट्रेटिव अरेंजमेंट्स फॉर रूरल डेवलपमेंट एंड पॉवर्टी एलिवेशन प्रोग्राम्स (CAARD), ग्रामीण विकास विभाग, कृषि मंत्रालय, नई दिल्ली।

भारत सरकार, 1988, ऑकेजनल पेपर, ग्रामीण विकास विभाग, कृषि मंत्रालय, नई दिल्ली।

भारत सरकार, 1988, रिपोर्ट ऑफ दी कमीशन ऑन सेंटर स्टेट रिलेशन्स, चैयरमैन जस्टिस सरकारिया, संख्या 2, कंट्रोलर ऑफ पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

भारत सरकार, दसवीं पंचवर्षीय योजना, 2002-07, अध्याय 6.1, "अर्बन डेवलपमेंट", योजना आयोग।

भारत सरकार, दसवीं पंचवर्षीय योजना, 2002-07, अध्याय 6.1, "अर्बन डेवलपमेंट", योजना आयोग।

भारत सरकार, योजना आयोग, दसवीं पंचवर्षीय योजना, जून 2005, मिड टर्म अपरेजल ऑफ टैन्थ

फाइव ईयर प्लान, 2002-2007, अध्याय 17, "गवर्नेन्स एंड डेवलपमेंट", और अध्याय 11, "अर्बन इनफ्रास्ट्रक्चर"।

हनुमंत राव, सी. एच., 1989, "डिसेंट्रलाइज्ड प्लानिंगः एन् ओवरव्यू ऑफ एक्सपीरियंस एंड प्रॉस्पेक्ट्स", *इकॉनामिक एंड पालिटिकल वीकली,* 25 फरवरी।

इंडिया टुडे, मार्च 13, 2006।

जैन, जी. पी., 1967, "पंचायती राज बी डैम्ड", *कुरुक्षेत्र,* 2 अक्तूबर।

कश्यप, सुभाष, 2003, "इंस्टीट्यूशनलाइजेशन ऑफ ग्रासरूट्स गवर्नेंस", *ग्रासरूट्स गवर्नेंस,* खंड 1, संख्या 1।

खन्ना, बी. एस., 1994, *पंचायती राज इन इंडिया,* दीप एवं दीप पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

मंडल, देबकी नंदन, 1992, "डिसेंट्रलाइजेंशन होल्ड्स दी की टु प्रॉग्रेस", *बिजनेस स्टैण्डर्ड,* 24 जून।

माथुर, एम. वी., और इकबाल नारायण (संपा.), 1969, पंचायती राज, प्लानिंग एंड डेमोक्रेसी, एशिया पब्लिशिंग कम्पनी, मुम्बई।

मिश्रा, श्वेता, 1994, *डेमोक्रैटिक डिसेंट्रलाइजेशन इन इंडिया,* मित्तल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

मिश्रा, एस. एन., कुमार लोकेश और पाल, चैताली, 1996, न्यू पंचायती राज इन एक्शन, मित्तल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

मिश्रा, एस. एन., 1981, रूरल डेवलपमेंट एण्ड पंचायती राज, कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली।

मिश्रा, एस. एन. एवं मिश्रा, श्वेता, 2002, *डिसेन्ट्रलाइज्ड गवर्नेंस,* शिप्रा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

रिपोर्ट ऑफ दी कमेटी ऑन डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन, 1969, सहकारिता तथा ग्राम विकास प्रशासन, महाराष्ट्र सरकार।

शर्मा, एम. पी., 1967, लोकल सेल्फ गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, किताब महल, नई दिल्ली।

सिंह, होशियार, 1996-97, "डिसेंट्रलाइजेशन मॉडल्स एण्ड रिस्पांसिव एडमिनिस्ट्रेशन : नीड ऑफ ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरी एडमिनिस्ट्रेशन", *कुरुक्षेत्र,* खंड 30-31।

सुब्रमण्यम, एम.वी. एस., 1967, "मैकिंग विलेज डेमोक्रैसी वर्क, *कुरुक्षेत्र,* 2 अक्तूबर।

संविधान (73वाँ संशोधन) अधिनियम, 1992, भारत का गजट, कानून, न्याय तथा कम्पनी मामलों का मंत्रालय, नई दिल्ली।

युगांधर, बी.एन. और अमिताभ मुखर्जी (संपा.), 1991, "रीडिंग्स इन डिसेंट्रलाइज्ड प्लानिंग", कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली।

12.11 अभ्यास

1) निकट के स्थानीय प्राधिकरण में जाएँ और उन महिला तथा पिछड़ा वर्ग प्रतिनिधियों से बात करें जिन्हें 73वें और 74वें संशोधन के बाद स्थानीय प्रशासन में जगह मिली है। क्या उन्हें इन नई स्थितियों में अपनी बात प्रभावी ढंग से रखने का अवसर मिला है? इसके आधार पर अपनी रिपोर्ट लिखें।

2) नव निर्मित स्वशासन संस्थाओं के वादों और संभावनाओं की विवेचना करें। क्या वे स्थानीय मुद्दों और हितों को प्रभावी ढंग से रखती हैं, या मात्र सजावटी हैं? अपना आकलन प्रस्तुत कीजिए।

इकाई 13 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों की विशेषताएँ

रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 स्थानीय शासन को संवैधानिक दर्जा देने हेतु उठाए गए कदम

13.2.1 73वें संविधान संशोधन अधिनियम की विशेषताएँ

13.2.2 74वें संविधान संशोधन अधिनियम की विशेषताएँ

13.2.3 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों के संदर्भ में विकेन्द्रीकृत आयोजना

13.3 आर्थिक सुधारों के बाद उठाए गए कदम

13.4 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के बाद विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं के कार्य

13.5 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों के बाद स्थानीय शासन संस्थाओं का कामकाज : टिप्पणियाँ

13.6 सारांश

13.7 मुख्य अवधारणाएँ

13.8 संदर्भ व अन्य लेख

13.9 अभ्यास

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- स्थानीय शासन में फिर से जान फूँकने की प्रक्रिया की पृष्ठभूमि के बारे में जान सकेंगे;
- 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों की विशेषताओं को समझ सकेंगे;
- आर्थिक सुधारों के बाद उठाए गए कदमों की विवेचना कर सकेंगे; और
- संशोधन के बाद विभिन्न राज्यों में स्थानीय शासन के कार्य को रेखांकित कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

पंचायती राज में फिर से जान फूँकने की जो अभिव्यक्ति 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से हुई है, उसका श्रेय राजीव गांधी के तेज़-तर्रार नेतृत्व को जाता है। कोयम्बटूर में जून 1988 में "अनुक्रियाशील प्रशासन" (Responsive Administration) पर आयोजित पाँचवीं कार्यशाला को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था कि *"यदि हमारा जिला प्रशासन पर्याप्त रूप में अनुक्रियाशील नहीं है, तो इसका मूल कारण यह है कि यह पर्याप्त रूप में प्रतिनिधित्वकारक नहीं है।"* पंचायती राज संस्थाओं के क्षीण हो जाने से प्रशासन लोगों से दूर हो गया है अतः लोगों की आवश्यकताओं के प्रति इसकी संवेदनशीलता कुण्ठित हो गई है।

संविधान (73वाँ संशोधन) अधिनियम, 1992 को 24 अप्रैल 1993 को लागू किया गया। इसमें कोई विवाद नहीं कि यह एक ऐतिहासिक विधान है। अब बुनियादी प्रश्न यह उठता है कि इस विधान के पीछे मूल भावना क्या थी। क्या यह अनुरूपता अधिनियमों को पारित करने तथा पंचायतों को कुछ प्रशासनिक और वित्तीय अधिकार देने तक सीमित था, अथवा उन्हें सहभागी स्वशासन हेतु वास्तविक संस्थाएँ बनाने तक सीमित था? ज़ोर अभी तक इनमें से पहली बात पर रहा है जिसने पंचायतों को धन सहित केन्द्र अथवा राज्य द्वारा प्रायोजित योजनाएँ भेजने से पंचायतों को मात्र पहले से विचारित योजनाओं के कार्यान्वित अभिकरण बना दिया है। इस ऐतिहासिक विधान के पीछे यह मूल भावना नहीं थी। पंचायती राज व्यवस्था को पुनः सक्रिय करने के माध्यम से लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का मूल उद्देश्य गाँधी जी की "स्वराज" की अवधारणा को साकार करना था। इस इकाई में हम 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों की विभिन्न विशेषताओं पर गौर करेंगे।

13.2 स्थानीय शासन को संवैधानिक दर्जा देने हेतु उठाए गए कदम

जैसा कि आप जानते हैं कि दोनों ही संशोधन विधेयकों (64वें और 74वें) को किसी न किसी कारण से संसद की मंजूरी नहीं मिल पाई। फिर भी, इन दोनों विधेयकों ने इस राष्ट्रीय बहस का पर्याप्त अवसर तो दे ही दिया कि क्या पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिया जाना चाहिए। इन विधेयकों से सांसदों को यह मदद मिल गई कि जब भी अवसर आए वे इनके विस्तृत विवरण में जा सकते हैं। लोकसभा के मध्यावधि चुनाव होने तक यह आम सहमति बन गई थी कि पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिया जाए और ऐसी व्यवस्थाएँ की जाएँ कि ये संस्थाएँ बदलाव और विकास के माध्यम के रूप में कार्य कर सकें। 1991 में सत्ता में आने के बाद, कांग्रेस सरकार ने पंचायती राज संस्थाओं को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए संविधान (72वाँ) संशोधन विधेयक 1991 पेश किया। इस विधेयक को संसद ने 22 दिसम्बर 1992 को पारित किया और अब इसे संविधान (73वाँ संशोधन) अधिनियम 1992 के नाम से जाना जाता है।

वैधानिक पंचायती राज संस्थाओं के रूप में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण को संस्था का रूप मिल जाने से इस प्रकार इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ गया और भारत में ग्रामीण स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के विकास में यह एक नया मोड़ साबित हुआ। "स्वशासन की संस्थाओं" शब्द की व्याख्या दो तरह से हुई है। ***पहली***, संविधान में कहा गया है कि पंचायतें स्वशासन की संस्थाएँ हैं। इसका मतलब यह होता है कि उनके पास एक विशिष्ट अधिकार क्षेत्र में शासन करने हेतु स्वायत्तता और सत्ता होनी चाहिए। अपने बुनियादी रूप में, 73वाँ संविधान संशोधन पंचायतों को यह विशिष्ट दर्जा देता है। इसलिए, वस्तुतः यह शासन का तीसरा स्तर है। ***दूसरी***, यह केवल "प्रशासनिक संघवाद" (*Administrative Federalism*) को मज़बूत कर रहा है, और कुछ नहीं। मसलन, प्रो. एस. गुहान का तर्क है कि 73वें संविधान संशोधन के प्रावधान प्रशासनिक संघवाद को मज़बूत करते हैं, ताकि राज्यों से स्थानीय निकायों को प्रशासनिक और वित्तीय अधिकार देने की प्रक्रिया को सुगम बनाया जा सके।

13.2.1 73वें संविधान संशोधन अधिनियम की विशेषताएँ

संविधान के "भाग VIII" के तुरंत बाद भाग IX रखा गया है, और संविधान की "दसवीं अनुसूची" के बाद "ग्यारहवीं अनुसूची" को जोड़ा गया है। विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

1) प्रत्येक गाँव में एक ग्राम सभा होगी, जिसके पास ऐसे अधिकार होंगे और जो ऐसे कार्य करेगी, जो राज्य की विधायिका उसे कानून द्वारा सौंपेगी।

2) पंचायत के सभी सदस्यों के चुनाव प्रत्यक्ष होंगे, और माध्यमिक तथा जिला स्तर तक अध्यक्ष का चुनाव अप्रत्यक्ष होगा। ग्राम स्तर पर अध्यक्ष के चुनाव का तरीका राज्य सरकार पर छोड़ दिया गया है। इस बारे में वही तय करेगी।

3) अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों (SC/ST) के लिए सीटों का आरक्षण प्रत्येक स्तर पर उनकी आबादी के अनुपात से तय किया गया है। महिलाओं के लिए आरक्षण कुल सदस्यता के एक-तिहाई से कम नहीं होगा, और इन सीटों को बारी-बारी से एक पंचायत के भिन्न-भिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को दिया जा सकता है। अध्यक्ष पद के लिए भी ऐसा ही आरक्षण किया गया है।

4) पंचायती राज संस्थाओं के लिए पाँच वर्ष का एक जैसा कार्यकाल रखा गया है और अधिक्रमण (supersession) की स्थिति में निकाय गठन के लिए होने वाले चुनाव को उसके भंग होने की तिथि के बाद छह महीने बीतने से पहले-पहले करा लेना होगा।

5) राज्य विधायिका को यह अधिकार दिया गया है कि वह पंचायतों को उपयुक्त स्थानीय कर लगाने, संग्रह करने और विनियोजित करने हेतु अधिकृत कर सकती है, और पंचायतों को संबंधित राज्य की समेकित निधि से सहायक अनुदान भी दिलवा सकती है।

6) पंचायतों का गठन प्रत्येक राज्य में ग्राम, माध्यमिक और जिला स्तरों पर किया जाएगा, जिससे पंचायती राज ढाँचे में एकरूपता आएगी। वैसे, जिन राज्यों की आबादी 20 लाख से ऊपर नहीं है, उन्हें यह विकल्प दिया गया है कि वे चाहें तो माध्यमिक स्तर पर पंचायत नहीं भी रख सकते हैं।

7) प्रत्येक पाँच वर्षों में एक बार एक वित्त आयोग का गठन किया जाएगा, जिसका काम होगा पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करना और राज्य और स्थानीय निकायों के बीच निधियों के वितरण पर राज्य को उपयुक्त सिफारिशें करना।

8) निरंतरता सुनिश्चित करने हेतु, अधिनियम में यह प्रावधान है कि इस संशोधन अधिनियम के शुरू होने से ठीक पहले जो पंचायतें थीं वे अपनी अवधि समाप्त होने तक बनी रहेंगी, जब तक सम्बन्धित राज्य की विधायिका प्रस्ताव पारित करके उन्हें भंग नहीं कर देती।

9) राज्य विधायिकाएँ, संविधान के प्रावधानों के साथ अनुरूपता के लिए, अपने पंचायत अधिनियमों में, इस अधिनियम के प्रभावी होने के बाद अधिकतम एक वर्ष की अवधि में आवश्यक संशोधन करेंगी।

अभी तक तो 73वें संविधान संशोधन अधिनियम 1992 ने भारत में प्रभावी और सक्षम पंचायती राज संस्थाओं के लिए सामान्य दिशा निर्देश ही दिए हैं। इसने पंचायती राज संस्थाओं को एक संवैधानिक दर्जा दिया है, तीन-स्तरीय व्यवस्था को स्थाई बनाकर उन्हें एक प्रकार की एकरूपता दी है, प्रत्येक पाँच वर्षों के बाद राज्य चुनाव आयोग की देखरेख में चुनाव को अनिवार्य बनाकर एक नियमितता दी है, और राज्य वित्त निगम का गठन करके उन्हें और अधिक वित्तीय स्वायत्तता दी है।

पंचायती राज संस्थाओं के समक्ष जो समस्याएँ आ सकती हैं, वे इस प्रकार हैं :

पहली, अभी हाल तक जिस समस्या को लेकर सबसे अधिक बहस होती थी, वह है पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता देना। विद्वानों का प्रायः यही विचार था कि संविधान संस्थापकों ने राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्तों के अंतर्गत भाग IV में संविधान के अनुच्छेद 40 में स्थान देकर लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकृत संस्थाओं के पक्ष में केवल जबानी जमा खर्च किया है। किन्तु 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के बाद पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक वैधता मिल गई है।

दूसरी, पंचायती राज संस्थाओं की कार्य प्रक्रिया की समस्या उनके ढाँचे से सम्बन्धित थी क्योंकि एकरूपता की कमी थी। खुशी की बात है कि प्रस्तुत संशोधन अधिनियम से न केवल ढाँचे में एकरूपता लाने में मदद मिलेगी बल्कि समाज के संपन्न तबकों के बढ़ते महत्त्व और हस्तक्षेप को रोकने के मूल दर्शन को भी हासिल किया जा सकेगा।

तीसरी, पंचायती राज संस्थाओं की असफलता का मुख्य कारण अनियमित चुनाव और बार-बार का दमन और निलम्बन था। हालिया अधिनियम में इस विकट समस्या से सही ढंग से निपटा गया है और आशा की जाती है कि अब वे जमीनी स्तर के लोकतंत्र की सक्षम संस्थाएँ साबित होंगी क्योंकि अब एक निश्चित समय सीमा में नियमित चुनाव होंगे।

चौथी, ग्राम सभा एक ऐसी संस्था है जो विकास प्रक्रिया में भागीदारी के इच्छुक और योग्य सभी लोगों को समान अवसर प्रदान करती है। किन्तु, दुर्भाग्य का विषय है कि पूरे देश में ग्राम सभाओं की बैठकें केवल कागज पर होती हैं।

पाँचवीं, इससे सम्बन्धित एक और समस्या स्थानीय स्तर के नौकरशाहों और पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचित प्रतिनिधियों के बीच प्रेम-घृणा वाला सम्बन्ध था। इन दोनों के लिए भूमिकाएँ स्पष्ट न होने के कारण, ये सही तालमेल के अभाव में अलग-अलग दिशाओं में चला करते थे। पंचायती राज संस्थाओं की विफलता का यह एक अहम कारण रहा है।

और अंतिम, पिछले तीन दशकों में पंचायती राज संस्थाओं से जुड़ी अन्य समस्याएँ थीं : पंचायत समितियों और जिला परिषदों की हैसियत, वित्त की कमी, ग्राम विकास आयोजना में पंचायती राज संस्थाओं की संलिप्तता, विकेन्द्रीकरण का प्रश्न। इस संशोधन में, इन सभी समस्याओं को विधान पुस्तक में जगह देकर उनके समाधान का प्रयास किया गया है।

73वें संविधान संशोधन अधिनियम में ग्राम सभा का दर्जा

73वें संविधान संशोधन अधिनियम में ग्राम सभा की स्थापना को अनिवार्य कर दिया गया है। किन्तु, इसके अधिकार क्षेत्रों और अधिकारों का निर्धारण राज्य सरकारों पर छोड़ दिया गया है। अधिकांश राज्यों के विधानों में ग्राम सभा को एक सजावटी, प्रतीकात्मक भूमिका दी गई है। जैसे प्रस्तावों का समर्थन करना, सिफारिशें करना, वार्षिक हिसाब पर विचार करना, विकास योजनाओं की समीक्षा करना, संपन्न कार्यों की जाँच करना। ग्राम सभा को दिए जाने वाले अन्य कार्य हैं: गाँव में सद्भाव और एकता को बढ़ावा देना, स्वैच्छिक श्रम और नकद अथवा अन्य अंशदान को जुटाना, विकास योजनाओं के कार्यान्वयन में सहायता देना, और प्रौढ़ शिक्षा तथा परिवार कल्याण के कार्यक्रमों को बढ़ावा देना (शर्मा, 2004)।

13.2.2 74वें संविधान संशोधन अधिनियम की विशेषताएँ

स्वाधीनता उपरांत, प्रारंभ से ही, शहरी स्थानीय शासन के साथ उन लोगों ने सौतेला व्यवहार किया जो भारत में जमीनी स्तर पर स्वशासन के समर्थक थे। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम की तरह, 74वें संविधान संशोधन में भी शहरी स्थानीय निकायों का ढाँचा निर्धारित किया गया है; उनके नियमित, स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों का प्रावधान किया गया है; अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए सीटों के आरक्षण की व्यवस्था की गई है; उनका कार्यकाल पाँच वर्ष तय किया गया है उन्हें मनमाने ढंग से भंग होने से बचाने की व्यवस्था की गई है; उनके अधिकार और दायित्व स्पष्ट किए गए हैं; और उनके वित्तीय आधार को मज़बूत बनाने का प्रयास किया गया है। इसमें दो और बातें हैं जो 73वें संविधान संशोधन में नहीं मिलतीं। इसमें विकेन्द्रीकृत आयोजना के लिए निर्वाचित के अतिरिक्त नामांकित विशेषज्ञ व्यक्तियों का भी प्रावधान है।

भारतीय गणराज्य के तैंतालीसवें वर्ष में, संविधान (74वाँ) संशोधन पारित किया गया, जो 24 अप्रैल 1993 को प्रभावी हुआ। दो महत्त्वपूर्ण समितियाँ – (1) जिला योजना समिति, अनुच्छेद 243 जेड इ (District Planning Committee; DPC), और (2) महानगर आयोजना समिति, अनुच्छेद 243 जेड ई (Metropolitan Planning Committee; MPC) – गठित की गई हैं। इनकी विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

1) शहरी स्थानीय सरकारी निकायों को संवैधानिक दर्जा दिया गया है। "स्थानीय शासन" राज्य का विषय है। राज्य विधायिकाओं के पास यह अधिकार छोड़ दिया गया है कि वे शहरी शासन संस्थाओं की विभिन्न इकाइयों के अधिकारों और कार्यों को निश्चित कर सकती हैं, जिनकी व्यापक रूपरेखा ही संसद ने तैयार की है।

2) यह प्रावधान किया गया है कि लोकसभा और राज्य की विधान सभा की तरह इन नगर निकायों का प्रत्यक्ष चुनाव लोगों द्वारा किया जाएगा। नगर निकायों के चुनाव अनिवार्य होंगे और राज्य चुनाव आयोग उनका संचालन करेगा।

3) महिलाओं के लिए एक-तिहाई सीटों का आरक्षण सुनिश्चित है जिसमें अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की महिलाएँ भी शामिल हैं।

4) नगरपालिकाओं की आर्थिक सक्षमता सुनिश्चित करने हेतु एक वित्त निगम का गठन किया गया है। नगर कोषों में करों, चुंगियों, ड्यूटी, शुल्कों और अनुदानों के माध्यम से बढ़ोतरी की गई है।

5) स्वशासन की शहरी संस्थाओं को 18 विषयों पर आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय हेतु योजनाएँ बनाने और लागू करने की शक्ति और प्राधिकार दिया गया है।

6) जिला योजना समितियों और महानगर योजना समितियों का गठन किया गया है। इस तरह, भारत में आयोजना को जमीनी स्तर पर विकेन्द्रीकृत कर दिया गया है।

7) (पंचायतों पर) 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों की बदौलत पूरे भारत के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन की अनेकानेक संस्थाएँ बन गई हैं। उन्हें अनेक अधिकार (ग्रामीण के लिए 29 और शहरी के लिए 18) दिए गए हैं, सरकार के विमर्शी और अधिशासी विभाग खोले गए हैं, प्राधिकार और ज़िम्मेदारियों को स्पष्ट किया गया है, विकास समितियों (जिला योजना समितियों और महानगर योजना समितियों) और वित्त आयोग का गठन किया गया है और प्रत्येक नगरपालिका वार्ड में समितियाँ और क्षेत्रीय समितियाँ गठित की हैं, जिससे भारत को सचमुच "संघों का संघ" बनाया जा सके।

शहरी स्थानीय निकायों की कार्य सम्बन्धी समस्याएँ

74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, स्थानीय निकायों को अधिकार देने के मामले में, बहुत उदार नहीं रहा है। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि जहाँ 73वें संविधान संशोधन अधिनियम में कम से कम 29 विषयों को पंचायती राज निकायों को हस्तांतरित किया गया है, वहीं 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में शहरी स्थानीय निकायों को केवल 18 विषयों को हस्तांतरित किया गया है। इसके अतिरिक्त, 73वें संविधान संशोधन की तरह इन विषयों का शहरी स्थानीय शासन की विभिन्न स्थानीय इकाइयों के बीच स्पष्ट विभाजन नहीं किया गया है, जिससे ये सम्बन्धित राज्यों की सनक पर आधारित हो गए हैं। इससे राज्यों को अपनी पसंद को थोपने की आजादी मिल गई है और इससे कभी-कभी और भी भ्रम की स्थिति बनी है। अनेक मामलों में, हालाँकि कागज पर तो अधिकार दे दिए गए हैं, फिर भी उनका वास्तविक हस्तांतरण दूर का सपना ही बना हुआ है, और राज्य स्तर पर सम्बन्धित सरकारी विभागों का उन पर अभी तक एकाधिकार है और वे सम्बन्धित स्थानीय इकाई के माध्यम से उनका संचालन न करके उन्हें सीधे ही निपटा रहे हैं। निधियों के हस्तांतरण के मामले में भी यही हुआ है। एक समस्या स्थानीय इकाइयों के सामने हमेशा रही है – वित्तीय संसाधनों की कमी। उचित निधियों के अभाव में अधिकारों का कोई अर्थ नहीं रह जाता क्योंकि उन्हें व्यवहार में परिणत नहीं किया जा सकता। एक ओर अंतर्विरोध का उल्लेख यहाँ किया जा सकता है : एक ओर तो स्थानीय निकाय पैसों का घोर अभाव झेल रहे हैं और दूसरी ओर निर्वाचित प्रतिनिधि अपनी नव-अर्जित संवैधानिक हैसियत

देखते हुए और अधिक भत्ते और सुविधाएँ चाहते हैं। यदि (74वें) संविधान संशोधन को अमली जामा पहनाना है, तो उपर्युक्त समस्याओं से निपटना होगा।

वित्तीय प्रावधान

74वें संविधान संशोधन में प्रावधान है कि प्रत्येक राज्य संशोधन के एक वर्ष के भीतर और उसके बाद प्रत्येक पाँच वर्षों में राज्य वित्त आयोग का गठन स्थानीय निकायों के वित्तीय संसाधनों के लिए करेगा। दुर्भाग्यवश, आयोग की सिफारिशें सम्बन्धित राज्यों के लिए बाध्यकारी नहीं हैं। किन्तु नगरपालिकाएँ फिर भी राज्य सरकारों पर यह दोष लगाती हैं कि उन्हें शहरी निकाय को चलाने के लिए आवश्यक धन नहीं मिल रहा है।

जन भागीदारी

74वें संविधान संशोधन अधिनियम में "जन भागीदारी" को एक मुख्य उद्देश्य के रूप में देखा गया है, उसके बावजूद शहर के नगरपालिका सम्बन्धी मामलों में लोगों की वास्तविक भागीदारी अभी तक सीमित ही है। इस प्रवृत्ति का प्रमुख कारण यह है कि लोग नगर निकायों को संदेह की दृष्टि से देखते हैं, और यह मानकर चलते हैं कि उनकी समस्याओं और शिकायतों का निपटारा नहीं किया जाएगा।

निजी सार्वजनिक सहभागिता

अधिकांश नगरपालिकाएँ क्योंकि कुशासन की मिसाल हैं, कोई भी निजी पक्ष नगर अधिकारियों से हाथ मिलाने को तैयार नहीं होता। निजी पक्ष यह भी सोचते हैं कि नगर अधिकारियों से अपनी परियोजनाओं को स्वीकृत करवाना भी समय खपाने और बर्बादी वाला काम है (दीक्षित, 2004)।

संविधान (74वाँ संशोधन) अधिनियम, 1992 : कुछ प्रेक्षण

दोनों (73वाँ और 74वाँ) संविधान संशोधन अधिनियम भारत में स्थानीय प्रशासन के विकास की अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं। भारत में पहली बार गाँवों में पंचायती राज संस्थाओं को और शहरों में नगरपालिकाओं तथा नगरनिगमों को इन दो संशोधनों के माध्यम से संवैधानिक दर्जा दिया गया है। इन्हें स्थानीय स्तर पर "सरकार" का उच्च दर्जा दिया है जैसे राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्र सरकार और राज्य स्तर पर राज्य सरकार है (भट्टाचार्य, 2004)।

नगरपालिका केन्द्रीय विधान अर्थात् 74वें संविधान संशोधन अधिनियम की बदौलत पूरे भारत में सैकड़ों छोटी-छोटी स्थानीय सरकारें फैल गई हैं। प्रादेशिक अधिकार क्षेत्रों वाली सरकारों (शासनों) का गठन हुआ है। इस प्रकार, भारत "संघों का संघ" बन गया है। 74वें संविधान संशोधन अधिनियम ने शहरी स्थानीय शासन के दर्जे को संवैधानिक ही नहीं बनाया है, बल्कि उसके जीवन, ढाँचे, कार्य प्रणाली और वित्त में भी सुधार किया है (दास, 2004)।

जिला योजना समिति

74वें संविधान संशोधन अधिनियम की बदौलत, जिला योजना समितियों (District Planning Commitees; DPCs) को 243 जेड (डी) के अंतर्गत पहली बार संवैधानिक दर्जा मिला है। यहाँ यह उल्लेख करना होगा कि योजना आयोग एक संवैधानिक इतर निकाय है और फिर भी यह इतना सशक्त है कि हर साल सभी राज्य सरकारें उससे निधियों की याचना करने आती हैं। किन्तु, यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि जिस संस्था को जिला आयोजना हेतु संवैधानिक दर्जा मिला हुआ है, उसे निष्प्रभावी कर दिया गया है। क्या यह चिंता का विषय नहीं है? समय की माँग है कि जिला योजना समिति को प्रभावी बनाया जाए और पंचायती राज संस्थाओं और नगरपालिकाओं द्वारा तैयार की गई जिला योजना को राज्य सरकार बिना

किसी बदलाव के मंजूर करे। यह भी होना चाहिए कि जिला योजना समिति निचले स्तर की इकाइयों को उनकी वार्षिक कार्य योजना और समेकित पंचवर्षीय योजना के सम्बन्ध में दिशा-निर्देश दें।

13.2.3 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों के संदर्भ में विकेन्द्रीकृत आयोजना

स्थानीय स्तरों पर उपयुक्त योजना तंत्र स्थापित करने के प्रयास आधे मन से हुए हैं। भारत में योजना का प्रभावी विकेन्द्रीकरण राज्य के स्तर पर बहुत कुछ राज्य के आकार पर निर्भर करता है (राव, 1989)। जिला स्तर पर योजना तंत्र, तकनीकी विशेषज्ञता और वित्तीय संसाधन दोनों ही संदर्भों में, कमज़ोर था। वस्तुतः ऐसी कोई समन्वयकारी संस्था नहीं थी जो विभिन्न मौजूदा कार्यक्रमों और योजनाओं को जोड़ने की ज़िम्मेदारी लेती, जिससे उन्हें प्रभावी ढंग से लागू किया जा सकता। जिला स्तर पर विकेन्द्रीकृत आयोजना उन राज्यों में प्रभावी थी जिनकी उपलब्धि भूमि सुधार के क्षेत्र में बेहतर थी, जैसे पश्चिम बंगाल और कर्नाटक (तत्रैव)।

13.3 आर्थिक सुधारों के बाद उठाए गए कदम

1990 के दशक के प्रारंभ में, नरसिम्हा राव की कांग्रेस सरकार द्वारा शुरू किए गए आर्थिक सुधारों के उपरान्त, एक बार फिर लोकतान्त्रिक और विकेन्द्रीकृत आयोजना की ज़रूरत को महसूस किया गया। इसके परिणामस्वरूप, 73वाँ और 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया गया, जिसकी चर्चा भी बहुत हुई और स्वागत भी बहुत हुआ। इन दो अधिनियमों को विकेन्द्रीकृत शासन (decentralised governance) और विकेन्द्रीकृत आयोजना (decentralised planning) के संदर्भ में मील का पत्थर माना गया। इस स्थिति में, यह देखना अनिवार्य हो जाता है कि ये दो अधिनियम विकेन्द्रीकृत योजना के विचार के कितने अनुरूप हैं, अर्थात् वे निम्नलिखित शर्तों को कहाँ तक पूरा करते हैं :

1) योजना की श्रेणीबद्धता में नियमित निकायों का गठन;
2) इनमें से प्रत्येक स्तर को शक्ति और कार्यों का विकेन्द्रीकरण;
3) इनमें से प्रत्येक स्तर को वित्तीय संसाधन देना;
4) नौकरशाही के बजाय उच्चतर राजनीतिक स्तरों की अधीनता;
5) इनमें से प्रत्येक स्तर को व्यावसायिक प्रशिक्षण संपन्न व्यक्ति देना;
6) इन स्तरों के बीच समन्वयन का प्रभावी तंत्र बनाना; और
7) लोगों की प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित करने के साधन तैयार करना।

अधिकारों और कार्यों का विकेन्द्रीकरण

73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों ने संविधान में ग्यारहवीं और बारहवीं अनुसूचियों को जोड़ा, जिनका सम्बन्ध पंचायती राज संस्थाओं और नगरपालिकाओं से है। इसमें (स्थानीय महत्त्व के) क्रमशः 29 और 18 विषय रखे गए। दोनों ही सूचियों में आर्थिक और सामाजिक पुनर्निर्माण के विषय हैं, जिसमें स्थानीय स्तर पर आयोजना भी शामिल है। अनुच्छेद 243 जी में भी पंचायती राज संस्थाओं को आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के कार्यक्रमों के निर्माण और कार्यान्वयन के अधिकार और ज़िम्मेदारी सौंपी गई। किन्तु विषयों के हस्तांतरण के संदर्भ में एक मिली-जुली तस्वीर उभरती है, क्योंकि इस सम्बन्ध में कोई एकरूपता नहीं है। वास्तव में, 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के एक दशक बीत जाने के बाद भी पंचायतों को अधिकार और शक्तियाँ देने का काम बहुत कम हुआ है (चटर्जी, 2003)।

इसका मुख्य कारण यह है कि ये अनुसूचियाँ उदाहरणपरक और विवेकाधीन तो हैं, किन्तु राज्यों के लिए अनिवार्य नहीं हैं। इस तरह उनमें कुछ भी संवैधानिकता नहीं है .... संशोधनों में स्थानीय निकायों को सौंपे गए शासन के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों को बहुत आसानी से उपेक्षित कर दिया गया है ... (शारदा, 2003)।

वित्तीय अधिकारों का हस्तांतरण

73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों में स्थानीय शासन संस्थाओं को वित्तीय अधिकार देने का समर्थन किया गया है। (इसके लिए ग्यारहवीं और बारहवीं अनुसूची बनाई गई और उनके माध्यम से इन संस्थाओं को कार्यगत और वित्तीय अधिकार दिए गए हैं।) बहरहाल, यहाँ यह देखना प्रासंगिक होगा कि "ये दोनों अनुसूचियाँ अपने आप "राजस्व संसाधनों" के विषयों को समाहित नहीं करतीं, बल्कि प्रासंगिक रसीद के रूप में करती हैं। उनके द्वारा लगाए जाने वाले और उन्हें सौंपे गए कर, ड्यूटी, चुंगी, और शुल्क और उन्हें दिए जाने वाले सहायक अनुदानों को राज्य सरकारों के विवेक पर छोड़ दिया गया है (तत्रैव)।

इन दोनों अधिनियमों में यह प्रावधान किया गया है कि ग्रामीण और शहरी स्थानीय निकायों की ज़रूरतों को समग्रता में देखने के लिए और समुचित सिफारिशें करने के लिए राज्य वित्त आयोगों का गठन किया जाए, जिससे कि ये संस्थाएँ उन्हें सौंपे गए कार्यों को प्रभावी ढंग से करने में समर्थ हों। स्थानीय निकायों को वित्तीय स्वायत्तता देने की दिशा में यह निश्चित तौर पर एक महत्त्वपूर्ण कदम था। किन्तु, यहाँ यह उल्लेखनीय है कि हालाँकि अधिकांश राज्यों ने वित्त आयोग का गठन कर लिया है, फिर भी उनमें से अनेक ने अभी तक अपनी रिपोर्ट पेश नहीं की है, और जिन राज्य वित्त आयोगों ने अपनी रिपोर्ट सौंप दी हैं, उनकी सिफारिशों पर भी कोई ठोस कार्यवाही नहीं की गई है। इस प्रकार, उपर्युक्त विश्लेषण से यह बात सामने आती है कि इन संस्थाओं को वित्तीय अधिकार देने की दिशा में अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है।

नौकरशाही के बजाय उच्चतर राजनीतिक स्तरों की अधीनता

लोकतंत्र का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है नौकरशाही को लोगों के लोकतान्त्रिक ढंग से निर्वाचित प्रतिनिधियों के अधीन रखना। इसका कारण यह है कि नौकरशाही सेवक के तौर पर तो अच्छी होती है किन्तु मालिक के तौर पर खराब। यह बात जितनी केन्द्र और राज्य स्तरों पर सच है उतनी ही जमीनी स्तर पर भी। किन्तु, विडम्बना यह है कि विभिन्न राज्यों के काम-काज में स्थानीय स्तर पर जनता के प्रतिनिधियों के मुकाबले नौकरशाही को ऊपर रखा गया है (माहेश्वरी, 1992-93)। विभिन्न राज्यों के अधिनियमों में उच्चतर नौकरशाही को उन संस्थाओं को निलंबित करने और उनके अधिक्रमण तक का अधिकार दिया गया है। अधिकांश राज्यों में, इन संस्थाओं का विनियमन और नियंत्रण जिला स्तर के कर्मियों के हाथों में है। मसलन, हरियाणा कार्यक्रम अधिनियम 1994 की धारा 47(1) में जिला विकास तथा पंचायत अधिकारी अथवा एस डी ओ (सिविल) को यह अधिकार दिया गया है कि वे ग्राम पंचायत के किसी भी प्रस्ताव अथवा आदेश को निलंबित कर सकते हैं अथवा किसी अधिनियम के कार्यान्वयन को रोक सकते हैं। इस सम्बन्ध में गंगार्डे (Gangarde) की टिप्पणी भी उल्लेखनीय है :

कर्नाटक पंचायती राज अधिनियम में पंचायतों के निष्पादन को जाँचने-आँकने का अधिकार नौकरशाही को दिया गया है। *बिहार पंचायती राज अधिनियम,* 1993 में भी नियंत्रण के प्राधिकार अधिकारियों को ही दिए गए हैं। पंचायत के नेताओं को अपना त्यागपत्र नौकरशाहों को देना होता है। *हरियाणा पंचायती राज अधिनियम* में भी अधिकांश अधिकार नौकरशाही अथवा सरकार को दिए गए हैं, और पंचायतों के लिए स्वतंत्र रूप में कार्य करने की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी गई है। अनेक मामलों में, निदेशक पंचायत का आदेश अंतिम ही नहीं होता, उसे किसी अदालत में चुनौती भी नहीं दी जा

सकती। सरकार पंचायत के किसी प्रस्ताव को यह कहकर खारिज कर सकती है कि यह जनहित के विरुद्ध है। केरल पंचायत अधिनियम भी जनता के राज की जगह अधिकारी के राज की स्थापना का ही एक प्रयास है। *हिमाचल प्रदेश पंचायती राज अधिनियम* में पंचायतों को प्रशासनिक और वित्तीय स्वायत्तता नहीं दी गई है कि वे अपनी ज़िम्मेदारियों को प्रभावी ढंग से निभा सकें। *पंजाब पंचायती राज अधिनियम* में निदेशक, पंचायत को यह अधिकार दिया गया है कि वह किसी सरपंच को उसके पद से हटा सकता है। उत्तर प्रदेश विधान सभा ने तो अधिनियम की पुष्टि इतनी जल्दबाजी में करी कि विपक्ष को इस पर चर्चा का मौका ही नहीं दिया गया। आंध्र प्रदेश पंचायत अधिनियम भी पंचायत पर नौकरशाही के नियंत्रण का अपवाद नहीं है (गंगार्डे, 1995)।

व्यावसायिक प्रशिक्षण सम्पन्न व्यक्तियों की नियुक्ति

आयोजना एक विशेषज्ञ गतिविधि है जिसमें कौशल, जानकारी और आँकड़ा आधार की ज़रूरत होती है, और लोकतंत्र में जनता के प्रतिनिधियों के पास यह सब होने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। और फिर, पदों पर उनका चुनाव थोड़े समय के लिए ही होता है। वहीं, नौकरशाही स्थाई होती है और इसीलिए उसके पास बहिरंग क्षेत्र (फील्ड) का व्यापक अनुभव और ज्ञान होता है। इसके अतिरिक्त अधिकांश जानकारी आधिकारिक अभिलेखों में होती है जो नौकरशाही के कब्जे में होते हैं। इस प्रकार, लोकतंत्र में आयोजना के लिए अनिवार्य होता है कि व्यावसायिक प्रशिक्षण संपन्न व्यक्तियों को जन प्रतिनिधियों के साथ और उनकी सेवा और अधीनता में लगाया जाए। विडम्बना यह है कि स्थानीय नौकरशाही को उनका आज्ञाकारी और ताबेदार बनाए बिना ही स्थानीय योजनाएँ बनाने और उनके कार्यान्वयन के लिए हमेशा उत्तरदायी बनाया जाता है। जबकि, अधिकांश प्राधिकार तो हमेशा जिला प्रशासन के पास रहे हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि "ऐतिहासिक तौर पर, स्थानीय प्रशासन तो वस्तुतः जिला प्रशासन का ही एक हिस्सा हुआ करता था और लोगों की लोकतान्त्रिक महत्त्वाकांक्षाएँ बढ़ने के साथ उसे एक अलग सत्ता बना दिया गया, किन्तु उसे जिला प्रशासन की ही शाखा और उपग्रह मानकर उसकी उपेक्षा की गई। जिला प्रशासन तो स्थानीय शासन का अदम्य प्रतिस्पर्धी और प्रतियोगी है" (माहेश्वरी, 1992-93, वही)।

73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों और विभिन्न राज्य सरकारों के अधिनियमों ने भी व्यावसायिक प्रशिक्षण संपन्न व्यक्तियों को स्थानीय निकायों में नियुक्त करने और स्थानीय नौकरशाही को स्थानीय जनता के नियंत्रण में लाने की दिशा में कोई प्रगति नहीं की है। इसलिए ये दोनों अधिनियम भी विकेन्द्रित आयोजना के लिए आवश्यक इस अर्हता को पूरा नहीं कर पाए हैं।

प्रभावी समन्वय तंत्र बनाना

विकेन्द्रित आयोजना के लिए अनिवार्य बहुस्तरीय अधिनियमों के फलस्वरूप केवल अपर्याप्त संसाधनों का दुरुपयोग और अपव्यय ही होता है। इसलिए, विभिन्न स्तरों पर बनी योजनाओं के बीच अंतरसम्बन्ध विकसित करना और बनाना अनिवार्य हो जाता है। इस प्रकार, प्रभावी समन्वय तंत्र बनाना तो विकेन्द्रित आयोजना की अनिवार्य अर्हता है। इस सम्बन्ध में, 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में एक क्रांतिकारी कदम उठाते हुए जिला योजना समितियाँ बनाने का प्रावधान रखा, जिसका लक्ष्य था शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में विभिन्न स्तरों द्वारा बनाई गई योजनाओं में तालमेल स्थापित करना। 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के अनुच्छेद 243 जेड (डी) में भी पूरे जिले के लिए मिलीजुली योजना तैयार करने हेतु जिला योजना समितियाँ गठित करने का प्रावधान है – जिसमें शहरी और ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों के निर्वाचित प्रतिनिधि होंगे।

बहरहाल, इस प्रावधान को लागू करने की दिशा में अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। निस्संदेह, जिला योजना समिति का गठन विकेन्द्रीकरण को "गरीब समर्थक" बनाने की दिशा में उठाया गया एक कदम है। फिर भी, 74वें संविधान संशोधन अधिनियम को लागू हुए एक दशक से अधिक समय बीत

जाने के बाद भी अनेक राज्यों ने अभी तक अपने यहाँ जिला योजना समितियों का गठन नहीं किया है (चटर्जी, वही)। जहाँ तक जिला योजना समिति के गठन का सम्बन्ध है, जोकि राज्य सरकारों का वैधानिक दायित्व है, तो कुछ राज्यों ने तो बस औपचारिक तौर पर उनका गठन कर दिया है, किन्तु वे काम नहीं कर रही हैं। आंध्र प्रदेश ने तो इन समितियों का गठन ही नहीं किया है। हालाँकि केरल और पश्चिम बंगाल जैसे कुछ राज्यों ने वास्तव में ईमानदारी से विकेन्द्रीकरण को अपना लिया है, वहीं जिला योजना समिति बनाने और उन्हें सक्रिय करने के संदर्भ में अन्य राज्यों की शिथिलता से विकेन्द्रित आयोजना के साधनों के रूप में उनकी भूमिका सीमित हो सकती है (मैथ्यू, 2000)। कर्नाटक राज्य में पंचायतें जड़ें जमा चुकी हैं और सभी विकेन्द्रित आयोजना का नमूना बनी हुई थीं (1985 अधिनियम के अंतर्गत), किन्तु वहाँ भी जिला योजना समितियाँ ठीक से काम नहीं कर रही हैं (मिश्रा, 2000, वही)।

विस्मय का विषय है कि गुजरात राज्य पंचायती राज अधिनियम में जिला योजना समिति के गठन का प्रावधान ही नहीं है (चंद्रशेखर, 2000)।

जन भागीदारी

किसी भी योजना की सफलता के लिए जनता की भागीदारी अनिवार्य है। विकेन्द्रित आयोजना के संदर्भ में, जन भागीदारी का अर्थ होता है योजना के निर्माण और कार्यान्वयन दोनों के स्तर पर जन (लोगों) की प्रत्यक्ष भागीदारी। आयोजना में जन भागीदारी की आवश्यकता को पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में रेखांकित किया गया था। (पाँचवीं पंचवर्षीय योजना) विकेन्द्रित आयोजना में जनता की भागीदारी आकर्षित करने की सर्वाधिक प्रभावी व्यवस्था शायद ग्राम स्तर पर ग्राम सभाओं का गठन करके संभव होगी। हालाँकि, ग्राम सभा की भूमिका पहले ही समझ ली गई थी और कुछ राज्यों में उसे 1960 के दशक में ही वैधानिक दर्जा भी दे दिया गया था, फिर भी संवैधानिक दर्जा उसे 73वें संविधान संशोधन अधिनियम में ही मिला। इस अधिनियम में यह प्रावधान है कि प्रत्येक गाँव में ग्राम सभा का गठन किया जाए और वह गाँव के स्तर पर राज्य के अधिनियम के अनुसार कार्य करेगी और अधिकारों का इस्तेमाल करेगी। इसमें पंचायत के क्षेत्र के सभी पंजीकृत मतदाता होंगे। इस संस्था का महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि "देश की यह एकमात्र राजनीतिक संस्था है जिसमें प्रत्यक्ष लोकतंत्र क्रियाशील है" (माहेश्वरी, 1992-93, वही)। यह ठीक ही कहा गया है कि ग्राम सभा "गाँव में विभिन्न गतिविधियों की देखरेख करने, निर्णय करने, आयोजना और चिंतन की सामूहिक प्रक्रिया का अनूठा मंच" है। इस संस्था का निर्माण आम जनता को निर्णय करने की प्रक्रिया में शामिल करने और महिलाओं तथा दलित वर्गों का उत्थान करने के लिए हुआ है (शर्मा, 2003)।

वास्तव में, यह एकमात्र "मंच" है जो प्रत्यक्ष लोकतंत्र को सुनिश्चित कर सकता है। यह गाँव के प्रत्येक निवासी को पंचायत कार्यकारिणी के प्रस्ताव की चर्चा, आलोचना और स्वीकृति अथवा अस्वीकृति का और उसके पिछले निष्पादन के आकलन का समान अवसर देता है, और जमीनी स्तर पर लोकतंत्र के प्रहरी की भूमिका निभाता है" (मैथ्यू, 2000, वही)।

13.4 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के बाद विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं के कार्य

सभी राज्यों ने पंचायती राज संस्थाओं को मज़बूत करने सम्बन्धी नए विधान को लागू करने की प्रक्रिया 23 अप्रैल 1994 को पूरी कर ली थी। कम से कम ग्यारह राज्यों ने 72 घंटों में नया विधान लागू कर दिया। कुछ राज्यों ने तो 23 अप्रैल को सुबह ही यह काम कर दिया, जिससे 23 अप्रैल 1994 की अंतिम समय सीमा निकलने न पाए। इसी दिन पंचायतें भारतीय संविधान का हिस्सा बन गईं। बहरहाल, 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम जम्मू-कश्मीर, मिजोरम, नागालैण्ड और देश के कुछ अनुसूचित क्षेत्रों पर

लागू नहीं होता। किन्तु, केवल विधान बना देने से ही राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं की प्रभावशीलता और सक्षमता सुनिश्चित नहीं होती। अधिक महत्त्वपूर्ण उनका क्रियाशील होना है।

आंध्र प्रदेश

आंध्र प्रदेश पंचायती राज अधिनियम (1994) 30 मई 1994 को प्रभावी हुआ। ग्राम पंचायतों में विद्यमान सरपंचों को "प्रभारी सरपंच" का नया ओहदा दिया गया। आंध्र प्रदेश में, ग्राम पंचायतों को 12 अनिवार्य कार्य और 27 वैकल्पिक कार्य करने होते हैं। ये आंध्र प्रदेश पंचायती राज़ अधिनियम, 1994, की अनुसूची 1 में उल्लिखित 29 विषयों के अतिरिक्त हैं, जो संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची के सदृश्य हैं। राज्य की मंडल परिषदों को अधिनियम की अनुसूची 1 में निर्दिष्ट कार्यों को करना होता है, और इसके अतिरिक्त पंचायती राज अधिनियम की अनुसूची 1 में उल्लिखित चार विषयंतर्गत कार्य करने होते हैं: (1) सामुदायिक विकास, (2) पशुपालन और मछली पालन, (3) कृषि, (4) स्वास्थ्य तथा ग्रामीण स्वच्छता (विट्ठल, सी. पी., 1988)। विडम्बना यह है कि राज्य में पंचायती राज निकायों के चुनाव हो जाने के बाद भी, वित्तीय संसाधनों की तो छोड़िए पंचायती राज संस्थाओं को समुचित अधिकार और कार्य भी हस्तांतरित नहीं किए गए थे। राज्य विधान सभा ने आंध्र प्रदेश पंचायती राज अधिनियम में संशोधन करके यह प्रावधान कर दिया है कि जवाहर रोज़गार योजना (Jawahar Rojghar Yojana: JRY) और रोज़गार आश्वासन योजना (EAS) के अंतर्गत पंचायतों द्वारा प्राप्त की गई सारी निधियाँ राष्ट्रीयकृत बैंकों, सहकारी बैंकों अथवा डाकघरों में जमा करें।

बिहार

बिहार पंचायती राज अधिनियम 6 अगस्त 1993 को प्रभावी हो गया था, किन्तु पंचायती राज संस्थाओं के तीनों स्तरों के चुनाव अप्रैल-मई 2001 में संपन्न कराए गए। केन्द्र सरकार की इस धमकी का भी यहाँ कोई असर नहीं हुआ कि यदि चुनाव समय से नहीं कराए गए तो उसे दी जाने वाली निधि रोक दी जाएगी। सीटों के आरक्षण के प्रावधान का उपयोग राज्य सरकार द्वारा विधानसभा चुनाव में वोट बैंकों के लिए किया गया (मिश्रा, कुमार और पाल, 1996)।

गुजरात

गुजरात पंचायती राज अधिनियम 26 अगस्त 1993 को प्रभावी हुआ, और स्थानीय निकायों के चुनाव मई-जून 1995 में हुए। अन्यत्र की तरह, गुजरात में भी पंचायतों जैसे स्थानीय निकायों की स्वायत्तता को गठबंधन सरकार के समय में विधायकों और सांसदों के बढ़ते प्रभाव ने हाशिए पर धकेल दिया है। मुख्यमंत्री पर नियंत्रण बनाने के लिए किसी और पाले में चले जाने की धमकी देने वाले विधायक 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के बाद भी पंचायतों की गतिविधियों को प्रभावित करने की सामर्थ्य रखते हैं (पुरोहित, पी.वी., 1998)। गुजरात में विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप विकास की सभी गतिविधियाँ पंचायती राज संस्थाओं को हस्तांतरित कर दी गईं। किन्तु, जहाँ तक निधीयन (फंडिंग) का सम्बन्ध है, तो यह सरकार के हाथों में ही है और निधियों के आबंटन में जिला निकायों की बिल्कुल नहीं चलती। गुजरात में, पंचायती राज संस्थाओं को काफी अधिकार और कार्य दिए गए। राज्य सरकार ने पूरे विकास तंत्र को जिला पंचायत और निचले स्तरों अर्थात् तालुका पंचायत और ग्राम पंचायत को हस्तांतरित कर दिया है। ग्राम पंचायत को लगभग 20 विभिन्न कर और शुल्क लगाने का अधिकार है और तालुका पंचायत को ग्राम पंचायत की कराधान दरों को बढ़ाने का अधिकार है।

हरियाणा

जहाँ तक हरियाणा का सवाल है, तो सभी तीन स्तरों के चुनाव वहाँ दिसम्बर-जनवरी 1994-95 में हुए। राज्य सरकार ने यहाँ पंचायती राज संस्थाओं को और अधिक अधिकार दिए हैं। इनमें पंचायत विभाग के अतिरिक्त शिक्षा, लोक स्वास्थ्य, महिला तथा शिशु कल्याण, कृषि, बागवानी, पशुपालन, वन, और

खाद्य तथा आपूर्ति के विभागों द्वारा शुरू की गई योजनाओं और कार्यक्रमों का नियंत्रण और निरीक्षण शामिल है। यहाँ पंचायती राज संस्थाओं के अभिलेख ग्राम सभा के सभी मतदाताओं और सदस्यों के लिए सुलभ कराए गए। प्रत्येक पंचायत में एक "विकास पट्ट" रखा गया है जिसपर विभिन्न योजनाओं की आमदनी और खर्च का विवरण उपलब्ध रहता है।

कर्नाटक

कर्नाटक (7 अप्रैल, 1993 को) इस अधिनियम को पारित करने वाला पहला राज्य था। यह अधिनियम यहाँ 30 अप्रैल, 1993 को प्रभावी हो गया। ग्राम पंचायत चुनाव यहाँ निर्दलीय आधार पर 29 दिसम्बर 1993 को संपन्न हुए और अपने आप में इसलिए उल्लेखनीय थे कि निर्वाचितों में 43 प्रतिशत महिलाएँ और 32 प्रतिशत अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के सदस्य थे। राज्य सरकार ने एक समीक्षा समिति – नायक समिति – का गठन किया और उसे निम्नलिखित मुद्दों और समस्याओं की जाँच का काम सौंपाः कमज़ोर ग्राम सभा, पंचायती राज प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर नौकरशाही का प्रभुत्व, तीनों स्तरों के बीच अधिकारों और कार्यों का हस्तांतरण, न्याय पंचायतों के प्रावधान का अभाव, पाँच वर्षों के कार्यकाल में अध्यक्षों के रूप में विभिन्न आरक्षित वर्गों का समायोजन। इस समिति ने 19 मार्च 1996 को सरकार को एक रिपोर्ट देकर अपनी सिफारिशें पेश कर दीं। इन मुद्दों के आलोक में, सरकार ने सार्थक सिफारिशें को 1993 के अधिनियम के तीसरे संशोधन के रूप में स्वीकार कर लिया। इन संशोधनों के साथ, कर्नाटक 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के प्रावधान 243 जी की "भावना" को अमली जामा पहनाने की दिशा में आगे बढ़ रहा है जिसके अनुसार पंचायती राज संस्थाओं को स्वशासन की संस्थाएँ बनना चाहिए (शुभा, के., 1998)। कर्नाटक सरकार जमीनी स्तर पर भ्रष्टाचार रोकने के प्रयास कर रही है, और इस संदर्भ में निर्वाचित अध्यक्षों को लोकायुक्त की जाँच के दायरे में ला रही है। इसके अतिरिक्त, सरकार न्याय पंचायत पर भी एक विधेयक लाने की सोच रही है और जिला योजना समितियाँ उसी तरीके से काम करेंगी जैसी कि संविधान संशोधन में संकल्पना की गई है, और इस प्रकार वास्तविक विकेन्द्रीकृत आयोजना का मार्ग प्रशस्त होगा (तत्रैव)।

केरल

केरल में, नई पंचायती राज व्यवस्था 30 सितम्बर 1995 से प्रभावी हुई। हालाँकि, तीनों स्तरों के बीच पदेन सदस्यता के रूप में उच्च स्तर पर आंगिक सम्बन्ध रहता है, फिर भी प्रत्येक स्तर अपने आप में स्वतंत्र है और अपने विशिष्ट कार्य करता है (जॉन ऊमेन, 1998)। सरकार ने 17 अगस्त 1996 को नौवीं योजना के लिए जनता के अभियान का औपचारिक उद्घाटन किया। इस प्रक्रिया में, लोगों को निर्माण, कार्यान्वयन से लेकर रखरखाव तक, विकास आयोजना के सभी चरणों में, लोगों को स्थानीय निकायों के माध्यम से लामबंद करना होता है। नौवीं योजना के लिए लोगों के इस अभियान के साथ, राज्य ने एक नई विकास संस्कृति के युग में प्रवेश कर लिया है। इस अभियान ने विकास कार्य में जनता की एकता के प्रति भी योगदान किया है और राज्य में एक नई विकास चेतना पैदा की है (बीजू, एम. आर., 1998)। राज्य योजना बोर्ड ने स्थानीय निकायों को योजना निधि आबंटित करने हेतु नए मानक नियमों की घोषणा की है। प्रखण्ड (ब्लॉक) और ग्राम पंचायतों को, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के अलावा, आबादी के लिए 65 प्रतिशत का वेटेज मिलेगा (*पंचायती राज अपडेट,* मार्च 1998)। केरल की पंचायती राज संस्थाएँ पिछले वर्षों की तुलना में अब बेहतर स्थिति में हैं। संवैधानिक संरक्षण के अतिरिक्त उसके पास अब यह संसाधन – वित्त – है जिसका पहले अभाव था, और अब वह भी बहुतायत में है।

मध्य प्रदेश

मध्य प्रदेश नए संवैधानिक प्रावधानों के अंतर्गत सभी स्तरों पर चुनाव करवाने वाला पहला राज्य है। वहाँ ग्राम पंचायत, जनपद पंचायत और जिला पंचायत के चुनाव मई-जून 1994 में हो गए थे। निर्वाचित

पंचायतों की पहली बैठक अगस्त 1994 में हुई और 20 अगस्त 1993 को "अधिकार दिवस" के रूप में मनाया गया, जब सभी निर्वाचित पदाधिकारियों ने अपना-अपना पदभार संभाला। 29 विषयों में से 23 विषय पंचायती राज संस्थाओं को हस्तांतरित किए जाने की खबर है। शेष विषय आवश्यक कार्यवाही हेतु सम्बन्धित विभागों के पास हैं। राज्य सरकार, राज्य वित्त आयोग गठित कर लेने के बाद भी, उसे जे. आर. वाई. और ई.ए.एस. के लिए केन्द्र सरकार से जो कुछ भी प्राप्त होता है, वह उससे अधिक धन की व्यवस्था नहीं कर पाती है। अंत में यह खबर है कि नौकरशाही द्वारा निर्वाचित पंचायतों के अधिकारों को नष्ट करने के नियोजित प्रयास किए जा रहे हैं (विट्ठल, सी.पी., 1998)।

महाराष्ट्र

महाराष्ट्र में पंचायती राज संस्थाओं के तीनों स्तरों के चुनाव सितम्बर, 1995 में पूरे कर लिए गए थे। राज्य सरकार ने जिला परिषदों और पंचायत समितियों के कार्यकाल को पाँच वर्ष से घटाकर एक वर्ष कर दिया है। महाराष्ट्र में 29 जिला परिषदों में से दस को विभिन्न वर्गों के लोगों के लिए आरक्षित कर दिया गया है, जिनका निर्णय पर्ची निकाल कर किया जाता है (*पंचायती राज अपडेट*, फरवरी 1997)। ठाणे जिला परिषद ने जिले में ग्राम सभा को सक्रिय करने के लिए एक कार्य योजना शुरू की है। इस कार्यक्रम का पूरे जिले में कुल मिलाकर अच्छा स्वागत हुआ, किन्तु जनजातीय क्षेत्रों में इसकी अनुक्रिया और भी अच्छी हुई। ग्राम सभाएँ, दो को छोड़ अन्य सभी तालुकों में लगभग 83 प्रतिशत ग्राम पंचायत क्षेत्रों में, सफलतापूर्वक चलीं (*पंचायती राज अपडेट*, जून 1998)। जिला परिषद ने, पंचायतों के कामकाज में और अधिक पारदर्शिता तथा जवाबदेही सुनिश्चित करने के उद्देश्य से, विकास कार्यों में लोगों की भागीदारी जुटाने की योजना बनाई है।

उड़ीसा

पंचायतों में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत सीटें आरक्षित करने वाला पहला राज्य उड़ीसा है, जिसकी पंचायतों में 2,500 प्रतिनिधि हैं। उड़ीसा ग्राम पंचायत अधिनियम में एक अनूठा प्रावधान है कि यदि निर्वाचित अथवा नामांकित ग्राम पंचायत सरपंच महिला नहीं है तो नायब सरपंच का पद किसी महिला को दिया जाएगा। उड़ीसा में, पंचायतें सामाजिक.आर्थिक विकास में प्रभावी भूमिका निभा रही हैं। पंचायतों की भूमिका को फिल्मों, छायाचित्रों, दीवार लेखन, सामूहिक चर्चाओं आदि के माध्यम से प्रचारित किया जा रहा है। अक्तूबर 1997 में, 20 से अधिक जिला परिषदों के अध्यक्षों और उपाध्यक्षों की एक बैठक भुवनेश्वर में आयोजित की गई, जिसमें इन पदाधिकारियों ने इस बात पर चिंता जताई कि 73वें 74वें संविधान संशोधन अधिनियम में निर्दिष्ट अधिकार उन्हें राज्य सरकार ने नहीं दिए हैं (*पंचायती राज अपडेट*, नवम्बर 1997)। 1998 के प्रारंभ में, राज्य सरकार ने सभी जिला कलक्टरों को यह निर्देश दिया था कि वे पंचायत संस्थाओं के स्वायत्त कामकाज को सुनिश्चित करें। यह देखा गया कि सरपंच "पल्ली सभाओं" और "ग्राम सभाओं" की बैठकों के बारे में लोगों को सूचित नहीं करते हैं। ग्राम सभा की बैठकें बिना पूर्व सूचना के कर ली जाती हैं। फिर इन्हें नियमित तौर पर आयोजित भी नहीं किया जाता। कुछ ग्राम पंचायतें बहुत प्रभावी ढंग से काम कर रही हैं और तीन ग्राम पंचायतों – धनंत्री पंचायत, कोटापेटा पंचायत, और पद्मपुर पंचायत – को राजागदा पंचायत समिति के तत्वावधान में विकास, जवाहर रोज़गार योजना के सदुपयोग, स्वच्छता, साक्षरता, वृद्धावस्था पेंशन, इंदिरा आवास योजना (Indira Awas Yojana: IAY), परिवार कल्याण आदि क्षेत्रों में उनके अच्छे कार्य के लिए नकद पुरस्कार दिया गया है (*पंचायती राज अपडेट*, जून 1998)।

पंजाब

जहाँ तक पंजाब का सवाल है, तो वहाँ की सरकार ने एक नया विधान पारित किया, एक अलग राज्य चुनाव आयोग (SEC) और राज्य वित्त आयोग (State Finance Commission; SFC) का गठन

MPA-016(H) Book-1

किया, और 1993-93 में ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों और जिला परिषदों के चुनाव करवाए। उसके बाद, सरकार ने योजनाओं की पहचान की और विभागों का चुनाव किया जिन्हें पंचायती राज संस्थाओं को हस्तांतरित किया जाना था। यह काम 1997 के प्रारंभ तक होना था। पंजाब पंचायती राज अधिनियम 1994 में 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन किया गया, जिनका लक्ष्य पंचायत समितियों और जिला परिषदों की सदस्यंता के लिए सीधे चुनाव करवाकर जमीनी स्तर तक सत्ता को ले जाना था। दूसरी ओर, इस अधिनियम में एक क्लॉज (clause) डालकर प्रत्यक्ष चुनावों द्वारा केवल 40 प्रतिशत सीटें भरे जाने का प्रावधान किया गया, जबकि शेष 60 प्रतिशत सीटें सरपंचों के बीच से ही अप्रत्यक्ष चुनावों द्वारा भरी जानी थीं (वर्मा, 1998)।

पंजाब के मामले में, आनुभविक निष्कर्ष यह बताते हैं कि अधिकांश सरपंच, अध्यक्ष और उपाध्यक्ष आर्थिक दृष्टि से अपेक्षाकृत संपन्न परिवारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वास्तव में, इनमें से अधिकांश पदों पर अग्रणी खेतिहर परिवारों का कब्जा है। इसके अलावा, राज्य स्तर के अनेक नेताओं ने अपने सगे-संबंधियों – बेटों, भाइयों, भानजों, भतीजों आदि – को इन पदों पर बैठा दिया है। आश्चर्य की बात है कि जिन ग्राम पंचायतों में अनुसूचित जातियों के लोगों की बहुलता है, उनमें भी भूस्वामी जाट-सिखों को सरपंच चुन लिया गया है (तत्रैव)। राज्य सरकार ने राज्य में सभी पंचायतों को भंग कर दिया और पंचायती राज संस्थाओं के तीनों स्तरों के चुनाव जून-जुलाई, 1998 में करवाए गए। हालाँकि चुनाव निर्दलीय आधार पर ही हुए, फिर भी विभिन्न राजनीतिक दलों ने निर्दलियों के रूप में प्रत्याशी खड़े किए। पहली बार, पंचायत चुनावों में 4,124 महिलाओं को सरपंच चुना गया है (*पंचायती राज अपडेट,* जून 1998)।

राजस्थान

राजस्थान में पंचायती राज संस्थाओं के तीनों स्तरों के चुनाव राज्य चुनाव आयोग की देखरेख में 1995 में संपन्न हुए, और ये संस्थाएँ मार्च 1995 के बाद पदेन हो गई हैं (हूजा, 1998)। राज्य सरकार ने पंचायत समितियों को विभिन्न श्रेणियों के विकास कार्य शुरू करने के लिए164 करोड़ रुपये हस्तांतरित किए हैं। पहले यह खर्च सम्बन्धित विभाग करते थे। पंचायत समितियाँ इस पैसे को निर्वाचित प्रतिनिधियों की बैठकों में चिह्नित कार्यों पर खर्च करेंगी। हालाँकि, पहले विकास के लिए पैसे खर्च करने का अधिकार पंचायत समितियों और ग्राम पंचायतों को दिया जाता था, फिर भी निगरानी का अधिकार जिला परिषदों के पास रहता था।

तमिलनाडू

तमिलनाडू में नई पंचायती राज व्यवस्था अप्रैल 1994 से प्रभावी हुई और वहाँ चुनाव 1996 में कराए गए। इस राज्य में पंचायतों को तीन व्यापक किस्म के कार्य सौंपे गए – अनिवार्य, विवेकाधीन और सरकारी अधिसूचना के माध्यम से दिए गए कार्य (शेखर, 1998)। तमिलनाडू में पंचायती राज संस्थाएँ कल्याणकारी संस्थाएँ ही बनी हुई हैं और वे स्वशासन के अधिकार संपन्न गणराज्य नहीं हैं (वहीं पृष्ठ 91)। तमिलनाडू सरकार ने "निधीयन का एक प्रवर्तनकारी तरीका" ईजाद किया है, जिसका उद्देश्य, वित्तीय रूप में कमज़ोर ग्रामीण स्थानीय निकायों को पंचायतों के लिए आबादी आधारित हस्तांतरण फार्मूला की खामी को पूरा करने योग्य बनाना है। निधीयन की इस पद्धति में सरकारी निधि से एक एकमुश्त अनुदान वित्तीय रूप में कमज़ोर पंचायतों को दिया जाता है।

उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेश में, विधायी औपचारिकताएँ अप्रैल 1994 में पूरी कर ली गई थीं और पंचायती राज संस्थाओं के सभी तीन स्तरों के चुनाव अप्रैल 1995 में कराए गए। दसवें वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार, ग्राम पंचायतों को सड़कें और नाले बनाने के लिए 189.8 करोड़ रुपये दिए गए (*पंचायती राज अपडेट,*

मार्च 1998)। राज्य सरकार ने प्रशासन के विकेन्द्रीकरण का फैसला किया है। नई योजना के अंतर्गत, ग्राम पंचायतों को उनके अधिकार क्षेत्र में काम कर रहे अधिकारियों पर सीधा नियंत्रण दिया जाएगा। पंचायतें प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य तथा ग्राम विकास जैसे दस विभागों के इन अधिकारियों की नियुक्ति करेंगी और उनकी गतिविधियों पर निगरानी भी रखेंगी।

पश्चिम बंगाल

पश्चिम बंगाल में, पंचायत चुनाव मई 1993 में कराए गए, जिनमें वाम मोर्चा, विशेषकर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (मा.क.पा.) को भारी बहुमत मिला था। ग्राम सभा की जगह वहाँ ग्राम संसद है। लोगों की प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु, यह एक संस्थागत प्रवर्तन है (दत्ता, 1998)। ग्राम संसदों को यह अधिकार है कि वे वार्षिक अथवा अर्धवार्षिक बैठकें और ग्राम पंचायत से सम्बन्धित दूसरे ऐसे कामकाज कर सकती हैं जो इन सभा में उपस्थिति व्यक्तियों की सहमति से होते हैं। यह स्वीकार करना होगा कि ग्राम सभा और ग्राम संसद की क्रियाशीलता तथा जिला परिषद के गठन से, राज्य में पंचायतें सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने और ग्रामीणों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए स्थानीय समस्याओं की पहचान और समाधान करने की प्रतिसंवेदी और प्रभावी साधन बन गई हैं (रे, 1998)।

पाँच वर्ष का कार्यकाल पूरा हो जाने के बाद, तीनों स्तरों के चुनाव 28 मई 1998 को कराए गए। ये चुनाव पहली बार राज्य चुनाव आयोग की देखरेख में हुए। 23 मार्च को राज्य विधान सभा में प्रस्तुत 1998-99 के राज्य बजट में पंचायतों को शिक्षा, स्वास्थ्य तथा ग्रामीण विद्युतीकरण के क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के नए कार्य सौंपने का प्रस्ताव रखा गया। इसमें पंचायत समितियों की देखरेख में 1,000 पारंपरिक प्राथमिक विद्यालयों के अतिरिक्त इतने ही और "नए किस्म के प्राथमिक शिक्षा केन्द्र" स्थापित करने का भी प्रावधान किया गया। इसी प्रकार, स्वास्थ्य के क्षेत्र में, पंचायती समितियों के नियंत्रण में नए प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों को रखा जाएगा। इसके अतिरिक्त, सरकार ने एक निगम की स्थापना का प्रस्ताव रखा, जिसका काम ग्रामीण विद्युतीकरण कार्यक्रमों को लागू करने के सिलसिले में पंचायतों से तालमेल करना होगा (*पंचायती राज अपडेट*, मार्च 1998)।

इस प्रकार, नए पंचायती राज के कामकाज से यह तथ्य सामने आता है कि हालाँकि विधायी औपचारिकताएँ लगभग सभी राज्यों में पूरी कर ली गई हैं, फिर भी कामकाज के स्तर पर उनमें बहुत अंतर हैं। पंचायती राज संस्थाओं के सभी तीनों स्तरों के चुनाव सभी राज्यों में हो चुके हैं। कर्नाटक, पंजाब, पश्चिम बंगाल जैसे कुछ राज्यों में, पंचायती राज संस्थाओं का कार्यकाल पूरा हो जाने अथवा उनके भंग हो जाने के कारण उनका दूसरी बार गठन हुआ है। फिर भी, कुछ अपवादों को छोड़, स्थानीय स्वायत्तता पर नौकरशाही की मनमानी बनी हुई है। हम आशा करते हैं कि पंचायती राज संस्थाएँ ग्रामीण समुदाय में मज़बूती से जमी रहेंगी और ग्राम्यांचल में बदलाव और विकास की असली वाहक बनेंगी। इस संदर्भ में, हमें खतरा केवल राज्य सरकारों की ओर से दिखाई देता है (सिंह, 1993)।

जहाँ तक पंचायती राज संस्थाओं के प्रत्येक स्तर को अधिकार और कार्य सौंपने का सवाल है तो हम देखते हैं कि पंचायती राज संस्थाओं को दिए अधिकार और कार्य सभी राज्यों में अलग-अलग हैं। अभी तक का अनुभव यह है कि जिला स्तर पर विभिन्न लाइन विभाग/अभिकरण, जिला कलेक्टर/जिला मजिस्ट्रेट की देखरेख और नियंत्रण में कार्यक्रमों को अमली जामा पहनाते हैं और काम करते हैं, और, पंचायती राज संस्थाओं को पिछलग्गू बनने में ही संतोष करना पड़ता है (विट्ठल, वही)।

इस प्रकार, यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक विकास के अंतर्गत प्रत्येक स्तर के कार्य क्षेत्र को स्पष्ट नहीं किया गया और उसे सम्बन्धित राज्य सरकार के विवेक पर छोड़ दिया गया है। इस बदलते परिदृश्य में, पंचायती राज संस्थाओं को अपने आपको विकास कार्य के प्रति समर्पित करना है और पंचायती राज संस्थाओं को यथासंभव अधिक स्वायत्तता मिलनी चाहिए।

13.5 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों के बाद स्थानीय शासन संस्थाओं का कामकाज : टिप्पणियाँ

73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों के बाद, पंचायती राज संस्थाओं और नगर निकायों के कामकाज के बारे में नीचे कुछ टिप्पणियाँ दी जा रही हैं। यह देखा गया है कि इसके क्रियान्वयन के सिलसिले में सिद्धान्त और व्यवहार में काफी अंतर है।

- विभिन्न ग्राम विकास कार्यक्रमों में परिसम्पत्तियाँ सृजित की गई हैं। किन्तु इनका सही इस्तेमाल नहीं हो रहा था। प्राथमिक स्कूल बना दिए गए हैं किन्तु बच्चे स्कूल नहीं जा रहे हैं और कुछ मामलों में तो कर्मचारी ही नहीं हैं। सामुदायिक योजना पूरे तौर पर विफल है क्योंकि लोग चाहते हैं कि सब कुछ सरपंच ही करे।

- यह देखा गया कि ग्राम विकास कार्यक्रमों के लिए लाभार्थियों का चयन सही ढंग से नहीं किया जाता। इसका चुनाव बेस लाइन सर्वेक्षण (Base Line Survey; BSL) के अनुसार होना चाहिए। इस सर्वेक्षण में उन परिवारों के नाम होते हैं जो ब्लॉक अथवा खण्ड और जिला ग्रामीण विकास अभिकरण कार्यालय में उपलब्ध अभिलेख में शामिल नहीं होते। इस सूची में ऋण और सब्सिडी के मामलों में यह देखा गया कि कर्ज़ की पूरी रकम लाभार्थी को कभी नहीं दी जाती।

- जहाँ तक पंचायती राज निकायों की बैठकों का सवाल है, तो वे नियमित पाई गईं। किन्तु, ग्राम सभा की बैठकें नियमित रूप में नहीं होतीं और यदि वे होती भी हैं तो गाँव के वयस्क सदस्य उनमें हिस्सा नहीं लेते।

- नए अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, पंचायतों को 29 विषय दिए गए हैं। किन्तु, देखा यह गया है कि इनमें से बहुत कम विषयों को पंचायतों को हस्तांतरित किया गया है और इनमें न तो दम है और न ही कोई सार्थकता। वे बस देखरेख के मतलब के हैं।

- देखा गया है कि पंचायती राज संस्थाओं पर आज भी सांसदों और विधायकों का नियंत्रण बना हुआ है। वे अपने क्षेत्र में विकास कार्य करवा लेते हैं और इस तरह ज़रूरतमंद और दूरस्थ गाँवों की उपेक्षा की जाती है और वे अविकसित रह जाते हैं। पंचायतों को अनुदान देने में भी उनका वर्चस्व दिखाई देता है। वे केवल उन्हीं गाँवों को अनुदान देते हैं जो उन्हें प्रिय होते हैं।

- पूर्व सरपंच लोग क्षेत्रीय विधायकों की मदद से वर्तमान सरपंचों, विशेषकर महिला सरपंचों, के कामकाज में हस्तक्षेप करते हैं।

- जहाँ तक पंचायत के मामलों में महिलाओं की भागीदारी का सवाल है, तो इस सिलसिले में यह देखा गया है कि उनमें से अधिकतम अभी तक परिवार के पुरुष सदस्यों की सलाह पर काम कर रही हैं (पाल, 2002)।

13.6 सारांश

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि निरक्षरता, प्रशिक्षण का अभाव और पुरानी व्यवस्थाओं की व्याप्ति उनकी निष्क्रियता के मूल कारण हैं। किन्तु इसे समग्र समर्पण के चिह्न के रूप में नहीं देखना चाहिए। हमें यह समझना होगा कि नई व्यवस्था के कारण, ग्रामीण समुदाय के ऐसे तबकों में धीरे-धीरे चेतना आ रही है और उन्होंने शोषण और ज्यादती के खिलाफ अपनी आवाज उठाई है। इस संदर्भ में, पंचायती राज संस्थाओं के नियमित चुनाव कमज़ोर तबकों की प्रबुद्धता और सामाजिक राजनीतिक चेतना की दिशा में मील का पत्थर साबित होंगे। अब वे अपनी आवाज मुखर कर रहे हैं।

भारत में स्थानीय शासन बहुत सफल नहीं रहा है। इसका थोड़ा दोष व्यवस्था में है, थोड़ा तो आसपास के सामाजिक परिवेश में, किन्तु अधिकांश दोष स्वयं राज्य सरकार के नियंत्रण में है। स्थानीय निकायों में कुछ चिंतनीय क्षेत्र हैं। ***पहला क्षेत्र*** लोगों की आकांक्षाओं और जमीनी स्तर की संस्थाओं के निष्पादन में भारी अंतर है। ***दूसरा क्षेत्र*** स्थानीय निकायों के वित्तीय संसाधनों और उन्हें दिए गए कार्यों के बीच अथवा खर्च की ज़िम्मेदारी और उनके अपने संसाधनों के बीच मेल न होना है। ***तीसरा क्षेत्र*** ग्राम सभाओं के कामकाज की कमज़ोरी है। चौथा क्षेत्र स्थानीय निकायों की समस्याओं के आलोक में उनकी छवि का पुनरावलोकन और पुनः परिभाषा है। ***पाँचवाँ क्षेत्र*** सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है; वह है राजनीतिक संस्कृति की वह किस्म जो भारत में उभरती चली जा रही है। स्थानीय निकाय स्वयं अपनी रक्षा करें, स्थानीय निकाय अपनी मनोवृत्ति, नीतियाँ, प्रौद्योगिकी तथा व्यवस्था को बदलें और बेहतर शासन के लिए सशक्त बनें।

लोकतंत्र के लोकाचार को वास्तविक पोषण केवल तभी मिल सकता है जब सत्ता जमीनी स्तर तक पहुँचे। आम नागरिक के लिए, स्थानीय लोकतंत्र ही वास्तव में सार्थक और महत्त्वपूर्ण हो सकता है। एक ऐसे विशाल देश में, जहाँ अधिकांश जनता अभी निरक्षर है, ग्राम पंचायतें और सहभागी लोकतंत्र चमत्कार कर सकते हैं। यदि लक्ष्य ऐसे लोकतान्त्रिक समाज की स्थापना हैं जहाँ बदलाव बाहुबल से नहीं स्वैच्छिक सहमति और ऐच्छिक सहयोग से आता है, तो पंचायती राज अथवा स्थानीय स्वशासन संस्थाओं का कोई विकल्प नहीं हो सकता। इस अर्थ में, पिछले दशकों में सर्वाधिक क्रांतिकारी कदम 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के रूप में उठाए गए हैं। आशा की जाती है कि इस तरह से भारतीय लोकतंत्र शेष विश्व के लिए एक अद्वितीय आदर्श बन सकता है।

13.7 मुख्य अवधारणाएँ

मंत्रिमंडलीय शासन (Cabinet Government) : ब्रिटिश व्यवस्था, जिसमें अकेले प्रधानमंत्री को नहीं पूरे मंत्रिमंडल को अधिशासी माना जाता है, और मंत्रिमंडल सामूहिक तौर पर अपने कार्य के लिए संसद के प्रति ज़िम्मेदार होता है। इसके अतिरिक्त, मंत्रिमंडल में बहुमत वाली पार्टी के सांसदों को लिया जाता है, जबकि अमेरिका में मंत्रिमंडल में केवल कार्यपालिका (अधिशासी) शाखा से सेक्रेटरी (मंत्री) लिए जाते हैं।

संवैधानिक स्थापत्य (Constitutional Architecture) : सरकार के संविधान द्वारा सृजित प्रशासनिक व्यवस्था – अधिकारों के अलगाव से लेकर इस आवश्यकता तक कि विशिष्ट विभाग बनाए जाएँ अथवा विशिष्ट सेवाएँ प्रदान की जाएँ।

विनियमन (Regulation) : नागरिकों की सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों पर सरकारी नियंत्रणों की समग्रता; कानूनों की आधिकारिक व्याख्या के प्रभारी प्रशासनिक अभिकरणों की नियम-निर्माण प्रक्रिया।

13.8 संदर्भ व अन्य लेख

बीजू, एम. आर., 1998, "दि सागा ऑफ डिसेंट्रलाइजेशन इन केरल : यूनीक मॉडल ऑफ पार्टीसिपेटरी प्लानिंग प्रोसेस", सेबस्ती एल. राज एस जे और एडवर्ड मथियास, (संपा.), *पीपुल्स पॉवर एण्ड पंचायती राज थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस*, भारतीय समाज संस्थान, नई दिल्ली।

मिश्रा, एस. एन., कुमार, लोकेश और पाल, चैताली, 1996, न्यू पंचायती राज इन एक्शन, मित्तल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

बाजपेयी, अशोक, 1997, *पंचायती राज एण्ड रूरल डेवलपमेंट*, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली।

पंचायती राज अपडेट, 1998, अप्रैल।

जॉन, ओमेन, 1998, "पंचायती राज एट वर्क इन केरल : एन एनालिसिस", *कुरुक्षेत्र*, खण्ड 47, संख्या 1, अक्तूबर।

विट्ठल, सी.पी., 1988, "डिवोल्यूशन ऑफ पॉवर्स एण्ड फंक्शंस टू पंचायती राज इंस्टीट्यूशंस", *कुरुक्षेत्र*, खण्ड 47, संख्या 2, नवम्बर।

हनुमंत राव, सी. एच., 1989, "डिसेंट्रलाइज्ड प्लानिंगः एन ओवरव्यू ऑफ एक्सपीरियंस एंड प्रॉस्पेक्ट्स", *इकॉनामिक एंड पालिटिकल वीकली*, खण्ड 24, संख्या 8, 25 फरवरी।

दत्ता, प्रभात, 1998, "पीपुल्स पार्टीसिपेशन, रूरल एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड द ब्यूरोक्रेसी : द वेस्ट बंगाल एक्सपीरियेंस, *कुरुक्षेत्र*, खण्ड XLVI, संख्या 7, अप्रैल।

हूजा, मिनाक्षी और हूजा, राकेश, 1998, "पंचायती राज इन राजस्थान – पॉलिसी इशूज़ एण्ड कन्सर्नस" *इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन*, खंड XLIV, सं.3, जुलाई-सितम्बर।

इंडिया टूडे, मार्च 13, 2006।

कृष्ण, श्री. एस. कुमार, अनिल, एस., 2005, "वर्किंग ऑफ पी आर आई एस इन इंडिया ऑफ्टर दी सेवेंटी थर्ड कंस्टीट्यूशनल एमन्डमेंट एक्ट" उन्नीसवाँ अखिल भारतीय सम्मेलन, भारतीय लोक प्रशासन संघ, लोक प्रशासन विभाग द्वारा आयोजित, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, जुलाई 29-30।

कुमार शरत, 1997, "पंचायती राज एण्ड पर्सपेक्टिव प्लानिंग" *कुरुक्षेत्र*, खण्ड 45, संख्या 10, जुलाई।

मिश्रा, एस. एन. एवं मिश्रा, श्वेता, 2002, *डिसेन्ट्रलाइज्ड गवर्नेंस*, शिप्रा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

पंचायती राज अपडेट, 1998, जुलाई।

पंचायती राज अपडेट, 1998, मार्च।

पंचायती राज अपडेट, 1997, फरवरी।

पुरोहित पी. वी., 1998, "पंचायतस इन गुजरात" *पंचायती राज अपडेट*, फरवरी।

रॉय, एस. एन., 1998, रिकन्सेप्चुअलाइज्ड रूरल डेवलपमेंट एण्ड रिवाइटलाइज़्ड पंचायती राज : द वेस्ट बंगाल एक्सपीरियेंस", , सेबस्ती एल. राज एस जे और एडवर्ड मथियास, (संपा.), *पीपुल्स पॉवर एण्ड पंचायती राज थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस*, भारतीय समाज संस्थान, नई दिल्ली।

शेखर, मधुश्री और नेलसन, चेल्स, 1998, "पंचायत एट रिफॉर्म्स इन तमिल नाडू : ए पर्सपेक्टिव", *जर्नल ऑफ रूरल डेवलपमेंट*, खण्ड 17, संख्या 1, जनवरी – मार्च।

शुभा, के., 1998, "पंचायत्स ऑफ द रोड टु बिकमिंग इंस्टीट्यूशंस ऑफ सेल्फ गवर्नमेंट", *पंचायती राज अपडेट*, जून।

माथुर, पी.सी. और झा, एस. एन., 1999, (संपा.) *डिसेंट्रलाइजेशन एंड लोकल पॉलिटिक्स*, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

जोशी, आर.पी., (संपा.), 1998, *"कंस्टीट्यूशनलाइजेशन ऑफ पंचायती राज : ए रिएसेसमेंट"* रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।

कौशिक, सुशीला, 1995, *पंचायती राज इन एक्शन : चैलेन्जिज टु वुमैन्स रोल,* फ्रिडरिक एर्बट स्टीफंग, नई दिल्ली।

मीनाक्षीसुंदरम्,, एस. एस., 1994, *डिसेंट्रलाइजेशन इन डेवलपिंग कंट्रीज,* कंस्पेट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली।

शर्मा, शंकुतला, 1994, *"ग्रासरूट्स एण्ड पंचायती राज"*, दीप एवं दीप पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

जी. रामाथिलगम, 1995, "सेवेंटी थर्ड कंस्टीट्यूशनल अमेंडमेंट एण्ड इट्स इम्प्लीकेशंस फॉर विमेन", कुरुक्षेत्र, 43 (7), अप्रैल।

कश्यप, सुभाष, 2003, "इंस्टीट्यूशनलाइजेशन ऑफ ग्रासरूट्स गवर्नेंस", *ग्रासरूट्स गवर्नेंस,* खंड 1, संख्या 1, जून।

असलम, एम., 2004, "टुवर्ड्स एम्पॉवरिंग ग्राम सभा", *ग्रासरूट्स गवर्नेंस,* खंड 2, संख्या 2, दिसम्बर।

सिंह, मोहिंदर, "डेमोक्रेटिक डिसेन्ट्रलाइजेशन थ्रू पंचायती राज : प्रॉब्लम्स एंड प्रॉस्पेक्ट्स", बर्थवाल, सी. पी. (संपा.), 1993, *पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, इन इंडिया,* आशीष पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

चटर्जी, विश्वजीत और घोष, दिलीप कुमार, "ग्लोबलाइजेशन एण्ड डिसेंट्रलाइज्ड गवर्नेंस – रिफ्लेक्शंस ऑन पंचायत्स इन इंडिया" *इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,* अप्रैल-जून, 2003, खण्ड XLIV, अंक 2।

मैथ्यू, जॉर्ज, (संपा.), 2000, "स्टेट्स ऑफ पंचायती राज इन दी स्टेटस एण्ड यूनियन टेरिटरीज़ ऑफ इंडिया, कंस्पेट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली।

भट्टाचार्य, मोहित, 2004, "म्यूनिसिपल प्लानिंग इन दी पर्सपेक्टिव ऑफ सेवेंटी फोर्थ अमेंडमेंट", "अर्बन एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया" सीरियल्स पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।

दास, सी. डी., 2004, "द कंस्टीट्यूशन (सेवेंटी फोर्थ अमेंडमेंट) एक्ट, 1992", सम अबसर्वशेन्स, "अर्बन एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया" सीरियल्स पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।

13.9 अभ्यास

1) 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों की विशेषताएँ बताइए।

2) संविधान संशोधन के बाद विभिन्न राज्यों में स्थानीय शासन के प्रकार्य की विवेचना कीजिए।

इकाई 14 ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं की संगठनात्मक संरचना

रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

14.2.1 लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण – पंचायती राज

14.2.2 पंचायती राज व्यवस्था की संरचना

14.2.3 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, अधिकार और कार्य

14.3 प्रशासनिक संरचना कार्य

14.4 अधिकारों और कार्यों का हस्तांतरण – वास्तविक स्थिति

14.4.1 अधिकारों और कार्यों का हस्तांतरण – ग्राम सभा का संस्थापन

14.5 सारांश

14.6 मुख्य अवधारणाएँ

14.7 संदर्भ व अन्य लेख

14.8 अभ्यास

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं की संरचना की चर्चा कर सकेंगे;
- लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण (Democratic decentralisation) के महत्त्व को उज़ागर (highlight) कर सकेंगे; और
- राष्ट्रीय, राज्य, जिला, खण्ड और गाँव स्तर पर पंचायती राज व्यवस्था (Panchayati Raj System) की संरचना को समझ सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

पंचायती राज का अभिप्राय है गाँव, खण्ड और जिला स्तरों पर स्थानीय सरकार की संस्थाएँ स्थापित करना। आज के युग में जब अधिक से अधिक सरकारें कल्याणकारी राज्य होने का पालन कर रही हैं, ऐसे में ये संस्थाएँ ग्रामीण प्रशासन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती हैं। वास्तव में, इन संस्थाओं को हस्तांतरित अधिकार ही इन्हें लोकतान्त्रिक या अलोकतान्त्रिक (undemocratic) बनाते हैं। स्थानीय स्व-सरकार की इकाइयाँ ग्राम पंचायतें, पंचायत समितियाँ और जिला परिषदें हैं। ग्राम पंचायतों को खण्ड स्तर पर पंचायत समितियों तथा जिला स्तर पर परिषदों के साथ जोड़ा गया है। निःसंदेह पंचायती राज की उत्पत्ति लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण पर बलवंत राय मेहता अध्ययन दल (Balwant

Rai Mehta Study Team) की सिफारिशों को स्वीकार करने के बाद हुई। स्थानीय स्वःसरकार की एक नई व्यवस्था स्थापित की गई है जो आधारभूत स्तर पर समस्याओं का समाधान करने, लोकतंत्र को मजबूत करने और आर्थिक और सामाजिक प्रगति के लिए देश में समग्र मानव संसाधनों को गतिशील करने का प्रयत्न करती हैं। पंचायती राज लोकतंत्र को वास्तविक बनाता है – पंचायती राज का उद्देश्य लाखों लोगों को लोकतंत्र की कार्य प्रणाली में लाने के द्वारा लोकतंत्र को वास्तविक बनाना है। यह वास्तविक आधारभूत स्तर का लोकतंत्र है जिसमें दूरस्थ गाँव में रहने वाला अकेला परिवार भी लोकतान्त्रिक प्रक्रिया से जुड़ जाता है। देश में लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं की स्थापना के लिए पंचायती राज की स्थापना सर्वाधिक उपयुक्त कदम है। भारत न केवल सरकारी स्वरूप अपितु जीवन शैली के रूप में भी सरकार के लोकतान्त्रिक स्वरूप के प्रति प्रतिबद्ध है। लोकतंत्र की स्थापना दिल्ली या किसी राज्य की राजधानी से नहीं की जा सकती। इसकी स्थापना तभी हो सकती है जब प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सभी लोग इसमें शामिल हों। इसका अभिप्राय स्थानीय सरकार, स्थानीय नेतृत्व, स्थानीय क्षमता, स्थानीय प्रयास और सभी स्थानीय गतिविधियों में स्थानीय लोगों की भागीदारी है (मूर्ति)। इस इकाई में हम ग्रामीण स्थानीय निकायों अथवा संस्थाओं की संगठनात्मक संरचना की चर्चा करेंगे तथा राष्ट्रीय, राज्य, जिला, खण्ड और गाँव स्तर पर पंचायती राज प्रणाली की संरचना के बारे में जानेंगे।

14.2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत में ग्राम पंचायत प्रणाली काफी प्राचीन है। प्राचीन भारत में गाँव ने सामाजिक और आर्थिक जीवन की बुनियादी इकाई की स्थापना की। विदेशी शासन के दौरान हमारे देशवासियों को सभ्य जीवन के सभी लाभों से वंचित कर दिया गया था। यह प्रवृत्ति इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के आरंभ होने तक अपने खुले रूप में रही है। इंग्लैण्ड की अठारहवीं शताब्दी की क्रांति ने ग्रेट ब्रिटेन में विभिन्न क्षेत्रों जैसे कृषि, परिवहन और उद्योग में व्यापक परिवर्तन किए। ब्रिटेन में इनसे देश की अर्थव्यवस्था प्रभावित हुई। गाँव सर्वाधिक प्रभावित हुए। आत्म-निर्भर इकाई के रूप में ग्रामीण संगठन भारतीय अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषता समाप्त हो गई थी। ब्रिटिश उद्योगों को आगे बढ़ाने के लिए हमारे हस्तशिल्प और निर्माण क्षेत्र को बर्बाद कर दिया गया था। इस समय में कृषि अधिकाधिक खर्चीली बन गई (डार्लिंग)।

गांधीजी ने स्वतंत्र भारत की राजनीतिक संरचना का अपने शब्दों में इस प्रकार चित्रण किया है, "भारतीय स्वतंत्रता आधारभूत स्तर से आरंभ होनी चाहिए। प्रत्येक गाँव एक गणतंत्र या संपूर्ण अधिकारयुक्त पंचायत होना चाहिए। पंचायतों के पास जितने अधिक अधिकार होंगे लोगों के लिए उतना ही इच्छा होगा (*हरिजन*, 1946)। उनके लिए स्वराज का अर्थ था कि निर्णायक अधिकार कृषक और श्रमिक के पास होने चाहिए। केन्द्र में बैठे 20 व्यक्तियों द्वारा लोकतंत्र संचालित नहीं हो सकता। इसका संचालन प्रत्येक गाँव के लोगों द्वारा निम्न स्तर से करना पड़ेगा (*हरिजन*, 18 जनवरी, 1948)।

भारत में विवेकपूर्ण सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए 1951 में स्थानीय स्वशासन संस्थाओं (ग्रामीण और शहरी) के संगठन की रिपोर्ट ज़ोर देती है, *"केन्द्र में कोई लोकतान्त्रिक सरकार स्थानीय प्रशासन के लोकतान्त्रिक संगठन की सहायता के बिना संतोषजनक ढंग से कार्य नहीं कर सकती"*। ऐसे समर्थन/सहायता के अभाव में लोकतान्त्रिक सरकार कभी सुरक्षित नहीं होगी। हमारे नेता सजग, सावधान और चौकन्ने थे और उन्होंने अनुभव किया कि जब तक हम स्थानीय स्वशासन की उपयुक्त व्यवस्थित योजना की स्थापना के द्वारा अपनी संसदीय लोकतंत्र प्रणाली की रक्षा करने के कदम नहीं उठाते, तब तक हमें अपनी लोकतान्त्रिक सरकार के समाप्त होने का खतरा भी बना रहेगा।

प्रथम पंचवर्षीय योजना ने संकेत किया कि, "संविधान ने केन्द्र और राज्यों में लोकतांत्रिक संस्थाएँ प्रदान की हैं परन्तु जब तक वैसी ही व्यवस्थित संस्थात्मक और प्रशासनिक संरचना का गठन नहीं किया जाता तब तक लोकतान्त्रिक सरकार की संरचना अधूरी रहेगी। स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को विकास

के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के विभिन्न स्तरों पर पारस्परिक संबद्धता के उपयुक्त प्रबंध करना भी आवश्यक हो सकता है। उदाहरण के लिए गाँव पंचायतों को जिला या उप-खण्ड स्थानीय बोर्डों के साथ संबद्ध करना" (प्रथम पंचवर्षीय योजना)। इस प्रकार प्रथम योजना ने ज़ोर दिया कि देश के प्रशासन को ग्रामीण स्तर तथा उससे ऊपर ऐसे उपयुक्त अभिकरणों की स्थापना एवं विकास करना होगा जो अपने अधिकार लोगों से प्राप्त करते हों (द्वितीय पंचवर्षीय योजना)।

दूसरी पंचवर्षीय योजना ने सिफारिश की कि ग्राम पंचायतों को जैविक रूप से उच्च स्तर पर लोकप्रिय संगठन के साथ संबद्ध करना चाहिए। राष्ट्रीय विकास समिति (NDC) ने आठवीं बैठक में निर्णय किया कि सामुदायिक विकास और राष्ट्रीय विस्तार सेवा अध्ययन दल द्वारा जिला प्रशासन के पुनर्संगठन में एक विशेष जाँच की जाए।

अध्ययन दल का निष्कर्ष था कि खण्ड (ब्लॉक) ऐसे कार्यों के लिए काफी बड़ा क्षेत्र होता है जिन्हें ग्राम पंचायत पूरा नहीं कर सकती जबकि निवासियों की रूचि और सेवाएँ प्राप्त करने के लिए काफी छोटा होता हैं। इस प्रकार दल ने संकेत किया कि योजना आयोग ने स्थानीय संस्थाओं के लिए जिन कार्यों का प्रस्ताव किया था विद्यमान स्थानीय संस्थाएँ उन कार्यों को ग्रहण नहीं करती हैं और न ही उनका निष्पादन कर सकती हैं। दल ने पाया कि निरंतर स्थानीय प्रशासन की इकाइयों का ऐसा गठन किए बिना, जो ग्रामीणों की इच्छाओं और आकांक्षाओं को वास्तविक लोकतंत्र के साथ प्रकट करता हो, उनको पूरा करने के लिए कार्य करता हो, सामुदायिक विकास आंदोलन लोगों का आंदोलन नहीं बन सकता। लोकतंत्र को कुछ कार्यकारी तंत्र के माध्यम से कार्य करना होता है लेकिन लोकतांत्रिक सरकार व्यापक क्षेत्र पर अपने उस कार्यकारी तंत्र के माध्यम से संचालन करती है जो स्थानीय आवश्यकताओं और हालातों पर लागू नहीं हो सकती।

यह अनुभव किया जाता है कि अधिकारों का हस्तांतरण और प्रशासनिक तंत्र का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए और इन अधिकारों का उपयोग तथा ऐसे तंत्र का नियंत्रण तथा निर्देशन स्थानीय क्षेत्रों के लोकप्रिय प्रतिनिधियों द्वारा होना चाहिए। दल ने सुझाव दिया कि सरकार द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों को पर्याप्त अधिकार हस्तांतरित किए जाने चाहिए ताकि वे सरकार द्वारा निर्धारित कुछ सीमाओं में विकास गतिविधियों के क्षेत्र में अपनी आवश्यकताओं की प्राथमिकता का मूल्यांकन कर सकें। दल ने विकेन्द्रीकरण के तीन स्तरीय गठन के वास्तविक विवरण का प्रस्ताव किया। ये ग्राम पंचायतें, पंचायत समितियाँ और जिला परिषदें (Zilla Parishad; ZP) हैं। साथ ही यह भी सुझाव दिया गया कि समग्र विकास प्रशासन इन संस्थाओं को हस्तांतरित किया जाना चाहिए। दल ने विस्तृत संगठन, कार्यों, संसाधनों और पारस्परिक सम्बन्धों का विवरण भी प्रदान किया है।

पहला है, हमें पंचायत एकदम निर्वाचित आधार पर अपनानी चाहिए जिसमें दो महिला सदस्यों तथा एक-एक सदस्य अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विकल्प का प्रावधान हो। इस संस्था को गाँव की सीमा में आने वाले सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए अधिकतम अधिकार प्रदान किए जाने चाहिए। पंचायत का मुख्य आय स्रोत संपत्ति या गृहकर, बाज़ार और वाहनों पर कर, सीमा कर, जल कर, विद्युत कर, तथा पशु बिक्री पर पंजीकरण से होने वाली आय होगी।

दूसरा, पंचायत समिति वर्तमान में गाँवों से अप्रत्यक्ष चुनाव के माध्यम से गठित होने वाले प्रखण्ड (ब्लॉक) में शामिल किसी क्षेत्र के लिए बनाई जानी चाहिए। एक खंड क्षेत्र में आने वाली पंचायतों को मिलाकर सुविधाजनक इकाइयाँ बनाई जा सकती हैं और इन प्रत्येक इकाइयों के सभी पंच पंचायत समिति के सदस्य होने के लिए अपने में से ही व्यक्ति या व्यक्तियों का चुनाव करेंगे।

तीसरा, दल का यह प्रस्ताव था कि मुख्यतः एक जिलें में पंचायत समितियों में परस्पर आवश्यक

समन्वय स्थापित करने के लिए जिला स्तर पर जिला परिषद होनी चाहिए। जिला परिषद का गठन पंचायत समितियों के अध्यक्षों, सांसद और विधायिकों तथा विकास विभागों के जिला स्तर के अधिकारियों को मिलाकर किया जाना था। परिषद एक सलाहकार व पर्यवेक्षण संस्था के रूप में कार्य करती थी।

14.2.1 लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण – पंचायती राज

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण प्रणाली के पक्ष में अध्ययन दल की संस्तुतियों पर 1958 में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक परिषद (National Democratic Council; NDC) के द्वारा विचार किया गया। परिषद ने ज़ोर दिया कि किसी लोकतान्त्रिक संरचना का आधार गाँव में लोकतंत्र था और दल की संस्तुतियों को स्वीकृत कर लिया गया था। अतः यह प्रत्येक राज्य पर छोड़ दिया गया कि वह संरचना का कार्यान्वयन अपनी परिस्थितियों के सबसे अधिक अनुरूप करे। इस तथ्य की पुष्टि स्थानीय स्वसरकार की केन्द्रीय परिषद के द्वारा की गई। जब यह सुझाव दिया गया कि लोगों को अधिकारों का यह उपयुक्त हस्तांतरण राज्य सरकारों पर छोड़ा जा सकता है। तदनुसार राज्य सरकारें लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के अपने स्वरूप बना रही हैं। इसके बाद लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण उक्ति को छोड़कर "पंचायती राज" उक्ति को अपना लिया गया।

इस प्रकार पंचायती राज भारत में ग्रामीण स्वसरकार की तीन स्तरीय व्यवस्था है अर्थात् ग्राम स्तर पर पंचायत, खण्ड स्तर पर पंचायत समिति तथा जिला स्तर पर जिला परिषद है जिन्हें अपने-अपने सम्बन्धित कार्यक्षेत्र में योजना और विकास के लिए पर्याप्त अधिकार और संसाधन प्रदान किए गए हैं। निःसंदेह पंचायती राज योजना जिला और खण्ड सलाहकार/विकास समितियों के विकल्प के रूप में प्रकट हुई है जो सामुदायिक विकास कार्यक्रम कार्यान्वयन के लिए लोकप्रिय प्रयास आरंभ करने में असफल रही है।

पंचायती राज ही एक मात्र तरीका है जिसके द्वारा भारत के लोग जानकारी, भावना, अभ्यास और अनुभव प्राप्त कर सकते हैं जिससे वे वास्तव में स्वतंत्र रूप से रह सकते हैं।

पंचायती राज आगे नेतृत्व के लिए बहुमूल्य प्रशिक्षण आधार प्रदान करता है

यह अधिकतर लोगों को सार्वजनिक मामलों में संबद्ध होने के योग्य बनाता है। स्थानीय संस्थाओं को ठीक ही लोकतंत्र की "शिक्षण संस्था" कहा गया है। ये स्थानीय संस्थाएँ निर्वाचित लोगों को प्रतिनिधि संस्थाओं के उच्चतर स्तर पर जाने के लिए बहुमूल्य प्रशिक्षण आधार प्रदान करती हैं। इन संस्थाओं का अनुभव उदीयमान राज्य कार्मिक और राजनीतिज्ञों के आरंभिक प्रशिक्षण के लिए बहुमूल्य है (कॉरी)।

पंचायती राज नागरिकों की राजनीतिक शिक्षा का साधन है

स्थानीय सरकार प्रतिनिधि संस्थाओं के उच्च स्तरों पर निर्वाचित नेताओं के लिए न केवल बहुमूल्य प्रशिक्षण आधार तैयार करती है अपितु सामान्य नागरिकों के लिए राजनीतिक शिक्षा का स्रोत भी बनाती है। राजनीतिक शिक्षा का अभिप्राय है कि नागरिक स्थानीय स्तरों पर चलने वाली राजनीतिक तंत्र प्रणाली की जानकारी और अनुभव प्राप्त करते हैं तथा इसमें उनकी भूमिका को समझते हैं। स्थानीय सरकार लोगों की निकटतम सरकार है। इसकी संरचना और कार्यों में स्थाई इकाई के सभी नागरिक भाग ले सकते हैं। वे अपने मताधिकार का उपयोग करना तथा सार्वजनिक महत्त्व के विषयों का निर्णय करना सीख जाते हैं। वे अक्षम या भ्रष्ट प्रतिनिधि को चुनने में हुई अपनी गलती से सीख लेते हैं और जान लेते हैं कि अपना असंतोष निर्धारित अवसरों पर ही अभिव्यक्त किया जा सकता है। चूँकि राजनीतिक दल स्थानीय संस्थाओं के क्षेत्र में आते हैं तो चुनाव अभियानों में वे भी अपनी भूमिका निभाते हैं। नागरिकों को विभिन्न प्रकार की समस्याओं की जानकारी मिलती है। स्थानीय महत्त्व की समस्याओं

को समझने से उनका मानसिक ज्ञान काफी व्यापक हो जाता है और वे राष्ट्रीय समस्याओं को समझने में सक्षम हो जाते हैं। नागरिक भी अपनी आवश्यकताओं और माँगों से अवगत हो जाते हैं। राजनीति और सार्वजनिक मामलों की दुनिया उनके लिए बोधगम्य और परिचित हो जाती है।

हमारे योजना लक्ष्यों की प्राप्ति में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका

पंचायती राज संस्थाओं ने ग्रामीण लोगों को वह अवसर प्रदान किया है जो उन्हें पहले कभी नहीं मिला। अब लोगों के पास अपनी समस्याओं का समाधान करने और अपने आप निर्णय लेने के अधिकार हैं। किसान पंचायतों और पंचायत समितियों के माध्यम से अपनी आवश्यकताओं का मूल्यांकन करते हैं, प्रयास करते हैं और राज्य सरकार द्वारा उपलब्ध कराए गए या अपने प्रयासों से उत्पन्न साधनों की सहायता से भलाई के लिए योजनाएँ बनाते हैं और उन्हें लागू करते हैं। पंचायती राज संस्थाओं के ऐसे विकास से अधिकार, दायित्व और संसाधन गाँव पंचायतों को हस्तांतरित किए गए हैं जिससे ग्रामीण जनता में व्यापक परिवर्तन हुए हैं तथा उनका दृष्टिकोण बदलने लगा। उनका अनुभव बढ़ने लगा कि उनके अपने प्रयासों, परिश्रम और सहयोग एवं उनके नियंत्रण एवं उपलब्ध संसाधनों के साथ विभिन्न विकास गतिविधियों विशेषतः कृषि, पशु पालन, शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छता, संप्रेषण, सहयोग, ग्रामीण, उद्योग, आवास और समाज के महत्त्वपूर्ण वर्गों में कल्याणकारी कार्यों के क्षेत्रों में शीघ्रता से विकास किया जा सकता है।

पंचायती राज योजना के लोकतान्त्रिककरण के लिए प्रतिबद्ध साधन प्रदान करता है। यह विचार पक्का होता जा रहा है कि योजना तभी सफल हो सकती है जब यह भागीदारी बन जाए और समाज के विभिन्न संगठित समूह इसमें शामिल हों। प्रगति धीमी हो सकती है लेकिन परिणाम अधिक स्थायी होंगे। जबसे हमारे देश में योजना आरंभ हुई है कुछ लोगों ने अनुभव किया है कि आधारभूत स्तर अर्थात् गाँव और स्थानीय स्तर पर उचित ध्यान नहीं दिया गया है। यह लोगों को शिक्षित करता है तथा उनमें स्वयं कार्य करने की क्षमता पैदा करता है। यह स्थानीय आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं का ध्यान करते हुए कार्य योजना बनाने में सहायता करता है। यह स्थानीय लक्ष्य निर्धारित करने में सहायता करता है। स्थानीय संसाधनों का उपयोग करने और सक्रिय करने में भी सहायता करता है। इससे विकास कार्यों में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित होती है। लेकिन राष्ट्रीय स्तर की योजना की अनदेखी नहीं की जा सकती। इसलिए राष्ट्रीय उद्देश्यों और लक्ष्यों को यथासंभव पूरा करने के लिए प्राथमिकताएँ निर्धारित करनी पड़ेंगी और कुछ पहलुओं पर ज़ोर डालना होगा।

पंचायतों ने काफी दक्षता के साथ पंचवर्षीय योजना के संदर्भ में अपने दायित्वों का निर्वाह किया है। ग्राम पंचायतों को अपनी आवश्यकताओं और संसाधनों के आधार पर मसौदा योजना बनाने के [illegible] दिए गए थे। इसलिए दूसरी पंचवर्षीय योजना खण्ड, जिला और राज्य स्तरों पर आवश्यक जाँच के बाद ग्राम स्तरीय योजनाओं का मिश्रण है। पंचवर्षीय योजना में पंचायतों के योगदान ने ग्रामीण क्षेत्रों में नई जागृति उत्पन्न की है (स्थानीय स्व-सरकार, 1955-56)।

उपरोक्त तथ्य एक चीज स्पष्ट करते हैं कि पंचायतों और स्व-सरकारी संस्थाओं को योजना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी और अभी तक उन्होंने इस सम्बन्ध में उचित भूमिका का निर्वाह नहीं किया है।

14.2.2 पंचायती राज व्यवस्था की संरचना

बलवंत राय मेहता समिति ने अपनी रिपोर्ट में पंचायती राज की तीन-स्तरीय व्यवस्था – गाँव स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड (ब्लॉक) स्तर पर पंचायत समिति तथा जिला स्तर पर जिला परिषद का सुझाव दिया हैं।

ग्राम पंचायत

पंचायत ग्राम सभा की कार्यकारी समिति है। इसे कई नामों से जाना जाता है। पंचायत के सदस्यों की संख्या पाँच से इक्कतीस के बीच होती है, पंचायत के सदस्यों को पंच कहा जाता है और इनका चुनाव गुप्त मतदान के द्वारा ग्राम सभा के द्वारा किया जाता है। अध्यक्ष का चुनाव सीधे लोगों के द्वारा उड़ीसा में, ग्राम सभा के द्वारा असम, बिहार, पंजाब, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में तथा आंध्र प्रदेश, गुजरात, जम्मू और कश्मीर, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र व कर्नाटक में पंचों के द्वारा किया जाता है। अध्यक्ष को अपने पद से पंचायतों के उपस्थित और मतदान करने वालों के दो-तिहाई के बहुमतों से हटाया जा सकता है। कुछ राज्य कुछ पद महिलाओं और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के लिए आरक्षित करते हैं। विभिन्न राज्यों में पंचायतों की अवधि तीन से पाँच वर्ष तक होती है।

पंचायत को सामुदायिक विकास कार्यक्रम (Community Development Programme; CDP) लागू करने के साधन के रूप में देखा जाता है। पंचायत के कार्य अनिवार्य और उसके विवेकाधीन होते हैं। पंचायत को राज्य सरकार द्वारा अन्य कार्य भी आबंटित किए जा सकते हैं। इन कार्यों को करने के लिए पंचायत को कुछ राजस्व स्रोत भी प्रदान किए गए हैं। देखा गया है कि पंचायतें प्रभावी संस्था के रूप में कार्य नहीं करती है। बैठक की कार्यसूची जारी नहीं की जाती, बैठक में सदस्यों की पर्याप्त उपस्थिति नहीं होती तथा कभी-कभी बैठक काफी विलम्ब से होती है। उनके पास संसाधनों, सचिवालयी सहायता, पर्याप्त अधिकार और राजस्व तथा पुलिस अभिकरणों से सहयोग, मार्गदर्शन और पर्यवेक्षण और पंचों की रूचि का अभाव है। इन सबके अलावा, उनमें समूह प्रतिद्वंद्वता भी है जो सुचारु कार्य संचालन को बाधित करती है। इनमें नियमों और प्रक्रियाओं में जटिलता रहती है, दोषियों के विरुद्ध उपयुक्त समय पर कार्यवाही का तथा पंचायत समितियों की सनिकटता का अभाव है। अतः इन सब कमियों को दूर करने के लिए बलवंत राय मेहता समिति द्वारा प्रदत्त कुछ उपाय निम्नलिखित हैं: पंचायतों की राशि बढ़ाई जाए; अधिकारों और कार्यों का अधिक स्पष्ट वर्णन हो; उन्हें कुशल और नियमित सचिवालयी सहायता प्रदान की जानी चाहिए; नियम और प्रक्रियाएँ सरल होनी चाहिए। राजस्व और पुलिस अभिकरणों से सहयोग निश्चित रूप से मिलना चाहिए; सरकारी विभागों का सहयोग आवश्यक है; ग्राम सभा को सक्रिय होना चाहिए; लोगों को शिक्षित करने की आवश्यकता है। पंचायत पर राज्य का नियंत्रण है। इसमें कार्यक्षेत्र की सीमा को संशोधित करना, कार्मिकों की नियुक्ति करना, अभिलेख प्रबंधन, वित्तीय प्रशासन तथा चुनाव कराना शामिल है। राज्य सरकार आवश्यक रिपोर्टों और अभिलेखों की माँग कर सकती है। कुछ परिस्थितियों में यह पंच या सरपंच को पद से निलंबित अथवा हटा सकती है।

पंचायत समिति

पंचायत समिति (Panchayat Samiti; PS) भारत में ग्रामीण स्व-सरकार का मध्यवर्ती स्तर है। इसकी अवधि तीन से पाँच वर्ष की होती है। विभिन्न राज्यों में पंचायत समिति की संरचना में एकरूपता नहीं है। इसमें पदेन, संबद्ध और सहयोजक सदस्य शामिल होते हैं। पंचायतों के सरपंच पदेन सदस्य होते हैं। राज्य विधान मंडलों के सदस्य और संसद सदस्य इसके सदस्य होते हैं। पंचायतों में महिलाएँ तथा अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के सदस्य भी इसके सदस्य होते हैं। पंचायत समिति के अध्यक्ष को पंचायत समिति में विशेष बहुमत से अविश्वास मतदान के द्वारा उसके पद से हटाया जा सकता है। अध्यक्ष समिति या उसकी स्थायी समिति के प्रस्तावों के कार्यान्वयन हेतु खण्ड विकास अधिकारी (Block Development Officer; BDO) पर नियंत्रण रखता है। वह पंचायत समिति के सभी अभिलेखों को देख सकता है। उसके पास संपूर्ण खण्ड से कम कार्यक्षेत्र के किसी भी कार्मिक सदस्य को निलंबित या बर्खास्त करने का अधिकार है।

पंचायत समिति ग्रामीण स्थानीय सरकार की पंचायती राज प्रणाली का केन्द्र बिन्दु है। गुजरात और महाराष्ट्र को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में यह सैद्धान्तिक कार्यकारी संस्था है जिसे सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को लागू करने का दायित्व सौंपा गया है। इसके अतिरिक्त यह आबंटित किए जाने वाले कार्यों को निष्पादित करने वाली राज्य सरकार के अभिकर्त्ता के रूप में भी कार्य करती है। यह अपने कार्य क्षेत्र में पंचायतों का पर्यवेक्षण और नियंत्रण भी करती है और उन्हें आवश्यक तकनीकी तथा वित्तीय सहायता प्रदान करती है। यह अपने नियंत्रण वाले क्षेत्र की पंचायतों के बजट की जाँच करती है और उन्हें सुझाव देती है। कार्यों को दो बड़े क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है: (i) नागरिक सुविधाओं (Civic Amenities`) का प्रावधान करना, और (ii) विकास कार्यों को पूरा करना।

पंचायत समिति अपने कार्यों में सहायता के लिए अनेक समितियाँ नियुक्त करती है। स्थायी समिति के सदस्यों का चुनाव पंचायत समिति के सदस्यों के द्वारा किया जाता है। पंचायत समिति का अध्यक्ष स्थायी समिति का पदेन अध्यक्ष या सदस्य होता है। समिति को करों से अधिक राजस्व प्राप्त नहीं होता। समिति को राज्य में संग्रहीत भू-राजस्व का एक निश्चित हिस्सा मिलता है। समिति के पास प्रशासनिक कार्यतंत्र के लिए खंड विकास अधिकारी होता है। चूँकि तीन-स्तरीय स्थानीय सरकार संरचना में सभी कार्यकारी अधिकार पंचायत समिति के पास होते हैं, अतः इस संस्था को जिला स्तर पर केवल पर्यवेक्षण और समन्वयकारी भूमिका प्रदान की गई है।

जिला परिषदें

जिला परिषदें (Zilla Parishads; ZP) भारत में ग्रामीण स्थानीय सरकार प्रणाली की सर्वोच्च संस्थाएँ हैं। यह एक सामूहिक संस्था है। जिला परिषदों की सदस्यता इस तरह से बनाई गई है ताकि इसकी संबद्धता पंचायती राज के मध्यवर्ती स्तर अर्थात् पंचायत समिति से स्थापित की जा सके। जिला परिषदें अपनी पदेन और सहयोजक सदस्यता के कारण लोकप्रिय संस्था की अपेक्षा सरकारी हैं। जिला परिषदों की सदस्य संख्या चालीस से साठ के बीच होती है। जिलों में शहरी स्थानीय सरकारों का प्रतिनिधित्व भी जिला परिषद में किया जाना चाहिए ताकि यह व्यापक, दक्षता और सार्थक तरीके से कार्य कर सके। इसकी अवधि तीन से पाँच वर्ष की होती है। जिला परिषद के सदस्य अपने में से ही अध्यक्ष का चुनाव करते हैं। वह जिला परिषद के प्रस्तावों और आदेशों के कार्यान्वयन हेतु मुख्य कार्यकारी अधिकारी (Chief Executive Officer; CEO) पर प्रशासनिक पर्यवेक्षण करता है तथा मुख्य कार्यकारी अधिकारी की एक गोपनीय रिपोर्ट मण्डल आयुक्त को भेजता है। अध्यक्ष को अविश्वास मत के द्वारा हटाने का प्रावधान सभी मानकों में किया गया है। जिला परिषदें स्थायी समितियों के नेटवर्क के माध्यम से कार्य करती हैं।

गुजरात और महाराष्ट्र को छोड़कर अधिकांश राज्यों में जिला परिषदों को कार्यकारी अधिकार दिए गए हैं, विशेष रूप से योजना और विकास तथा पंचायती राज संस्थाओं को सर्वाधिक शक्तिशाली बनाने के लिए। जिला परिषदें पर्यवेक्षण एवं समन्वयकारी संस्था के रूप में कार्य करती है। यह पंचायत समितियों द्वारा तैयार विकास योजनाओं का समन्वय करती है, जिले में विकास गतिविधियों से संबंधित सभी मामलों में राज्य सरकार को सलाह प्रदान करती है और अनियमितताओं के बारे में जिला समाहर्ता और मण्डल आयुक्त को सूचित करती है। जिले में स्थानीय अधिकारियों की गतिविधियों से सम्बन्धित आँकड़े/विवरण एकत्रित करती है तथा पंचायतों और पंचायत समितियों में किए जाने वाले कार्य आबंटन के बारे में राज्य सरकार को परामर्श देती है। सामान्यतः जिला परिषद के आय स्रोत कर, ग़ैर-कर राजस्व तथा राज्य सरकार से मिलने वाला अनुदान आदि होते हैं।

पंचायती राज संस्थाओं की सफलता में कई समस्याएँ बाधा डालती हैं: (i) ग्रामीण लोगों की अशिक्षा और रूढ़िवादिता; (ii) ग्रामीण स्थानीय स्व-सरकार जातिवाद, सांप्रदायिकता तथा गुटबंदी ग्रसित है; (iii) लाभ सामान्य व्यक्ति तक नहीं पहुँचता; (iv) स्थानीय संस्थाओं में बेईमानी और भ्रष्टाचार; (v)

शहरीकरण एक और समस्या है; (vi) धीमी प्रगति के लिए अत्यधिक सरकारी नियंत्रण भी ज़िम्मेदार है; (vii) धन का अभाव; (viii) इन संस्थाओं के अनियमित चुनाव।

14.2.3 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, अधिकार और कार्य

संविधान के 73वें संविधान संशोधन अधिनियम से पूर्व भी पंचायतों को कुछ पारंपरिक कार्य जैसे विकासात्मक दायित्वों की अपेक्षा रखरखाव सम्बन्धी कार्य आबंटित किए गए थे। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम ने पंचायती राज संस्थाओं को देखभाल के कार्यों के साथ विकासात्मक कार्यों का भी दायित्व सौंपा। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम की धारा 243 जी ने पंचायतों को जो शक्तियाँ, अधिकार और दायित्व प्रदान किए हैं वे निम्नलिखित हैं: यद्यपि संशोधन ने ग्यारहवीं अनुसूची के अंतर्गत कार्यों की सूची प्रदान की है तो भी उसने यह स्पष्ट नहीं किया है कि पंचायती राज संस्थाओं का कौन-सा स्तर कौन सा विशेष प्रकार का कार्य करेगा। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के अनुरूप सभी राज्यों ने अपने सम्बन्धित पंचायत अधिनियमों में संशोधन किया और सम्बन्धित राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं के विभिन्न स्तरों को आबंटित कार्यों की एक सूची बनाई। इस परिस्थिति में राज्यों की पंचायती राज संस्थाओं के विभिन्न स्तरों के कार्यों की चर्चा करना आवश्यक है। विभिन्न तेरह राज्यों के पंचायत अधिनियमों को सूचीबद्ध कार्यों की तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है: (i) साधारण/सामान्य प्रशासनिक कार्य; (ii) विकासात्मक और सामाजिक; तथा (iii) रखरखाव।

ग्राम पंचायत (Gram Panchayat; GP) के कार्यकारी दायित्व

इस स्तर पर प्रशासनिक कार्य हैं : (i) ग्राम पंचायत के विकास हेतु वार्षिक योजना बनाना; (ii) वार्षिक बजट बनाना; (iii) प्राकृतिक आपदाओं में सहायता को गतिशील करना; (iv) सार्वजनिक संपत्तियों के अतिक्रमण को हटाना; (v) स्वयंसेवी श्रम और योगदान या सामुदायिक कार्यों की व्यवस्था करना; (vi) गाँव के आँकड़ों का रखरखाव करना; (vii) राज्यों में सामान्यतः पाए जाने वाले कोई भी अन्य कार्य जो पंचायत समिति, जिला पंचायतों या राज्य अथवा केन्द्र सरकार द्वारा एक अभिकरण के रूप में सौंपे गए हों। इसके अतिरिक्त आंध्र प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल और महाराष्ट्र में गाँव की सुरक्षा, सूचना एवं प्रचार तथा न्याय पंचायत के गठन करने के कार्य भी पाए गए। विकासात्मक और सामाजिक कार्य हैं: कृषि, सामाजिक वानिकी, पशुपालन, ग्रामीण आवास व शिक्षा आदि। अगला कार्य रखरखाव सम्बन्धी है जिसमें ग्रामीण विद्युतीकरण, ग्रामीण सफाई और संरक्षण करना शामिल है।

खण्ड स्तर (पंचायत समिति) पर कार्य

इस स्तर पर सामान्य प्रशासनिक कार्य हैं: प्राकृतिक आपदाओं में सहायता प्रदान करना और जिला पंचायत द्वारा सौंपे गए अन्य कार्य। कुछ कार्य जैसे ऋण देना, सामाजिक शिक्षा और ग्राम सुरक्षा दल (केवल गुजरात में) बनाना, प्रचार और सूचना (गुजरात और महाराष्ट्र) तथा सांख्यिकी/आँकड़े (गुजरात, महाराष्ट्र और राजस्थान) बहुत आम थे। विकासात्मक सामाजिक गतिविधियाँ कृषि, पशुपालन, मछली पालन, सामाजिक बागवानी और वानिकी से सम्बन्धित हैं। रखरखाव कार्यों में बाज़ार और उसका स्वच्छ रखरखाव, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, स्वच्छता, चिकित्सा और सांस्कृतिक गतिविधियाँ तथा खेल शामिल हैं जो कई राज्यों में पंचायती राज की आम ज़िम्मेदारियाँ थीं।

जिला परिषद (जिला पंचायत, Zilla Panchayat; ZP) स्तर के कार्य

इस स्तर पर सामान्य प्रशासनिक कार्य का मुख्य दायित्व है खण्ड और जिला स्तरों पर विकास योजनाओं का समग्र पर्यवेक्षण, समन्वय, समेकन, संघटन और कार्यान्वयन करना। संपूर्ण जिले के आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएँ बनाना तथा योजनाओं, परियोजनाओं और प्रणालियों या पंचायत समिति कार्यों का कार्यान्वयन लगभग सभी राज्यों में सामान्यतः पाया गया।

विकासात्मक कार्य श्रेणी में कृषि और उसका विस्तार और बागवानी, पशुपालन, डेयरी कार्य और मुर्गी पालन सामाजिक वानिकी, ईंधन और पशुचारा तथा शिक्षा सभी राज्यों में बिल्कुल सामान्यतः थे। स्वास्थ्य और स्वच्छता और परिवार कल्याण, चिकित्सा और सफ़ाई केवल रखरखाव श्रेणी का दायित्व है जो अधिकतर राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं के दो या तीन स्तरों पर सामान्यतः निष्पादित किया जाता है। रखरखाव श्रेणी कार्यों के मामले में विकास और सामाजिक की तुलना में स्थिति अपेक्षाकृत कुछ अधिक अच्छी है। इनमें से अधिकतर कार्य केवल ग्राम पंचायत द्वारा किए जाते हैं। सारांशतः कहा जा सकता है कि विकास और सामाजिक श्रेणी के कार्यों में दायित्वों के क्षेत्रों का सीमांकन राज्य अधिनियमों में स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया है।

14.3 प्रशासनिक संरचना कार्य

भारत की वर्तमान प्रशासन व्यवस्था औपनिवेशी शासकों से विरासत में मिली है और इस संरचना को ग्रामीण विकास का कार्य और दायित्व सौंपा गया है। समय-समय पर इसमें कुछ संशोधन किए गए हैं। ग्रामीण विकास कार्यों के लिए राजस्व और सामान्य प्रशासनिक संगठन और प्रणाली को गतिशील किया गया है। 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरंभ करने से परिवर्तन किए गए हैं। मैदानी स्तर पर विकासात्मक प्रशासन स्थापित करने के लिए पहली बार गहन प्रयास किया गया है और सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अंतर्गत विभिन्न योजनाएँ आरंभ करने के लिए इसमें तकनीकी विशेषज्ञों और मानव प्रशिक्षण को शामिल किया गया है।

1952 में प्रस्तुत ग्रो मोर खाद्य जाँच समिति (Grow More Food Enquiry Committee) ने अपनी रिपोर्ट में पहली बार ज़ोर दिया कि ग्रामीण विकास के लिए समेकित संगठनात्मक संरचना की आवश्यकता है। अपनी तैयार अंतिम रूपरेखा में विभिन्न स्तरों – राष्ट्रीय, राज्य, जिला, खण्ड और गाँव स्तर पर स्थापना का भी वर्णन किया गया। इसने खण्ड के लिए विकास अधिकारी के अधिकार में 100-120 गाँवों को शामिल करते हुए विकास खण्ड के रूप में तालुकों की स्थापना की संस्तुति की। यह विकास अधिकारी राजस्व प्रभारी अधिकारी होगा, कृषि, पशुपालन, सहयोग और अभियांत्रिकी के लिए चार तकनीकी अधिकारी इसकी सहायता करेंगे और प्रत्येक 5 से 10 गाँवों के लिए ग्रामीण स्तर पर एक कार्यकर्त्ता भी होगा। रिपोर्ट ने यह भी संस्तुति की कि जिले में सभी विकास गतिविधियाँ समाहर्ता के अंतर्गत एक समान होनी चाहिए जिसकी सहायता विशेषज्ञ अधिकारी करेंगे और राज्य स्तर पर मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में एक मंत्रिमंडल समिति होगी तथा नीतियों को समन्वित करने और संयुक्त कार्य को अंतिम रूप देने के लिए एक गैर-सरकारी बोर्ड होगा।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम (Community Development Programme; CDP) को 1952 में आरंभ कर अंतिम रूप को मूर्त रूप दिया गया इसके बाद राष्ट्रीय स्तर पर इस कार्यक्रम (1953) को आरंभ किया गया जो पूरे देश में किया गया। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अंतर्गत योजना की प्राथमिक इकाई व समेकित ग्रामीण विकास के रूप में विकास खण्ड स्थापित किए गए जिसमें कृषि, पशुपालन, ग्रामीण उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक कल्याण शामिल करते हुए स्व-सहायता और लोक भागीदारी पर विशेष ज़ोर दिया गया। सामुदायिक विकास कार्यक्रम द्वारा सर्वाधिक उल्लेखनीय नए प्रशासनिक सुधार थे, प्रशासन की इकाई के रूप में खण्डों की पहचान करना, विषय विशेषज्ञों को विस्तार अधिकारी नियुक्ति करना, बहुआयामी विकास कार्यकर्त्ता के रूप में गाँव समूहों के लिए गाँव स्तर पर कार्यकर्त्ता (Village level workers; VLWs) नियुक्त करना जिसके माध्यम से विभिन्न विभागों के कार्यक्रम लागू किए जाएँ, राज्य स्तर पर समन्वयकारी कार्यकर्त्ता के रूप में विकास आयुक्तों की भूमिका, खण्ड स्तरों पर विभिन्न विभागों के विकास कार्यक्रमों का समन्वय एवं संघटन करना तथा विकास में लोगों की भागीदारी को गतिशील बनाना।

संगठनात्मक संरचना सामुदायिक विकास कार्यक्रम कार्यान्वयन के समय साकार हुई जो चौथी और पाँचवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि में जिला स्तर पर कुछ परिवर्तन के साथ मौटे तौर पर अभी तक जारी है, इसमें ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की कार्यनीति में परिवर्तन हुआ और विशिष्ट कार्यक्रम आरंभ किए गए। ग्रामीण विकास की कार्यनीति धीरे-धीरे क्षेत्र आधारित और ग्राहक मूलक विकास होनी आरंभ हो गई है।

प्रशासनिक संरचना

आरंभ में सामुदायिक विकास कार्यक्रम का कार्यान्वयन योजना आयोग को दिया गया था। इस उद्देश्य के लिए प्रशासक की अध्यक्षता में एक विशेष संगठन अर्थात् सामुदायिक परियोजना संचालन संगठन की स्थापना की गई। जिसकी सहायता प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली एक केन्द्रीय समिति द्वारा की जानी थी जिसमें योजना आयोग के सदस्य और कुछ केन्द्रीय मंत्री शामिल थे। इस समिति को कार्यक्रम से सम्बन्धित व्यापक नीतियों का वर्णन करने और इसकी प्रगति का पर्यवेक्षण करने का कार्य दिया गया था। कार्य के बढ़ते विस्तार और महत्त्व को देखते हुए विषयों जैसे खण्डों का आबंटन, वित्तीय सहायता, राज्यों की उपस्करों की आपूर्ति, प्रशिक्षण, अनुसंधान संपूर्ण दिशा निर्देश और कार्यक्रम का पर्यवेक्षण तथा कार्यान्वयन को देखने के लिए 1956 में एक अलग मंत्रालय सामुदायिक विकास मंत्रालय स्थापित किया गया। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में ज़ोर देने वाले तथ्य में परिवर्तन होने के साथ-साथ समय-समय पर मंत्रालय के नाम और स्वरूप में परिवर्तन होता रहा है। 1958 में गाँव पंचायतों का विषय स्वास्थ्य मंत्रालय से सामुदायिक मंत्रालय को हस्तांतरित किया गया। इसके बाद खाद्य और कृषि मंत्रालय से सहकारिता मंत्रालय को दिया गया तथा मंत्रालय का नया नाम सामुदायिक विकास और सहकारिता मंत्रालय रखा गया। मंत्रालय को दो विभागों – सामुदायिक विकास विभाग और सहकारिता विभाग में स्थापित किया गया। बलवंत राय मेहता समिति के सुझावनुसार 1959 में पंचायती राज की स्थापना हुई और मंत्रालय का नया नाम सामुदायिक विकास, पंचायती राज और सहकारिता मंत्रालय किया गया। परन्तु कुछ समय बाद पुनः इसका नामकरण सामुदायिक विकास और सहकारिता मंत्रालय कर दिया गया।

1960 के दशक के प्रारंभ में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में ज़ोर कृषि उत्पादन बढ़ाने पर हो गया था। इसके परिणामस्वरूप, 1964 में गहन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम आरंभ किया गया। कार्यक्रम की प्रभावशाली निगरानी के लिए केन्द्र में विशेष तंत्र प्रणाली की स्थापना की गई। कार्यक्रम के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए केन्द्रीय स्तर पर समन्वय की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए संसद की आकलन समिति ने कहा कि "अनुभव किया गया है कि ग्रामीण विकास के किसी समग्र कार्यक्रम विशेषतः कृषि उत्पादन में कार्यान्वयन के लिए सम्बन्धित अभिकरणों में सभी स्तरों पर समन्वय रखना आवश्यक है। इसके परिणामस्वरूप केन्द्र में सामुदायिक विकास और कृषि के विभागों को न केवल एक ही मंत्रालय में रखा गया अपितु कार्मिक स्तर पर भी एक ही सचिव के अधीन रखा गया है।"

अपनी मसौदा योजना (Draft Plan) (1978-83) में योजना आयोग ने ग्रामीण विकास विशेषतः निर्धनों के संदर्भ में दृष्टिकोण की समीक्षा की। इसने विकास की समग्र योजना को खण्ड स्तर पर देखा जिसमें निर्धनों के लिए लाभार्थी मूलक योजना को उपयुक्त रूप से समाविष्ट किया गया। इसके बाद पूरे देश में 2300 विकास खण्डों में 1978-79 में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (Intensive Rural Development Programme; IRDP) आरंभ किया गया। 1980 में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के साथ लघु किसान विकास अभिकरणों (Small Farmers Development Agencies; SFDAs) को भी उस समय मिलाया गया जब एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम का देश के सभी खण्डों में विस्तार किया गया। रोज़गार बढ़ाने के लिए 1977 में आरंभ किया गया "काम के बदले अनाज" कार्यक्रम में संशोधन के रूप में 1980 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम आरंभ किया गया। फिर भी, विभिन्न जिलों में विभिन्न

विशेष कार्यक्रमों की देखभाल करने वाले अनेक अभिकरणों के विद्यमान प्रशासनिक प्रबंधों के साथ एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम (National Rural Employment Programme; NREP) के उद्देश्य प्राप्त होने में संदेह उठने लगे। भारत सरकार ने 1980 में राज्य और जिला स्तरों पर प्रशासनिक प्रबंधों को संघटित करने के बारे में निर्देश जारी किए। राज्य स्तरीय समन्वय समिति और जिला ग्रामीण विकास अभिकरण स्थापित किए गए। ग्रामीण पुनर्निर्माण मंत्रालय 1979 में बनाया गया जो 1982 तक रहा। जनवरी 1985 में यह कृषि मंत्रालय में पृथक ग्रामीण विकास विभाग के रूप में इसका एक रचनात्मक घटक बन गया।

आइए, हम 1980-90 में संचालित संगठनात्मक संरचना का वर्णन करें। ग्रामीण विकास विभाग अब कृषि मंत्रालय के चार विभागों में से एक है तथा इसका प्रमुख सचिव, भारत सरकार है। इसकी सहायता के लिए एक अतिरिक्त सचिव, 6 संयुक्त सचिव तथा अन्य सहायक प्रशासनिक व तकनीकी कार्मिक दल है। विभाग को 6 शाखाओं में विभाजित किया गया है जिनका प्रमुख संयुक्त सचिव होता है। 6 शाखाएँ इस प्रकार हैं:

i) प्रशासनिक शाखा

ii) ग्रामीण रोज़गार शाखा

iii) संपूर्ण अथवा एकीकृत ग्रामीण विकास शाखा (Integrated Rural Development Wing)

iv) भूमि सुधार शाखा

v) वित्त शाखा; और

vi) पर्यवेक्षण शाखा (Monitoring Wing)

इन 6 शाखाओं के अतिरिक्त 1986 में विभाग में गाँवों और संबंधित स्वच्छ जल प्रबंधन पर एक तकनीकी पेय जल मिशन स्थापित किया गया ताकि पर्याप्त पेय जल प्रदान किया जा सके जिसका प्रभारी अधिकारी निदेशक सहित संयुक्त सचिव (Mission Director-cum- Joint Secretary) था। ग्रामीण विकास विभाग कार्यक्रमों की नीति, योजना, निर्देशन, समन्वय और पर्यवेक्षण के लिए ज़िम्मेदार है।

ग्रामीण विकास विभाग के प्रशासनिक नियंत्रण में निम्नलिखित संस्थाएँ हैं :

- विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय (Directorate of Marketing and Inspection; DMI) -- यह एक संबद्ध कार्यालय है।
- राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान (National Institute of Rural Development; NIRD) -- यह एक स्वायत्त संस्था है।
- लोक कार्य और ग्रामीण प्रौद्योगिकी उन्नति परिषद-कपार्ट (Council for Advancement of People's Action and Rural Technology; CAPART) यह एक पंजीकृत समिति है।

ग्रामीण विकास परियोजनाओं में अनुदान प्राप्त करने के लिए 1984 में एक राष्ट्रीय ग्रामीण विकास कोष (National fund for Rural Developmnet; NFRD) की स्थापना की गई। यह दानदाताओं को कर छूट प्रदान कर प्रोत्साहन प्रदान करता है। यह भी सत्य है कि ग्रामीण विकास विभाग ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यक्रम लागू करने वाला अकेला विभाग नहीं है। ग्रामीण विकास उन कई अन्य मंत्रालयों/विभागों का भी उतना ही महत्वपूर्ण विषय है जिनके ग्रामीण क्षेत्रों में भी कार्यक्रम हैं। कृषि और सहकारिता विभाग के अनेक कार्यक्रम हैं और इसी प्रकार पर्यावरण और वन मंत्रालय के भी अनेक कार्यक्रम हैं।

महिला और बाल कल्याण विभाग के बच्चों और महिलाओं के कल्याण के लिए कार्यक्रम हैं। सामाजिक कल्याण मंत्रालय ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और शारीरिक और सामाजिक रूप से अक्षम लोगों के लिए कई कार्यक्रम आयोजित करता है; स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के स्वास्थ्य और परिवार नियोजन के कार्यक्रम हैं। औद्योगिक मंत्रालय के ग्रामीण उद्योगों के कार्यक्रम हैं। इसी प्रकार शिक्षा विकास के लिए शिक्षा विभाग तथा जल संसाधनों का विकास जल संसाधन मंत्रालय के कार्यक्रम हैं। 1988 में ग्रामीण विकास मंत्रालय की स्थापना की गई थी जिसका 1992 में पुनः नया नाम ग्रामीण विकास और सहकारिता मंत्रालय रखा गया।

राष्ट्रीय स्तर पर विद्यमान संरचना

एक नया मंत्रालय पंचायती राज 27 मई 2004 से स्थापित किया गया। कार्य नियमों के संशोधित आबंटन के अनुसार "पंचायती राज और पंचायती राज संस्थाओं से सम्बन्धित सभी मामले" नए स्थापित मंत्रालय द्वारा देखे जाएँगे।

पंचायती राज मंत्रालय का कार्य संविधान (73वाँ संशोधन) अधिनियम, 1992 और पंचायत अधिनियम (अधिसूचित क्षेत्रों में लागू), 1996 के प्रावधानों के कार्यान्वयन के समर्थन का कार्य करना और उनका पर्यवेक्षण करना होगा इसके बाद यहाँ इन्हें उल्लिखित अधिनियम कहा जाता है। मंत्रालय यह भी सुनिश्चित करेगा कि राज्य पंचायती राज अधिनियम उपरोक्त दो अधिनियमों के प्रावधानों के अनुसार हो और उसका अक्षरशः कार्यान्वयन हो।

वर्तमान में राज्य और केन्द्र शासित प्रदेश उक्त अधिनियमों को विभिन्न अंशों में लागू करते हैं। अन्य कार्यों के अलावा मंत्रालय यह सुनिश्चित करेगा कि वे समय पर चुनाव करवाएँ, राज्य वित्त आयोगों का गठन करें और उनकी संस्तुतियों को लागू करें, जिला योजना समितियों का गठन करें और उन्हें उपयुक्त रूप से सशक्त करें ताकि राज्य और केन्द्रीय स्तर की योजना को प्रभावी रूप से पोषित करने के लिए आधारभूत स्तर पर योजनाओं को सुनिश्चित किया जा सके। मंत्रालय का एक मुख्य कार्य यह सुनिश्चित करना होगा कि राज्य सरकारों/केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रशासन संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार धन, कार्य और कार्यकर्त्ता पंचायती राज संस्थाओं को हस्तांतरित करेंगे। पंचायती राज मंत्रालय पंचायती राज संस्थाओं को "स्थानीय स्व-सरकार की संस्थाओं" के रूप में ऊपर उठने के लिए एक कार्य योजना का निर्माण और कार्यान्वयन करेगा ताकि उनसे सम्बन्धित क्षेत्रों में आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय प्राप्त किया जा सके।

नियमित बैठकों के आयोजन द्वारा ग्राम सभा को सशक्त बनाने और ग्राम सभाओं के माध्यम से सामाजिक लेखा-जोखा करने से वे पंचायती राज की नींव बनकर उभरती हैं जिससे राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों में प्रभावशाली प्रशासन का पालन होगा। स्थानीय स्थिति पर निर्भरता से राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों का प्रशासन वार्ड सभाएँ और महिला सभाएँ बनाने और उन्हें सक्रिय करने में प्रोत्साहित होगा।

मंत्रालय ने पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचित प्रतिनिधियों और सरकारी कार्मिकों तथा कार्यकर्त्ताओं को ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में उनकी क्षमता निर्माण को काफी महत्त्व प्रदान किया है। अनुमान लगाया गया है कि निर्वाचित संस्थाओं में कार्यरत लगभग 30 लाख निर्वाचित सदस्यों और निर्वाचित संस्थाओं के कार्मिकों को अपना कार्य प्रभावी ढंग से करने योग्य बनाने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता है। मंत्रालय पंचायतों के विकास के लिए अनुसंधान अध्ययनों, कार्यशालाओं तथा गोष्ठियों के लिए धन प्रदान करेगा। मंत्रालय स्व-सरकार की संस्थाओं को अपनी भूमिका को निभाने के लिए पंचायती राज संस्थाओं को प्रोत्साहित करने के लिए राष्ट्रीय सर्वोत्तम पंचायत पुरस्कारों की योजना भी लागू करेगा ताकि स्थानीय स्तर पर आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय लागू किया जा सके।

राज्य स्तर पर प्रशासनिक संरचना

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के संचालन का प्रत्यक्ष/सीधा दायित्व राज्य सरकार का है। अब लगभग सभी राज्यों में सचिव की अध्यक्षता में अलग ग्रामीण विकास विभाग हैं। उससे ऊपर कृषि और ग्रामीण विकास विकासायुक्त होता है। कई राज्यों में मुख्य सचिव ही विकास आयुक्त व सचिव भी होता है। 1960 के दशक के उत्तरार्ध में सभी राज्यों में विभिन्न विभागों के बीच समन्वय करने के लिए राज्य स्तरीय समन्वय व समीक्षा समितियों की स्थापना की गई। इन समितियों में सभी सम्बन्धित विभागों के सचिव तथा एक प्रतिनिधि केन्द्र सरकार का होता है। छोटे किसानों, उपेक्षित किसानों और कृषि श्रमिकों (1983) के लिए संचालित अंतोदय कार्यक्रम की योजना आयोग के कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन (Programme Evaluation Organisation; PEO) द्वारा 1979 से 1981 के बीच किए गए अध्ययन से ज्ञात हुआ कि अधिकतर राज्यों में राज्य स्तरीय समन्वय व समीक्षा समितियाँ गतिशील नहीं थीं और वे अभिकरणों को सहायता व मार्गदर्शन प्रदान करने में असफल थीं। राज्य स्तरीय सेल (प्रकोष्ठ) जिनसे सामान्य पर्यवेक्षण और विभिन्न विभागों की गतिविधियों में समन्वय स्थापना की अपेक्षा थी वे भी अपना उद्देश्य पूरा करने में असमर्थ रहे थे।

केन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय ने संस्तुति की कि संपूर्ण ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम (National Rural Employment Programme; NREP), ग्रामीण भूमिहीन रोज़गार गारंटी कार्यक्रम (Rural Landless Employment Guarantee Programme; RLEGP), सूखा संभावित क्षेत्र कार्यक्रम (Drought Prone Area Programme; DPAP), सूखा विकास कार्यक्रम (Desert Development Programme; DDP), जैसे कार्यक्रम राज्य स्तर पर एक ऐसे अकेले विभाग द्वारा देखे जाने चाहिए जिसका खण्ड (ब्लॉक) और जमीनीं स्तरों तक विकास प्रशासन/संचालन पर पूरा नियंत्रण हो ताकि अन्य विभागों के साथ पर्याप्त अंतः क्षेत्रीय समन्वय पर ध्यान दिया जा सके। मंत्रालय ने सभी विशिष्ट कार्यक्रमों पर ध्यान देने के लिए जिलों में इन कार्यक्रमों का पर्यवेक्षण, निर्माण और कार्यावयन में संयुक्त/उप सचिव स्तर के मध्य स्तरीय अधिकारियों से सहायता प्राप्त करने हेतु आयुक्त स्तर पर एक अन्य पद बनाने की सिफारिश की।

इसके फलस्वरूप, आरंभ में राज्य स्तर पर मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में विकास समिति के पर्यवेक्षण में सभी विकास कार्यों का प्रभारी अधिकारी विकास आयुक्त का पद होता था। अब अधिकतर मामलों में या तो योजना विभाग या ग्रामीण विकास विभाग योजना और कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी होता है। तथा समन्वय समिति का अध्यक्ष मुख्य सचिव/कृषि उत्पादन आयुक्त/प्रधान सचिव योजनाओं की समीक्षा करता है, स्वीकृति प्रदान करता है, पर्यवेक्षण करता है और उनका मूल्यांकन करता है। कुछ राज्यों जैसे राजस्थान ने 1971 में एक विशिष्ट संगठनात्मक संरचना बनाई है जिसे विशेष योजना संगठन (Special Schemes Organisation; SSO) कहा जाता है ताकि कृषि विकास परियोजनाएँ बनाई जा सकें। धीरे-धीरे विशिष्ट कार्यक्रम जैसे, सूखा संभावित क्षेत्र कार्यक्रम (Drought Prone Area Programme; DPAP), सूखा विकास कार्यक्रम (Desert Development Programme; DDP), राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम (National Rural Employment Programme; NREP) भी विशेष योजना संगठन (SSO) को हस्तांतरित कर दिए गए थे।

जिला स्तर पर प्रशासनिक संरचना

जिला भारत में प्रशासन की प्रथम इकाई है और इसका प्रमुख जिलाधीश होता है। जिला स्तर पर राजस्व और विकास कार्य मिश्रित हैं। जब सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरंभ किया गया था तो जिले में जिलाधीश को सामुदायिक विकास प्रशासन का प्रमुख बनाया गया था। जिलाधीश जिला योजनाओं का समन्वय करता था और जिला योजना समिति की अध्यक्षता करता था। समिति में सरकारी और गैर-सरकारी सदस्य होते थे तथा इसकी सहायता जिला योजना अधिकारी करता था।

जिला स्तर पर चौथी योजना (1969-74) में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए जब 1969 में छोटे किसानों को ऋण सहायता और तकनीकी मार्गदर्शन देने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा नियुक्त अखिल भारतीय ऋण समीक्षा समिति (All India Rural Credit Review Committee) की सिफारिश पर लघु किसान विकास अभिकरणों (Small Farmers Development Agencies; SFDAs) और उपेक्षित किसान व कृषि श्रमिक विकास अभिकरणों (Marginal Farmers and Agricultural Labourers Development Agencies; MFALDAs) की स्थापना की गई। सभी विभागों की गतिविधियों को समन्वित करने के लिए जिलाधीश की अध्यक्षता में एक समन्वय समिति सभी जिलों में बनाई गई।

लघु किसान विकास अभिकरण (SFDAs) और उपेक्षित किसान व कृषि श्रमिक विकास अभिकरण (MFALDAs) कार्यक्रमों को लागू करने के लिए समिति पंजीकरण अधिनियम, 1960 के अंतर्गत प्रत्येक जिले में एक स्वायत्त अभिकरण का गठन किया गया। प्रत्येक समिति में कार्यकारी कार्मिकों सहित एक प्रबंधन समिति होती थी तथा राज्य समन्वय व समीक्षा समिति से उसे सहायता प्राप्त होती है। प्रबंधन समिति में एक अध्यक्ष जो प्रायः जिलाधीश होता है और राज्य कृषि, पशुपालन, सहकारिता विभागों और कार्यक्रमों से सम्बन्धित किसी अन्य विभाग के अध्यक्ष, अग्रणी बैंक का प्रतिनिधि, सम्बन्धित केन्द्रीय सहकारी बैंक का अध्यक्ष, जिला परिषद का प्रतिनिधि तथा कुछ ग़ैर-सरकारी सदस्य होते हैं। प्रत्येक अभिकरण में एक परियोजना अधिकारी तथा कृषि, पशुपालन और सहकारिता विभागों के तीन सहायक परियोजना अधिकारी अधिकतम कार्मिक होते हैं। लघु किसान विकास अभिकरणों (SFDAs) का अपना कोई कार्यक्षेत्र नहीं होता और अभिकरण को अन्य सम्बन्धित विकास विभागों और संस्थाओं जैसे सहकारिता और व्यावसायिक बैंकों के माध्यम से कार्य करना होता है।

लघु किसान विकास अभिकरण(SFDA) के अतिरिक्त चौथी और पाँचवीं पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान देश में अन्य विशेष कार्यक्रम भी आरंभ किए गए। इनमें सूखा संभावित क्षेत्र कार्यक्रम (DPAP) तथा सूखा विकास कार्यक्रम (DDP) 1970 के दशक में आरंभ किए गए। जिला स्तर पर राज्य या केन्द्र सरकार द्वारा विशेष परियोजना अभिकरण स्थापित किया गया। सामान्यतः जिलाधीश इनके साथ संबद्ध हैं।

ग्रामीण विकास मंत्रालय ने सिफारिश की कि जिला स्तर पर योजना एवं कार्यान्वयन अभिकरण जिला ग्रामीण विकास अभिकरण (District Rural Development Agency; DRDA) होना चाहिए जिसका अध्यक्ष जिला आयुक्त या उपायुक्त या जिलाधीश हो। अतः जब संपूर्ण देश में सभी खण्डों में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) तथा राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम (NREP) छठी पंचवर्षीय योजना के आरंभ में शुरु किए गए तो जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों (DRDAs) को स्वायत्त अभिकरणों के रूप में स्थापित किया गया।

जिला ग्रामीण विकास अभिकरण (DRDAs) जिले में कार्यक्रमों की योजना, कार्यान्वयन, पर्यवेक्षण और मूल्यांकन के ज़िम्मेदार हैं। जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों के कार्य निम्नलिखित हैं :

- कार्यक्रमों के मानदंडों, आयामों और अपेक्षाओं के बारे में जिला और खण्ड स्तर के अभिकरणों को सूचना प्रदान करना और इस संदर्भ में उनके कार्यों का मूल्यांकन करना;
- खण्ड की भावी योजना और वार्षिक योजनाओं के सर्वेक्षण और तैयारी का समन्वय करना तथा समीक्षा करना और अंत में एक जिला योजना बनाना;
- नियमित मूल्यांकन और पर्यवेक्षण के द्वारा कार्यक्रम की प्रभावशालीता को सुनिश्चित करना;
- अंतर्विभागीय और अंतर्क्षेत्रीय समन्वय एवं सहयोग को सुनिश्चित करना

- कार्यक्रमों के द्वारा प्राप्त उपलब्धियों का प्रचार करना, ज्ञान का प्रसार करना और कार्यक्रमों के बारे में जानकारी बढ़ाना; तथा
- निर्धारित प्रारूपों में राज्य सरकारों को आवधिक रिपोर्ट भेजना।

जिला ग्रामीण विकास अभिकरण की प्रबंधन समिति में अध्यक्ष (प्रायः जिलाधीश) के अलावा निम्नलिखित शामिल हैं :

i) जिले के सभी संसद सदस्य (MPs) और विधायक (MLAs)

ii) केन्द्रीय सहकारी बैंक का प्रमुख

iii) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक का अध्यक्ष

iv) जिला परिषद का अध्यक्ष

v) अग्रणी बैंक का एक अधिकारी

vi) जिला रोज़गार अधिकारी; तथा

vii) ग्रामीण महिलाओं का एक प्रतिनिधि मुख्यतः कोई लाभार्थी।

जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के अध्यक्ष को जिला ग्रामीण विकास अभिकरण की सहायता के लिए एक कार्यकारी समिति बनाने का अधिकार दिया गया है। समिति में जिला स्तर के अधिकारी इसके सदस्य होंगे। जिला ग्रामीण विकास अभिकरण की प्रबंधन समिति की बैठक तिमाही और कार्यकारी समिति की बैठक मासिक रूप से आयोजित करना आवश्यक है। जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के परियोजना अधिकारी की सहायता 2-3 सहायक परियोजना अधिकारी (Assistant Project Officers; APOs) करते हैं जो अपने विषय के विशेषज्ञ होते हैं। महिलाओं के लिए सहायक परियोजना अधिकारी एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) और ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल विकास कार्यक्रम (Development of Women and Children in Rural Areas Programme; DWCRA) के महिला सम्बन्धी घटकों को देखता है। एक सहायक परियोजना अधिकारी (पर्यवेक्षण) भी होता है।

ग्रामीण विकास मंत्रालय ने जिलाधीश की अध्यक्षता में एक जिला विकास समिति की स्थापना करने का भी सुझाव दिया था। इसकी बैठकों में विकास विभागों के जिला स्तर के प्रमुखों, खण्ड विकास अधिकारियों, बैंकों और ग़ैर-सरकारी संस्थाओं के प्रतिनिधियों द्वारा भाग लिया जाता है। इसका मुख्य कार्य सभी जिला स्तर के विभागों और अन्य अभिकरणों जैसे खादी और ग्रामीण उद्योग बोर्ड, जिला उद्योग केन्द्र, बैंक आदि के बीच समन्वय करना है। यह जिले में जारी विभिन्न कार्यक्रमों की कार्य शैली की समीक्षा भी करती है तथा कार्यक्रम के कार्यान्वयन एवं प्रशासन की दैनिक समस्याओं का समाधान भी करती है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952) के आरंभ से ही जिला स्तर पर विकेन्द्रीकरण के बारे में विचार किया जा रहा था। योजना आयोग के जिला योजना कार्यकारी समूह (1985) ने यह तथ्य दोहराया कि जिले की योजना पर विभिन्न क्षेत्रीय कार्यक्रमों के एकीकृत योजना गतिविधि के साथ जोड़कर समग्र संचालन के रूप में विचार करना चाहिए।

ग्रामीण विकास और गरीबी हटाओं कार्यक्रमों (Rural Development and Poverty Alleviation Programmes) (1985) के विद्यमान प्रशासनिक प्रबंध की समीक्षा समिति की रिपोर्ट में कहा गया है कि "नीति, योजना और कार्यक्रम कार्यान्वयन के लिए जिला प्राथमिक इकाई होनी चाहिए।" इसका यह

भी मत था कि विकास प्रक्रिया आरंभ करने के लिए एक उपयुक्त जिला योजना बनाना पूर्व आवश्यकता है जो निर्धनों की तरफ दिए जाने वाले उपयुक्त ध्यान को सुनिश्चित करेगी और राज्य स्तर पर विकास प्रशासन का प्रभारी अधिकारी होने के लिए मुख्य सचिव पद के मुख्य वरिष्ठ अधिकारी को विकास आयुक्त के रूप में नामित किया जाना चाहिए।

खण्ड स्तर पर प्रशासनिक संरचना

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अंतर्गत योजना और संपूर्ण ग्रामीण विकास की प्राथमिक इकाई के रूप में विकास खण्ड बनाए गए जिनमें कृषि और सम्बन्धित कार्य, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक कल्याण के साथ स्व-सहायता और जन भागीदारी पर काफी ज़ोर दिया गया। खण्ड प्रशासन में खण्ड स्तर के अधिकारी जैसे खण्ड विकास अधिकारी शामिल थे जिसकी सहायता कृषि, पशुपालन, सहकारिता, सामाजिक कल्याण तथा सिंचाई आदि का प्रतिनिधित्व करने वाले लगभग आठ विस्तार कार्मिकों द्वारा की जाती है। गाँव स्तर के कार्यकर्त्ताओं (Village Level Workers; VLWs) जिन्हें ग्राम सेवक और ग्राम सेविकाएँ भी कहा जाता है वे तथा अन्य सहायक कार्मिक दल भी सहायता करते हैं। कार्यक्रम को लोकक्रिय बनाने के लिए खण्ड सलाहकारी समितियाँ स्थापित करने का प्रावधान भी किया गया था। लेकिन कुछ समय बाद अनुभव किया गया कि खण्ड सलाहकार समितियाँ उपयुक्त काम नहीं करतीं क्योंकि वे विशुद्ध रूप से सलाहकार संस्थाएँ थीं, जिनका विकास कार्यों में कोई सीधा दायित्व नहीं था। भारत सरकार द्वारा सामुदायिक विकास परियोजनाओं और राष्ट्रीय विस्तार सेवा की समीक्षा करने के लिए 1957 में गठित बलवंत राय मेहता अध्ययन दल ने प्राथमिक इकाई अर्थात् खण्ड स्तर पर अधिकारों के विकेन्द्रीकरण का सुझाव दिया था। इसमें शीर्ष स्तर पर जिला स्तर और निम्न स्तर पर गाँव सहित सुव्यवस्थित रूप से सम्बद्ध तीन स्तरीय संरचना शामिल थी।

1960 के दशक के मध्य में नए कार्यक्रमों को आरंभ करने के बावजूद लघु किसान विकास अभिकरण (SFDAs) और उपेक्षित किसान व कृषि श्रमिक विकास अभिकरण (MFALs) जैसे कार्मिक संरचनात्मक तंत्र में खण्ड स्तर पर अधिक बदलाव नहीं किया गया। जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों के सभी कार्यक्रमों और परियोजनाओं का खण्ड विकास अधिकारी की अध्यक्षता में विकास खण्डों के माध्यम से कार्यान्वयन किया जा रहा है। IRDO के कार्यान्वयन में प्रत्यक्ष रूप से शामिल खण्ड विकास अधिकारी के अतिरिक्त अन्य खण्ड अधिकारी जैसे कृषि, पशुपालन, सामाजिक कल्याण, सिंचाई उद्योग और खादी एवं ग्रामीण औद्योगिक निगम (Khadi and Village Industries Corporation; KVIC) के खादी पर्यवेक्षक सहित अन्य विस्तार अधिकारी भी शामिल हैं। ऐसे राज्य जिनमें कृषि विस्तार की प्रशिक्षण एवं संपर्क (Training and Visit; T&V) प्रणाली को अपनाया गया है। यह कार्य सीधे कृषि विभाग के अधिकारियों द्वारा किया जाता है। अतः कृषि विस्तार अधिकारी और 70 से 80 प्रतिशत ग्राम स्तर पर कार्यकर्त्ताओं (Village Level Workers; VLWs) को खण्ड स्थापनाओं से दूर ले जाया गया है और जबकि उनके पास काफी कम कर्मचारी होते हैं। इसके परिणामस्वरूप खण्ड प्रशासन अत्यधिक क्षीण हो गया था।

आई आर डी पी सहित विकास कार्यक्रमों और परियोजनाओं की पाक्षिक समीक्षा खण्ड विकास अधिकारी की अध्यक्षता में ग्राम स्तर पर कार्यकर्त्ताओं और अन्य खण्ड कार्मिकों की बैठकों में की जाती है। खण्ड की सभी गतिविधियों की समीक्षा सदस्य सचिव के रूप में खण्ड विकास अधिकारी के साथ पंचायत समिति के प्रधान की अध्यक्षता में पंचायत समिति की तिमाही आम सभा की बैठकों में की जाती है। इस बैठक में पंचायत समिति के सभी सदस्य, क्षेत्र के सब-डिवीजिनल मजिस्ट्रेट (SDM), सम्बन्धित विकास विभागों के जिला स्तरीय अधिकारी, जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के प्रतिनिधि उप प्रभागीय कृषि अधिकारी, क्षेत्र का तहसीलदार, अन्य विकास विभागों व खण्ड के खण्ड स्तरीय अधिकारी (Block Level Officers) भाग लेते हैं। ऋण वितरण और समन्वय की समीक्षा के लिए खण्ड स्तरीय समन्वय समिति (Block Level Coordination Committee; BLCC) होती है जो महीने की निश्चित तारीख को

अपनी बैठक करती है। पंचायत समिति का प्रधान इसका अध्यक्ष होता है। खण्ड में सभी बैंकों के शाखा प्रबंधक तथा खण्ड विकास अधिकारी इसके सदस्य होते हैं। खण्ड के सभी विभाग अधिकारी तथा क्षेत्र का तहसीलदार भी इस समिति की बैठकों में भाग लेते हैं।

14.4 अधिकारों और कार्यों का हस्तांतरण – वास्तविक स्थिति

हस्तांतरित किए गए कार्यों का प्रकार एवं पंचायती राज संस्थाओं (PRIs) द्वारा निष्पादित किए जाने वाले कार्यों के स्तर से दुर्भाग्य से अस्पष्टता उत्पन्न होती है। वही कार्य पंचायती राज संस्थाओं के दो या तीन विभिन्न स्तरों पर किए जाते हैं। पंचायती राज संस्थाओं का स्तर और कार्य का उप तथ्य स्पष्ट नहीं है। विभिन्न स्तरों और सरकारी अभिकरणों के बीच कार्य परस्पर मिश्रित हो जाते हैं। हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश और त्रिपुरा को छोड़कर अन्य राज्यों ने स्पष्ट नियमों के आधार पर कार्यों और अधिकारों का हस्तांतरण नहीं किया है।

इससे सम्बन्धित अन्य विषय हैं: (क) विभिन्न स्तरों पर उपयुक्त कार्यों/दायित्वों के क्षेत्र; (ख) एक तरफ पंचायतों के विभिन्न स्तरों में तथा दूसरी तरफ पंचायतों और अन्य अभिकरणों के बीच समन्वय; (ग) पंचायतों और सम्बन्धित अभिकरणों का प्रेरक तालमेल; (घ) पंचायतों का दायित्व उच्च अधिकारियों के प्रति नहीं अपितु समुदाय की तरफ भी होना है। लेकिन दुर्भाग्य से इन्हें अन्य किसी राज्य अधिनियम में नहीं उठाया गया है (गैहा)।

दायित्व सौंपने के संदर्भ में अनुभव किया गया कि कोई चयन मापदंड का उपयोग नहीं किया जाता। ग्राम पंचायत स्तर पर कोई अधिक कार्य नहीं हैं। इस स्थिति में कार्यों के एक छोटे समूह की पहचान की जा सकती हैं और इसे आर्थिक विचार करने के आधार पर पंचायतों के विशेष स्तर को हस्तांतरित किया जा सकता है। परस्पर कार्यों का मिश्रण, कठोर और व्यापक प्रक्रियाओं और कमज़ोर पर्यवेक्षण तथा मूल्यांकन प्रणालियों ने पंचायतों में विभिन्न स्तरों तथा पंचायतों और सरकारी अभिकरणों के बीच समन्वय को बाधित कर दिया जिससे योजनाओं के कार्यान्वयन में विलम्ब होता है। इसके अतिरिक्त इनमें लोगों की औपचारिक भागीदारी तो थी तो भी चुनावों तथा कोटा लागू करने में काफी विलम्ब होता था। कुल मिलाकर अभी तक अनुभव कोई बहुत उत्साहजनक नहीं है (बोहरा, 2000)। यद्यपि 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 ने भारत में प्रभावशाली व दक्ष पंचायती राज संस्थाओं के लिए केवल सामान्य मार्गदर्शन प्रदान किया है अधिकांश राज्यों में अपने अधिनियमों को संशोधित किया और चुनाव कराए तो भी अधिकार हस्तांतरण बिल्कुल सुचारु नहीं है (बोहरा, तत्रैव)।

14.4.1 अधिकारों और कार्यों का हस्तांतरण – ग्राम सभा का संस्थापन

अनुच्छेद 243 (जी) गाँव को अधिनियम के उद्देश्य से गाँव होने के लिए सार्वजनिक अधिसूचना के द्वारा राज्यपाल द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाने के रूप में परिभाषित करता है जिसमें इस प्रकार विनिर्दिष्ट ग्रामीणों का समूह शामिल होता है। संविधान का अनुच्छेद 243 (बी) ग्राम सभा को "ग्राम स्तर पर शामिल पंचायत क्षेत्र से सम्बन्धित चुनाव सूची में पंजीकृत लोगों से निर्मित संस्था के रूप में परिभाषित करता है।" ग्राम सभा के अधिकारों के बारे में संविधान का अनुच्छेद 243 (ए) कहता है कि, "ग्राम सभा राज्य विधानमंडल द्वारा कानूनन प्रदत्त गाँव स्तर पर अधिकारों का उपयोग और कार्यों का निष्पादन करती है।" सारांशतः यह ऐसी धारा है जिसका ग्राम सभा को महत्त्वपूर्ण अधिकारों और कार्यों को हस्तांतरित न करना सुनिश्चित है। इसकी अपेक्षा इसने ग्राम सभाओं की भूमिका को पंचायतों के कार्यों की देखभाल करने, पर्यवेक्षण करने, योजनाओं को स्वीकार करने तथा लाभार्थियों की पहचान करने तक सीमित कर दिया है। मध्य प्रदेश, केरल जैसे कुछ ऐसे भी राज्य हैं जिन्होंने ग्राम सभा की संस्तुतियों को पंचायतों के लिए मानना अनिवार्य किया है। कई राज्य ग्राम सभा की पाँचवीं तारीख को बैठकें बुलाने की बात को अधिक महत्त्व नहीं देते (चन्द्र पारुल, 2001) वे वर्ष में दो बार मिलते हैं। केन्द्र

सरकार राज्यों पर वर्ष में चार बार बैठकें आयोजित करने के लिए दबाव बनाती है (पंचायती राज अपडेट, 1998)।

गुजरात, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, केरल, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश में 185 ग्राम पंचायतों के एक अध्ययन में ग्राम सभा के संदर्भ में निम्नलिखित तथ्य प्रकट हुए (पंचायती राज अपडेट, 1997):

- कई बार ग्राम सभा की बैठकें केवल औपचारिकता का मामला बन कर रह गई।
- अधिकतर बैठकों में न्यूनतम आवश्यक उपस्थिति कभी-कभार ही पूरी हुई।
- अध्ययन किए गए एक-तिहाई मामलों में ग्राम सभा की बैठकों के अभिलेख पूरे पाए गए जबकि बैठकें या तो हुई ही नहीं या न्यूनतम अनिवार्य उपस्थिति नहीं थी।
- ग्राम सभा का प्रभावहीन कार्य प्रणाली का महत्त्वपूर्ण कारण ग्राम सभा के सदस्यों और ग्राम पंचायत के नेताओं दोनों को अपनी-अपनी भूमिका के बारे में स्पष्ट जानकारी नहीं थी।
- ग्राम सभा की बैठक के बारे में पूर्व सूचना का अभाव उपस्थिति कम होने का महत्त्वपूर्ण कारण था।
- जब कभी सरपंच और पंचायत सदस्यों ने ग्राम सभा के सदस्यों से पहले ही परामर्श कर लिया था तो सदस्यों की पर्याप्त व सक्रिय भागीदारी रही;
- ग्राम सभा की भूमिका के बारे में भ्रम मुख्यतः सदस्यों की अनुभूति के कारण है कि यह किसी राजनीतिक दल का कार्यक्रम है या लाभार्थियों की पहचान करने का अवसर है।
- केरल और मध्य प्रदेश को छोड़कर अन्य किसी भी राज्य में पंचायत ग्राम सभा के परामर्श और सुझावों को मानने के लिए बाध्य नहीं है।
- अधिकतर सरपंचों को बैठकों का संचालन करना नहीं आता।

पंचायती राज पर केन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा गठित कार्य उप-समूह ने ग्राम सभा से सम्बन्धित निम्नलिखित सुझाव प्रदान किए हैं (पंचायती राज अपडेट, 1999)।

1) ग्राम सभा के अवलोकनानुसार मध्यवर्ती या जिला स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं के लिए विनिर्दिष्ट अधिकारियों की नियुक्ति करना।
2) जागरूकता निर्माण के लिए संपूर्ण राज्य में 2 सप्ताह तक ग्राम सभा अभियान बैठकों का आयोजन करना
3) ग्राम सभा की बैठकों की कार्य सूची में बहुमत सदस्यों की रूचि होनी चाहिए तथा उनके दैनिक जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित करने वाले बड़ी संख्या में विषयों को शामिल किया जाना चाहिए।
4) ग्राम सभाओं को संस्तुति करने वाली संस्था या बहस करने वाले मंच के रूप में नहीं समझना चाहिए।
5) यदि ग्राम सभाओं के निर्णय लागू करने में ग्राम पंचायतें सक्षम नहीं हैं तो इसके कारण ग्राम सभाओं को बताए जाने चाहिए।

मध्य प्रदेश पंचायत अधिनियम में हाल ही के संशोधन ने ग्राम सभा को अनेक कार्य हस्तांतरित किए हैं। केरल ने लोगों के योजना अभियान में ग्राम सभा को शामिल किया था। उड़ीसा और राजस्थान

की ग्राम सभा को ग्राम पंचायत की योजना और बजट अनुमोदित करने के अधिकार प्रदान किए गए हैं। चूँकि व्यावहारिक परिस्थितियाँ विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न है अतः ग्राम सभा को दिए जाने वाले विशिष्ट कार्यों और अधिकारों का संवैधानिक प्रावधान करना संभव नहीं है परन्तु संविधान में अपने उद्देश्य में स्पष्ट संकेत किया जाना चाहिए कि ग्राम पंचायत की कार्य प्रणाली में ग्राम सभा को एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करने का अधिकार हो (घोष, 2001)।

14.5 सारांश

14 अगस्त 1947 की मध्य रात्रि को अंग्रेजों से भारतीयों को अधिकार सौंपने असल में केन्द्र और राज्य स्तरों पर लोगों के निर्वाचित प्रतिनिधियों को प्रशासन की चाबी सौंपने के बाद लोकतंत्र का फल राज्य के निम्न स्तर को तत्काल प्राप्त नहीं हो सकता था। आशा थी कि इस स्वरूप से राज्य विधानमंडल अपने राज्य मुख्यालय से चलकर जिलों और खण्डों से होकर ग्राम पंचायतों के माध्यम से निम्न स्तर तक पहुँचेगा। इस तरीके से इस देश में ग्राम सभा से लोकसभा तक लाखों लोगों में सपूर्ण संपर्क बनेगा। भारत के लोग पंचायत से संसद तक संस्थाओं में अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से अपना शासन स्वयं करेंगे। इस प्रकार लोकतंत्र लोकसभा से ग्राम सभा तक पहुँचेगा। "इस प्रकार पंचायती राज ग्राम सभा से लोक सभा तक अंतः सम्बन्धित लोकतंत्र की नई संकल्पना प्रस्तुत करता है (डे)।

14.6 मुख्य अवधारणाएँ

सशक्तिकरण (Empowerment) : कुछ करने के लिए किसी व्यक्ति या संगठन को औपचारिक अधिकार प्रदान करना।

संघवाद (Federalism) : शासन की वह प्रणाली जिसमें राष्ट्रीय मुख्य शीर्ष सरकार उपराष्ट्रीय या राज्य सरकारों के साथ अधिकारों का बँटवारा करती है।

कार्यकारी शाखा (Executive Branch) : सरकार का एक भाग जिसका अलग अधिकारों के साथ कानून को लागू करने का दायित्व होता है। इस प्रकार राष्ट्रपति, राज्यपाल या मेयर और उनकी सम्बन्धित सहायक नौकरशाही अपने-अपने अधिकार/कार्यक्षेत्रों की कार्यकारी शाखाएँ होती हैं।

14.7 संदर्भ व अन्य लेख

रूद्रा मूर्ति, बी., *एक्सटेंशन इन प्लाण्ड सोशल चेंज,* पृष्ठ 204।

डे, एस. के., "कम्युनिटी डेवलपमेंट थ्रू पंचायती राज" पृष्ठ 4।

डार्लिंग, एम. एल., "एट फ्रीडम'स डोर, पृष्ठ 347।

हरिजन, 18 जनवरी, 1948।

प्रथम पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ 139।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ 160।

कोरी, जे.ए., *एलिमेंट्स ऑफ डेमोक्रेटिक गवर्नमेंट,* पृष्ठ 543।

लोकल सेल्फ गवर्नमेंट एक्टिविटिज़, उत्तर प्रदेश, 1955-56, पृष्ठ 82।

गैहा, राघव, "पार्टीसिपेशन ऑफ इम्पॉवरमेंट ऑफ दी रूरल पूअरः द केस ऑफ पंचायत इन इंडिया", सेंटर फॉर एडवांस्ड स्टडी ऑफ इंडिया, ऑकेजेनल पेपर संख्या 4।

बोहरा, ओ.पी., "डिसेंट्रलाइजेशन एण्ड डेवोल्यूशन ऑफ़ पॉवर्स एण्ड फंक्शन्स ऑफ पंचायत्स", *जर्नल ऑफ रूरल डेवलपमेंट,* खण्ड 19(2), नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ रूरल डेवलपमेंट, हैदराबाद, पृष्ठ 185-197, 2000।

कृष्णामूर्ति, बी., "अबाउट पंचायती राज़" *पट्रेयट,* जुलाई, 1993।

जैन, एल.सी., "फ्यूचर ऑफ पंचायत्स", *हिन्दुस्तान टाइम्स,* 4 अक्तूबर, 1991।

मिश्रा, एस. एन., कुमार, लोकेश, पाल, चैताली, "न्यू पंचायती राज इन एक्शन"।

पंचायती राज अपडेट, 53, मई, 1998 : 1।

दि हिन्दू, ऑनलाइन, नवम्बर, 2000।

पंचायती राज अपडेट, 8(7), 91, जुलाई, 2001 : 6।

सुन्दरम मीनाक्षी, 1997, "दी 73र्ड कंस्टीट्यूसनल एमेंडमेंट - ए केस फॉर फरदर एमेंडमेंट", *जर्नल ऑफ रूरल डेवलपमेंट,* 16(4), पृष्ठ 551।

शिवा सुब्रहमण्यम्, 2000, "रिफार्म्स इन पंचायती राज; मेंडिंग दी एमेंडमेंट्स" *कुरुक्षेत्र,* 49(2), पृष्ठ 8।

दि हिन्दू, ऑनलाइन, 6 नवम्बर, 2000।

सुन्दरम, 2000, "फ्रोम टोप–डाउन-प्लानिंग टू डिसेंट्रलाइज्ड रिजनल एंड लोकल डेवलपमेंट इन इंडिया - विजन इन रियलटी : चैलेजिंज एण्ड पर्सपेक्टिव्स", *इंडियन सोशल साईन्स रिव्यू,* 2(2), पृष्ठ 294।

पंचायती राज अपडेट, 45, सितम्बर 1997, पृष्ठ 6 – 7।

जैन, 1997, "डेवोल्यूशन ऑफ पॉवर, फंक्शंस एण्ड अथोरिटी टू पंचायत्स इन डिफ्रेंट स्टेट्स" (वर्किंग पेपर) नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ रूरल डेवलपमेंट, हैदराबाद, पृष्ठ 557।

पंचायती राज अपडेट, 70, 6(10), अक्तूबर, 1999, पृष्ठ 5।

घोष, बी. डी., (2001), "कंसलटेशन पेपर ऑन पंचायत्स बेस्ड ऑन ए रिव्यू ऑफ द वर्किंग ऑफ दी कंस्टीट्यूशनल प्रोविजन ऑन डिसेंट्रलाइजेशन, इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साईन्स, नई दिल्ली।

14.8 अभ्यास

1) ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं की संरचना की व्याख्या कीजिए।

2) राष्ट्रीय, राज्य, जिला, खण्ड और ग्राम स्तर पर पंचायती राज प्रणाली संरचना की चर्चा कीजिए।

इकाई 15 शहरी स्थानीय निकायों की संगठनात्मक संरचना

रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 शहरी स्थानीय शासन का ऐतिहासिक उद्भव

15.2.1 पूर्व स्वतंत्रता काल

15.2.2 उत्तर स्वतंत्रता काल

15.3 संगठनात्मक रचना

15.4 संविधान (74वाँ संशोधन) अधिनियम, 1992

15.4.1 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के बाद नगरपालिका वित्त

15.5 सारांश

15.6 मुख्य अवधारणाएँ

15.7 संदर्भ व अन्य लेख

15.8 अभ्यास

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- भारत में शहरी स्थानीय सरकारों के ऐतिहासिक उद्भव (Historical evolution) के बारे में समझ सकेंगे;
- शहरी स्थानीय सरकारों (Urban Local Government) की संगठनात्मक संरचना (Organisational structure) की रूपरेखा तैयार कर सकेंगे; और
- 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के बाद शहरी स्थानीय सरकारों की चर्चा करने योग्य हो जाएँगे।

15.1 प्रस्तावना

भारत में पिछले कुछ दशकों में शहरी स्थानीय प्रशासन ने नीति निर्माताओं (policy formulators), योजनाकारों, प्रशासकों, समाज विज्ञानियों और शिक्षाविदों का ध्यान आकर्षित किया है। यद्यपि देश में शहरी आबादी में वृद्धि की कमी देखी जा रही है, वृहत्तर शहरी क्षेत्रों में आबादी के घनत्व के कारण अव्यवस्था उत्पन्न हो गई है। शहरी केन्द्रों की अनियंत्रित, अनियोजित तथा अव्यवस्थित वृद्धि अमानवीय स्थितियों में निवास की सघनता, पर्यावरण में असंतुलन, प्रदूषित वायु, जल तथा ध्वनि, शहरी सेवाओं पर बहुत अधिक दबाव डाल रहे हैं। शहर दशक–दर–दशक निवास के अयोग्य होते जा रहे हैं। संस्थानिक विधियाँ स्थितियों से निपटने में या तो असफल हो गई हैं अथवा कमज़ोर एवं अकुशल हो गई हैं। लोग अधिक मुखर हैं और माँग रहे हैं परन्तु कम उत्तरदायी और अशिष्ट हैं। शहरीकरण की अप्रतिवर्ती प्रवृत्ति जारी रखने के लिए स्थायी हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

स्वतंत्रता के पहले पचास वर्षों ने शहरी प्रशासन के क्षेत्र में उतार–चढ़ाव का सामना किया है। देश के संविधान का ऐतिहासिक 74वें संशोधन अधिनियम इस अवधि में अधिनियमित एक मुख्य नीति निर्देश था। यह प्रयास शहरी स्थानीय सरकारों के जीवन तथा कार्य प्रणाली में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश में जनसंख्या का लगभग दसवाँ हिस्सा शहरी क्षेत्रों में आबाद था। इस प्रकार ग्रामीण प्रभुत्व संविधान में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होता था। शहरीकरण की धीमी परन्तु निरंतर वृद्धि ने पुरानी शहरी अवसंरचना पर बोझ डाल दिया। इसने नीति–निर्माताओं को शहरी स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए बार–बार विभिन्न आयोगों तथा समितियों का गठन करने को बाध्य किया है। सन् 1980 के दशक में शहरी मुद्दों के लिए विभिन्न स्तरों पर अत्यधिक चर्चाएँ हुई हैं। संविधान में, 74वें संशोधन अधिनियम के माध्यम से एक लम्बे परन्तु इच्छित विचार–विमर्श के परिणामस्वरूप शहरी प्रशासन को एक स्थान प्रदान किया गया। इस इकाई में हम शहरी स्थानीय निकायों के ऐतिहासिक उद्‌भव, इसकी संगठनात्मक संरचना पर विचार करेंगे तथा 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के बाद हुए महत्त्व पर प्रकाश डालेंगे।

15.2 शहरी स्थानीय शासन का ऐतिहासिक उद्‌भव

स्थानीय स्वःशासन की अवधारणा इस कल्पना पर आधारित है कि कुछ मूलभूत मानवीय आवश्यकताएँ होती हैं जिनका सीधा सम्बन्ध व्यक्तिगत जीवन या समूचे समाज से होता है। इस प्रकार की आवश्यकताएँ ऐसी सरकार द्वारा अच्छी तरह पूरी की जा सकती हैं जिसके पास व्यक्ति तथा स्थानीय समुदाय की सीधी और आसान पहुँच हो। ऐसे कुछ नागरिक कार्यों को जैसे कूड़ा इकट्‌ठा करना, सड़कों की सफाई, जल–निकासी, जल वितरण, अग्नि शमन सेवाओं तथा स्वास्थ्य सेवाओं को लोकतांत्रिक रूप से गठित स्थानीय निकायों को सौंपा जाता है। इस प्रकार नगरवासियों के लिए शहरी स्थानीय सरकारों का प्राथमिक महत्त्व है, क्योंकि यह उनके सबसे निकट सर्वाधिक सुलभ और सर्वाधिक अधीन है। नागरिक संस्थान नागरिकों की सुरक्षा और सुविधा के लिए न केवल मूलभूत नागरिक सुविधाओं को जुटाते हैं अपितु विभिन्न समाज कल्याण कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने के लिए स्थानीय समर्थन तथा जन सहयोग भी प्राप्त करते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के संविधान की स्थापना के साथ उदार लोकतंत्र तथा कल्याणकारी राज्य के प्रावधानों को प्रतिष्ठापित करते हुए, यह अपेक्षा है कि शहरी स्थानीय सरकारें देश के राजनीतिक और प्रशासनिक ढाँचे की बढ़ती भूमिका का निर्वाह करेंगी। साथ ही यह भी महसूस किया गया है कि शहरी सरकारों को आवश्यक रूप से निचले स्तर तक लोकतांत्रिक विकेन्द्रित शासन की प्रोन्नति के एक अंग के रूप में तथा शहरी लोगों के लिए न केवल कल्याणकारी सेवाएँ उपलब्ध कराने हेतु अपितु शहरी सरकार के कार्यों तथा योजना बनाने हेतु मान्यता मिलनी चाहिए। शहरी सरकारों में नगर–निगम, नगरपालिकाएँ, अधिसूचित क्षेत्र समितियाँ, टाउन क्षेत्र समितियाँ, छावनी बोर्ड तथा टाउनशिप सम्मिलित हैं। सन् 1991 की जनगणना के अनुसार शहरी क्षेत्र के रूप में जानने हेतु :

1) सभी सांविधिक नगर जैसेः निगम वाले सभी क्षेत्र, नगरपालिकाएँ, अधिसूचित क्षेत्र समितियाँ, टाउन क्षेत्र समितियाँ, छावनी बोर्ड हो।

2) अन्य सभी स्थान जो निम्नलिखित मानदण्ड रखते हैं :

   i) निम्नतम जनसंख्या 5,000 हो;

   ii) पुरुष कार्यकारी जनसंख्या का लगभग 75 प्रतिशत गैर–कृषि कार्यों में रत् हो;

   iii) जनसंख्या का घनत्व कम से कम 400 प्रति वर्ग किलोमीटर हो।

यहाँ यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि शब्द नगरनिगम, नगरपालिका, अधिसूचित क्षेत्र, टाउन क्षेत्र मात्र भूभागीय अवधारणाएँ हैं। यह परिषद ही है जो एक निकाय के रूप में निगमित स्थिति का उपभोग करती है तथा उस हैसियत से कार्य करती है।

प्राचीन भारत में स्थानीय स्व–शासन जैसी कोई अवधारणा नहीं थी जिसमें आधुनिक स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था प्रचलित हो। यद्यपि यह कहा जाता है कि स्थानीय शासन के मूल की प्राचीन भारत में बहुत गहरी जड़ें हैं। ऐतिहासिक अभिलेखों, उत्खनन तथा पुरातात्विक खोजों के आधार पर, यह विश्वास किया जाता है कि स्थानीय शासन का कुछ रूप बहुत पहले विद्यमान था। वेदों में तथा मनु, कौटिल्य तथा अन्यों के लेखों में तथा साथ ही मैगस्थनीज जैसे कुछ यात्रियों के अभिलेखों में पीछे बौद्ध काल तक में स्थानीय शासन के मूल को देखा जा सकता है (मुखर्जी, 1958)। स्थानीय स्व–शासन परवर्ती काल में हिन्दू शासन के दौरान भी नगर समितियों के रूप में जारी रहा, जिन्हें "गोष्ठी" तथा "महाजन समितियों" के रूप में जाना जाता था (शर्मा, 1965)।

प्राचीन समय में स्थानीय सरकार मुख्यतः सैन्य संगठन से सम्बन्धित थी तथा पर्यवेक्षण एवं अपराध की सजा देती थी। आजकल की स्थानीय सरकार का कार्य मुख्यतः जनसेवाओं की व्यवस्था से सम्बन्धित है (जैक्सन, 1945) (*लोकल गवर्नमेंट इन इंग्लैण्ड एंड वेल्स,* हंट, एलिसबरी)। इस प्रकार स्थानीय सरकार विधायी क्षेत्र में नहीं अपितु प्रशासनिक क्षेत्र में स्थानीय स्व–शासन है। स्थानीय प्राधिकरण कानून पारित नहीं करते; वे उच्च प्राधिकरण द्वारा पारित कानूनों को लागू करते हैं। इस प्रकार अति प्राचीन काल से भारत में स्थानीय स्वशासन का विचार पूरे विश्व में कहीं से भी अधिक बड़े रूप में विद्यमान था। इन विचारों और उनका प्रारंभ प्रागैतिहासिक प्राणियों के सामुदायिक जीवन में ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ थीं। ये समुदाय सामाजिक संगठन के प्रारंभिक रूप थे। सहयोग और आपसी सद्भावना का विचार इन समुदायों को जोड़ने वाली शक्तियाँ थीं (वैंकटरंगैया, 1960)।

यद्यपि, स्थानीय स्वशासन भारत में प्राचीन समय में विद्यमान था, अपने वर्तमान रूप और शैली की कार्य प्रणाली के लिए यह भारत में ब्रिटिश राज का ऋणी है। न तो ग्राम स्वशासन की व्यवस्था जो पहले समय में प्रचलित थी, न ही नगर शासन प्रणाली, जो उस समय विद्यमान थी, निर्वाचकों के प्रति उत्तरदायी आवधिक रूप से निर्वाचित प्रतिनिधि के प्रकार की कल्पना कर सकी जो पश्चिम में विकसित हुआ और भारत में ब्रिटिश सरकार द्वारा योजित हुआ। प्राचीन ग्रामीण समुदाय वंशानुगत विशेषाधिकार या जाति के संकीर्ण आधार पर गठित हुए, जो अपने कर्त्तव्य के कार्यक्षेत्र में बहुत सीमित थे – राजस्व संग्रहण तथा जीवन और सम्पत्ति की सुरक्षा उनके मुख्य कार्य थे तथा न तो राजनीतिक शिक्षा का सचेतन साधन थे और न ही प्रशासनिक व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण भाग थे (भारत सरकार)।

15.2.1 पूर्व स्वतंत्रता काल

ब्रिटिश राज के दौरान स्थानीय स्वशासन के इतिहास को निम्नलिखित चरणों में विभाजित कर सकते हैं :

1) 1882 तक
2) 1882 से 1919 तक
3) 1919 से 1935 तक
4) 1935 से 1947 तक

प्रथम चरण (1882 तक)

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है भारत में आधुनिक स्थानीय स्वशासन ब्रिटिश शासन की देन है।

स्थानीय स्वशासन संस्थान जैसे कि वे वर्तमान रूप में विद्यमान हैं, निरंतर वृद्धि की प्रक्रिया को प्रदर्शित नहीं करते अपितु सुविधा का परिणाम हैं, जिसे निश्चय ही ब्रिटिश सरकार ने प्रशासन के हित में खोजा था। मद्रास (चैन्नई) की पहली परिषद, एक मेयर, एल्डरमैन तथा स्थानीय लोगों से गठित हुई थी। स्थानीय निकाय नगर के रखरखाव तथा विकास हेतु कर संग्रहण के लिए प्राधिकृत था। सन् 1926 में, मद्रास नगर परिषद के स्थान पर मेयर के कोर्ट का गठन हुआ जो एक प्रकार से न्यायिक संगठन था। सन् 1793 में, चार्टर अधिनियम पारित हुआ तथा नगर प्रशासन का विस्तार बम्बई (मुम्बई) कलकत्ता (कोलकता) तथा मद्रास (चैन्नई) के तीन शहरों में हुआ (**टिंकेर, 1954**)। इसने भारत के गवर्नर–जनरल को इन शहरों में शांति के न्यायाधीश नियुक्त करने की शक्तियाँ प्रदान कीं। बंगाल में 1842 में जिलों में नगर प्रशासन की स्थापना हुई। सन् 1870 में लार्ड मेयो का प्रस्ताव लागू हुआ। इस प्रस्ताव में केन्द्र से राज्यों को विकेन्द्रीकरण पर ज़ोर दिया गया। यह कहा गया कि भारतीयों को प्रशासन से जोड़ना चाहिए, तथा इस उद्देश्य के लिए नगर शासन सर्वोत्तम है (**खैटून, 1980**)।

द्वितीय चरण (1882–1919)

लॉर्ड मेयो द्वारा आरंभ की गई नीति के स्थानीय स्वशासन पर प्रभाव की 1882 में समीक्षा की गई। नगरपालिकाओं की संख्या तथा उपयोगिता दोनों में, 1870 से महत्त्वपूर्ण प्रगति देखी गई। परन्तु परिवर्ती स्थानीय परिस्थितियों में सही औचित्य की अपेक्षा देश के विभिन्न भागों में प्रगति अधिक असमान दिखाई दी। इस प्रकार 1882 तक, स्थानीय स्वशासन भारतीयों की भागीदारी के बिना कार्य कर रहा था तथा इस प्रकार, यह न तो "स्थानीय" और न ही "स्वशासन" था। लॉर्ड रिपन के प्रस्ताव (1882) में स्थानीय स्वशासन के लिए पूर्ण अवसर स्थापित किया गया। इसी दृष्टिकोण के अंतर्गत इस तथ्य पर ज़ोर दिया गया कि राजनीतिक तथा लोकप्रिय शिक्षा के एक साधान के रूप में, स्थानीय स्वशासन अंतिम निष्कर्ष के रूप में अपेक्षित है (**खान, 1980**)। लॉर्ड रिपन का प्रस्ताव भारत में स्थानीय स्वशासन के मैगना कार्टा (Magna Carta) के रूप में जाना जाता है। रिपन के प्रस्ताव के अनुसार स्थानीय स्वशासन "राजनीतिक तथा लोकप्रिय शिक्षा का एक साधन" था (**माहेश्वरी, 1971**)। लॉर्ड रिपन ने नगरपालिकाओं के संविधान, शक्तियों तथा कार्यों में एक नया युग प्रारंभ किया जिसमें बहुत बड़े परिवर्तन किए गए। नगरपालिकाओं के लिए चुनाव की व्यवस्था सीमित मताधिकार के साथ प्रारंभ की गई। यद्यपि प्रस्ताव के अनुसार अध्यक्षता ग़ैर–अधिकारियों के लिए खुली थी, प्रस्ताव का यह भाग लागू नहीं किया गया और एक अधिकारी पदेन अध्यक्ष बना रहा।

उसके उत्तराधिकारी लॉर्ड कर्जन के प्रभाव ने राजनीतिक शिक्षा को और कम करने तथा जिला अधिकारियों और विभागीय विशेषज्ञों की प्रभावी स्थिति को और सुदृढ़ करने का प्रयास किया। लॉर्ड कर्जन कुशलता, केन्द्रीकरण तथा अधिकारीकरण के पक्ष में था। सन् 1907–1909 में स्थानीय स्वशासन के विषय में, रॉयल कमीशन द्वारा विकेन्द्रीकरण को प्रशासनिक अंतरण के एक पक्ष के रूप में विचार किया गया। आयोग ने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से लिखा है कि "अभी तक स्थानीय स्वशासन असफल रहा है"। आयोग ने यह टिप्पणी की कि स्थानीय निकायों में ग़ैर–अधिकारियों का न केवल बहुमत और अध्यक्ष होना चाहिए अपितु सामान्यतः निर्वाचित सदस्य भी होने चाहिए। आयोग की सिफारिशें राष्ट्रीय राजनीतिक इच्छाओं के बजाय प्रशासनिक सुधार के अर्थों में रूढ़िवादी थीं। लॉर्ड रिपन के सिद्धान्त, सन् 1918 तक स्थानीय स्वशासन को विनियंत्रित करने के लिए जारी रहे। विकेन्द्रीकरण आयोग की सिफारिशें कुछ अज्ञात कारणों से लागू नहीं की गई तथा उस समय लागू की गईं जब 1919 के मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों ने प्रांतीय विधानमंडलों में स्वायत्तता का विधिकरण किया। स्थानीय स्वशासन का प्रशासन जिला अधिकारियों के हाथों से लेकर ऐसे विभाग के अंतर्गत कर दिया गया जिसका नियंत्रण लोकप्रिय मंत्री के पास था।

तृतीय चरण (1919 – 1935)

भारत में स्थानीय स्वशासन के इतिहास में तीसरे चरण का प्रवेश मोंटफोर्ड सुधारों के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में हुआ। भारत सरकार अधिनियम, 1919 सन् 1920 से अस्तित्व में आया। इस अधिनियम के द्वारा द्वितंत्रीय अथवा द्वैध शासन प्रणाली को लागू करके प्रांतों में उत्तरदायी सरकारों की स्थापना की गई। ग्रामीण स्थानीय स्वशासन समिति की रिपोर्ट के अनुसार, "इस चरण के दौरान इसमें कुछ और परिवर्तन हुआ जैसे : नीति को प्रभावी करने के लिए सन् 1918 के प्रस्ताव में भारत के स्थानीय स्वशासन के प्रश्न जिसमें यह सुझाव दिया गया कि स्थानीय निकायों को जहाँ तक हो सके प्रतिनिधि होना चाहिए। इस अवधि में प्रत्येक प्रांत में स्थानीय स्वशासन पर एक बड़ी संख्या में संशोधित विधान पारित किए गए। सन् 1930 में, साइमन कमीशन (Simon Commission) ने भारत में स्थानीय स्वशासन पर एक गहन अध्ययन किया। आयोग इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि, "स्थानीय स्वशासन की कुशलता नियंत्रण या दबाव पर निर्भर करती है जो प्रांतीय सरकार अपनाती है। यह काल ग्रामीण क्षेत्रों जैसे गाँव की छोटी इकाइयों को स्थानीय स्वशासन की अंतिम स्थापना के लिए उल्लेखनीय है। ग्रामीण–शहरी समिति (Rural-Urban Committee) की रिपोर्ट के अनुसार, "इस उद्देश्य के लिए केन्द्रीय नियंत्रण ने निषेधात्मक निर्देश जारी किए थे ताकि कुछ अधिनियमों तथा अतिरेक मामलों में स्थानीय निकायों को समाप्त करने से रोका जा सके (जैक्सन, 1945)।

चतुर्थ चरण (1935–1947)

भारत में स्थानीय स्वशासन के उद्‌भव में भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अंतर्गत प्रान्तीय स्वायत्तता का उद्‌घाटन बहुत महत्त्वपूर्ण था, भारत सरकार अधिनियम, 1935 पारित करना तथा 1937 में प्रान्तीय स्वायत्तता की स्थापना ने लोकप्रियता के आधार पर स्थानीय स्वशासन के विकास को प्रोत्साहित किया। भारत सरकार अधिनियम, 1935 सन् 1936 में अस्तित्व में आया जिसने सरकार की द्वैध व्यवस्था समाप्त कर दी तथा प्रान्तीय स्वायत्तता की व्यवस्था लागू कर दी। स्थानीय स्वशासन के कार्यों में वृद्धि की गई; उनके वित्तीय अधिकारों में वास्तव में कटौती की गई। जब 1946 में लोकप्रिय निर्वाचित मंत्रालय सत्ता में आए, स्थानीय स्वशासन की समस्याओं का फिर से अध्ययन किया गया तथा संरचना तथा स्थानीय निकायों की कार्य प्रणाली को सुधारने के लिए विभिन्न समितियों का गठन किया गया। परन्तु इन समितियों की अनुशंसाएँ लागू नहीं की जा सकीं क्योंकि लोकप्रिय मंत्रालयों ने त्यागपत्र दे दिया था। भारत में स्थानीय स्वशासन में द्वितीय विश्व युद्ध के कारण इसकी वृद्धि और विकास में अवरोध आया।

15.2.2 उत्तर स्वतंत्रता काल

प्रथम चरण (1947–1985)

स्वतंत्रता के आगमन ने संविधान के भाग IV में उल्लेखित राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों में निहित सामाजिक–आर्थिक सुधारों ने एक नया अध्याय खोल दिया, जिसके परिणामस्वरूप लोक प्रशासन, वयस्क मताधिकार तथा सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समानता और अवसरों को प्राप्त करने के लिए कल्याणकारी राज्य के उद्देश्य की स्वीकार्यता मिली। ब्रिटिश शासन की समाप्ति के साथ ही केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय सभी स्तरों पर स्थानीय स्वशासन था। लोकतांत्रिक स्थापना के साथ ही सरकार का मूलभूत ज़ोर कानून एवं व्यवस्था के स्थान पर समुदाय के कल्याण पर था। स्वतंत्रता के पश्चात् देश में पूर्ण लोकतंत्र के अंतर्गत स्थानीय स्वशासन संस्थानों ने उल्लेखनीय स्तर और महत्त्व प्राप्त किया। उत्तर स्वतंत्रता काल में स्थानीय सरकारों के क्षेत्र में विकास देखा। स्थानीय निकायों की वित्तीय शक्तियों को बढ़ाने तथा कार्यों के विस्तार हेतु संविधान को लोकतांत्रिक स्वरूप देने के लिए सभी राज्यों में विधेयकों में संशोधन किए गए। सन् 1950 में संविधान के अस्तित्व में आने

के साथ ही स्थानीय सरकार ने नए चरण में प्रवेश किया। संविधान ने कार्यों की राज्य सूची (संख्या 5) स्थानीय सरकार को आबंटित की। स्वतंत्रता के पश्चात् कई राज्यों द्वारा स्थानीय स्वशासन को नए रूप में लाने के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण विधेयक पारित किए गए। वयस्क मताधिकार तथा साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की समाप्ति के साथ स्थानीय स्वशासन के संविधान को लोकतांत्रिक बनाया गया।

देश में शहरी स्थानीय स्वशासन जो अपना मूल लॉर्ड रिपन के 1882 के प्रस्तावों में देखता है, जहाँ पहली बार स्थानीय निकायों की एक संगठित व्यवस्था गठित हुई। शहरी मूलभूत संरचना उपलब्ध कराने के साथ, उन्हें आर्थिक विकास के इंजन तथा आर्थिक गतिविधि के तंत्र के रूप में कार्य करने की आवश्यकता होगी। उन्हें वस्तुतः निचले स्तर पर लोकतांत्रिक जीवन पद्धति की सुदृढ़ परम्परा को बढ़ाने की आवश्यकता होगी ताकि सामाजिक विकास हो सके और नीतिगत योजना तथा प्रशासन के आर्थिक विकास की वृद्धि को विस्तार दिया जा सके। शहरी स्थानीय सरकारों में बहुआयामी गिरावट ने व्यवस्था में सुधार के महत्त्व तथा आवश्यकता को प्रतिबिम्बित किया है। परिणामस्वरूप उत्तर स्वतंत्रता काल ने शहरी शासन के स्तर पर सुधार के लिए विभिन्न प्रभावी प्रयासों को देखा है।

द्वितीय चरण (1985–1992)

इस चरण में शहरी क्षेत्रों की समस्याओं तथा साथ ही नगरपालिका निकायों की संरचना तथा गठन, उनके कार्यों तथा कर्त्तव्यों तथा उनके संसाधन विभिन्न स्तरों पर चर्चा तथा वाद–विवाद के विषय थे। इसके परिणामस्वरूप तथा बढ़ती शहरी जनसंख्या के कारण पनपी जटिलताओं के कारण, पहली बार 1985 में शहरीकरण पर राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की गई। आयोग ने देश में शहरी स्थानीय संस्थाओं को सुदृढ़ करने के लिए आवश्यक उपायों के बारे में विस्तृत संस्तुतियाँ दीं। भारत में स्थानीय स्वशासन को स्वतंत्र स्थिति प्रदान करने की आवश्यकता पर भी विचार किया गया। आयोग की सिफारिशों के आधार पर तत्कालीन प्रधानमंत्री ने कई नगरपालिका सम्मेलन आयोजित तथा संबोधित किए जिसमें अधिकारियों तथा गैर–अधिकारियों को विषय पर गहन विचार–विमर्श के लिए निमंत्रित किया।

परिणामस्वरूप, तीन विषय उभरे। वे हैं: *प्रशासन को जनता के निकट कैसे लाया जाए? प्रशासन में जनता की भागीदारी किस प्रकार की जाए? तथा प्रशासन को जनता के प्रति किस प्रकार उत्तरदायी बनाया जाए?* ये विषय स्वतंत्र भारत में पहली बार भारतीय जन प्रशासन का आलंब बने। शहरी स्थानीय निकायों के बढ़ते महत्त्व को ध्यान में रखते हुए संघ सरकार ने 1989 में संविधान (64वाँ) संशोधन प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जो लोकसभा भंग होने के कारण पारित नहीं हो सका और व्ययगत हो गया। अन्य प्रस्ताव (74वाँ) जनता पार्टी सरकार द्वारा पुनः प्रस्तुत किया गया और उसी गति को प्राप्त हुआ। पुनः अन्य प्रस्ताव (73वाँ) 1991 में पुनः प्रस्तुत किया गया तथा 1992 में पारित किया गया। इसकी अधिकांश राज्यों ने पुष्टि की तथा राष्ट्रपति की स्वीकृति के पश्चात् 74वें संविंधान संशोधन अधिनियम, 1992 के रूप में 24 अप्रैल 1993 में अस्तित्व में आया।

तृतीय चरण (1992 – जारी)

74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम देश में शहरी स्थानीय सरक़ार के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। अधिनियम शहरी स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को संवैधानिक महत्त्व प्रदान करता है। इसमें दो प्रकार के प्रावधान हैं – आवश्यक और विवेकाधीन। आवश्यक प्रावधान वे हैं जो समग्र देश द्वारा अपनाए जाने हैं। इस प्रकार के प्रावधान हैं एकरूप संरचना, निश्चित अवधि स्थायित्व, समाज के विभिन्न वर्गों के लिए सीट का आरक्षण, वार्ड समितियों का गठन, जिला योजना तथा महानगर योजना समितियाँ,

वित्त आयोग तथा निर्वाचन आयोग। स्थानीय सरकार राज्य सरकार का विषय होने के कारण, विवेकाधिकारी प्रावधान राज्यों पर छोड़ दिए गए ताकि वे अपनी आवश्यकताओं तथा स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अधिनियमन कर सकें।

यह अधिनियम लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को सुविधाजनक बनाता है, तथा शहरी स्थानीय सरकारी इकाइयों को स्थायित्व प्रदान करता है तथा इसका उद्देश्य है कि प्रशासन जनता के अधिक निकट आए। समाज के कमज़ोर तथा अन्य छेद्य वर्गों का प्रतिनिधित्व, अपने मामले स्वयं निपटाकर प्रशासन में भागीदारी आश्वस्त करते हैं। शहरी शासन का स्थायित्व, अवधि, जनता के प्रति प्रशासन के उत्तरदायित्व को निश्चित करते हैं। प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण बड़े कस्बों में वार्ड समितियाँ स्थापित करके लागू किया जाता है। प्रत्येक पाँच वर्षों में वित्त आयोग का गठन न केवल इन निकायों के वित्तों का ध्यान रखता है अपितु देश में इस निचले स्तर पर शासन की स्वायत्तता के मार्ग को प्रशस्त करता है। यहाँ यह दिलचस्प है कि यह पहली बार है कि जब योजना निकाय को, प्रत्येक जिलों में जिला योजना समिति का गठन करके संवैधानिक स्थिति प्रदान की गई है। इस नई व्यवस्था का विकेन्द्रीय योजना पर दूरगामी प्रभाव पड़ेगा तथा योजना निरूपण के लिए उत्तरदायित्व वहन करने हेतु संस्थान निर्माण प्रयासों को निश्चित रूप से प्रोत्साहन देगा। जो सूक्ष्म स्तर की योजना के लिए महत्त्वपूर्ण पूर्वापेक्षा है (सिंह, 1998)।

15.3 संगठनात्मक रचना

भारत में पहले नगरपालिका शासन की स्थापना ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना के केवल 88 वर्ष बाद सन् 1868 में हुई स्थान था मद्रास। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि भारत में शहरी/नगरपालिका शासन एक बड़ी सफलता रही है। जब यह याद किया जाता है तो और आश्चर्यजनक लगता है कि दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, बाल गंगाधर तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, सी.आर. दास, सुभाष चन्द्र बोस तथा जवाहरलाल नेहरू जैसे विशिष्ट नेताओं ने किसी न किसी समय पर नगरपालिका सरकार में सेवाएँ दी हैं, तथा दूसरे ग्रामीण क्षेत्र के साथ इस स्तर का शासन भारत सरकार अधिनियम, 1919 के अंतर्गत द्वैध शासन के अंतर्गत भारतीयों के हाथ में स्थानांतरित किया गया। भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अंतर्गत प्रान्तीय स्वायत्तता के उद्‌घाटन ने भारत में नगरपालिका शासन को और प्रोत्साहित किया। अधिनियम ने द्वैध व्यवस्था समाप्त दी तथा प्रान्तों में लोकप्रिय सरकारों की स्थापना की।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय राजनीति के संघीय ढाँचे में, गृह निर्माण और शहरी विकास से सम्बन्धित विषयों को संविधान द्वारा राज्य सरकारों को सौंपा गया। 74वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा इस तरह के कई कार्यों को शहरी स्थानीय निकायों को सौंपा गया। भारत सरकार के संवैधानिक और कानूनी प्राधिकार केवल दिल्ली और अन्य संघ शासित क्षेत्रों या वे विषय जो राज्य विधानसभा द्वारा संघ संसद को विधायन को प्राधिकृत करते हैं तक सीमित हैं।

नीति निर्धारण, प्रायोजन तथा समर्थन कार्यक्रम, विभिन्न केन्द्रीय मंत्रालयों, राज्य सरकारों तथा अन्य नोडल प्राधिकरणों की गतिविधियों के बीच समन्वय तथा देश में शहरी विकास और गृह निर्माण के विषयों से सम्बन्धित कार्यक्रमों को मॉनिटर करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर शहरी विकास मंत्रालय भारत सरकार का शीर्ष प्राधिकरण है। शहरी स्थानीय निकायों के संदर्भ में निम्नलिखित विषय शहरी विकास मंत्रालय को आबंटित किए गए हैं :

- नगरनिगमों (दिल्ली नगरनिगम को छोड़कर), नगरपालिकाएँ (नई दिल्ली नगरपालिका को छोड़कर) तथा पंचायती राज संस्थाओं को छोड़कर स्थानीय स्वशासन प्रशासन का गठन एवं शक्तियाँ।

- शहरी क्षेत्रों से सम्बन्धित जल संभरण (जल संसाधन मंत्रालय को सौंपे गए जल योजना और समन्वय के समग्र राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में), सीवेज, ड्रैनेज तथा सैनिटेशन तथा आबंटित जल संसाधनों से संपर्क। अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा इस क्षेत्र में तकनीकी सहायता।
- स्थानीय स्वशासन की केन्द्रीय परिषद
- शहरी अवसंरचना से सम्बन्धित आवास एवं शहरी विकास के मुद्दे
- राज्यों में शहरी स्थानीय स्वशासनों से सम्बन्धित सूचनाओं का संकलन तथा समाकलन
- शहरी सामुदायिक विकास
- सुधार ट्रस्ट
- नगरपालिका शासन के कार्मिकों का प्रशिक्षण
- अखिल भारतीय महापौर सभा
- संघ क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन से सम्बन्धित विषयों पर गृह मंत्रालय को सलाह देना।

शहरी क्षेत्र विभिन्न कस्बों तथा शहरों के चरित्र, आकार तथा महत्त्व के संदर्भ में विभिन्न प्रकार के नगरपालिका निकायों में निहित होता है। राजनीतिक तथा सामाजिक–आर्थिक–व्यवस्थाओं के बीच संवाद के अतिरिक्त नगरपालिका संस्थाओं की कार्य प्रणाली अधिकतर सामुदायिक रहन–सहन के तरीके तथा दार्शनिक निरूपण से भी प्रभावित होती है। नगरनिगम, नगरपालिकाएँ, अधिसूचित क्षेत्र समितियाँ तथा छावनी बोर्ड सामान्य प्रकार के नगरपालिंका निकाय हैं तथा जहाँ पहले चार प्रकार राज्य नगरपालिका निकायों के अंतर्गत सृजित किए गए हैं, छावनी बोर्डों का मूल केन्द्रीय अधिनियम है जो छावनी अधिनियम, 1924 कहलाता है।

स्थानीय स्वशासन का अर्थ है स्थानीय मामलों जैसे जल संभरण, ड्रैनेज, प्राथमिक शिक्षा, सड़कों के रखरखाव का प्रबंधन करना। इसका लक्ष्य है प्रत्येक नागरिक के कल्याण में वृद्धि। स्थानीय स्वशासन एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अंतर्गत स्थानीय लोग जन स्थानीय मामलों में कुछ उत्तरदायित्व प्राप्त करते हैं तथा अपने व्ययों को पूरा करने के लिए वित्त की व्यवस्था करते हैं (झा, 1953)। शहरी स्वशासन एक विशिष्ट शासन की इकाई के रूप में प्रादुर्भाव ऐतिहासिक, वैचारिक तथा प्रशासनिक आदि कारकों की अभिक्रिया का परिणाम है। ऐतिहासिक रूप से स्थानीय स्वशासन ने राष्ट्रीय सरकार का आरंभ किया है। प्रशासनिक रूप से यह महत्त्वपूर्ण है कि नागरिक सेवाओं की किसी समुदाय को नियोजित कार्यक्रमों के लिए तथा उनके निवास क्षेत्र के अर्थ में एकीकृत रूप में आवश्यकता होगी। यह जनता को सेवाओं के विस्तृत आयाम उपलब्ध कराता है तथा विभिन्न प्रकारों तथा मात्रा के कार्यों को संपन्न करता है। स्थानीय स्वशासन राज्य सरकार तथा स्वयं के बीच द्विमार्गीय संवाद को आश्वस्त करता है। राज्य सरकार की इच्छाएँ और अपेक्षाएँ तथा राज्य और केन्द्रीय सरकार के योजना कार्यक्रम विरोधी दिशा में चलते हैं।

15.4 संविधान (74वाँ संशोधन) अधिनियम, 1992

शहरी नगरपालिका शासन का लम्बा भारतीय इतिहास कुछ संरचनात्मक कमजोरियों को दर्शाता है जिसका कुप्रभाव इसकी उपलब्धियों पर पड़ा। नगरपालिका निकायों को सीमित शक्तियाँ सौंपी गईं। उनकी स्वायत्तता प्रतिबंधित थी। कम वित्तीय संसाधनों के आबंटन ने उन्हें पूरी तरह राज्य सरकार पर निर्भर कर दिया। नगरपालिका द्वारा उपलब्ध कराई गई सेवाओं की कमियों ने उनकी नागरिक

उत्तरदायित्वों को कुशलता से संपन्न करने की योग्यता पर जनता के दिमाग में संदेह उत्पन्न कर दिया।

राज्य सरकारें कुव्यवस्था के आधार पर नगरपालिकाओं को स्थगित करने जैसे कठोर कदम उठाने को उत्सुक रहती हैं। तथा शीघ्र चुनाव नहीं करवाती हैं। राजनीतिक स्वार्थ प्रायः निर्णयों को प्रभावित करते हैं।

74वें संविधान संशोधन अधिनियम 1992 ने स्थानीय स्वशासन के पुराने ढाँचे से आमूल रूप से विदा कर दिया :

- नगरपालिकाओं के गठन को अनिवार्य बनाता है।
- केन्द्र और राज्यों के नीचे निर्वाचित प्रतिनिधियों के तीसरे स्तर को मान्यता प्रदान करता है।
- नगरपालिका के लिए प्रत्यक्ष निर्वाचन को आवश्यक बनाता है।
- अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं के लिए भी एक–तिहाई सीट आरक्षित करता है।
- नगरपालिकाओं के लिए पाँच वर्ष की अवधि निर्धारित करता है।
- नगरपालिकाओं को भंग करने की राज्य सरकार की शक्तियों को कठोरता से प्रतिबंधित करता है।
- राज्य वित्त आयोग को नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने तथा नगरपालिकाओं पर करारोपण शक्तियाँ, राजस्व हिस्सेदारी तथा सहायता अनुदान के सम्बन्ध में राज्यपाल को सिफारिशें करने का आदेश देता है।
- राज्य चुनाव आयोग को नगरपालिकाओं के चुनाव करने का आदेश देता है।
- जिला योजना समिति/महानगर समिति की स्थापना को अनिवार्य बनाता है।

74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम इस प्रकार यह आश्वस्त करता है कि शहरी स्थानीय सरकारें राज्य सरकारों की दया पर आश्रित नहीं हैं। भारत सरकार ने केवल 1989 में ही शहरी/नगरपालिका शासन के सुधार में रूचि दिखानी प्रारंभ की है। सन् 1989 से राजीव गांधी की सरकार के निचले स्तर पर शासन के पुनर्शक्तिकरण का चिंतन का विषय बना। पी.वी. नरसिंहराव के नेतृत्व वाली सरकार सत्ता में आई, नगरपालिका से सम्बन्धित संविधान (73वें संशोधन) विधेयक, 1991 का प्रारूप बनाया गया तथा सितम्बर 1991 में लोक सभा में पुनः स्थापित किया। लोकसभा तथा राज्य सभा ने दिसम्बर 1992 में यह प्रस्ताव पारित कर दिया। आधे से अधिक राज्य विधानसभाओं द्वारा इसकी पुष्टि करने के पश्चात् राष्ट्रपति ने 23 अप्रैल 1993 को इसका अनुमोदन कर दिया जो 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 जाना जाता है। यह संशोधन अप्रैल, 1993 से प्रभावी हुआ जिसको शहरी/नगरपालिका शासन से सम्बन्धित संविधान के भाग IX A में जोड़ा गया (माहेश्वरी, 1999)।

नगरपालिका परिषद तथा नगरनिगम क्रमशः छोटे शहरी क्षेत्रों तथा बड़े शहरी क्षेत्रों में गठित किए जाते हैं। जनसंख्यात्मक तथा अन्य परिस्थितियाँ जो विशेष प्रकार की नगरपालिका के गठन के लिए आधार निर्धारित करती है, राज्यों–राज्यों में अलग–अलग हैं। राज्यपाल शहरी निकायों के विभिन्न प्रकारों के लिए क्षेत्र निर्धारित करते हैं जैसे, क्षेत्र की जनसंख्या, जनसंख्या का घनत्व, स्थानीय निकाय द्वारा उगाहा गया राजस्व, ग़ैर–कृषि गतिविधियों में रोज़गार की प्रतिशतता तथा आर्थिक रूप से महत्त्वपूर्ण तथा अन्य तत्व। नगरपालिका की सीटें प्रत्यक्ष निर्वाचन से भरी जाएँगी केवल निम्नलिखित को

छोड़कर। निर्वाचन के उद्देश्य के लिए, नगरपालिका के निर्वाचन क्षेत्र को वार्डों में बाँटा जाएगा। नगरपालिका में प्रत्येक वार्ड में एक निर्वाचित प्रतिनिधि होगा।

लोक सभा सदस्य तथा विधानसभा सदस्य प्रतिनिधित्व कर रहे निर्वाचन क्षेत्र के अंतर्गत पूर्णतः अथवा अंशतः आने वाले सम्बन्धित नगरपालिका क्षेत्र की नगरपालिकाओं में मतदान के अधिकारी होंगे। राज्य विधानसभा नगरपालिका के अध्यक्ष के चुनाव की प्रक्रिया को निर्धारित करने हेतु अधिकृत होगी। यह या तो प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा हो सकता है अथवा सम्बन्धित नगरपालिका के निर्वाचित सदस्यों के बीच में से हो सकता है। जहाँ तथा वार्ड समिति का सम्बन्ध है, प्रत्येक नगरपालिका को वार्डों में बाँटा गया है। छोटे और मध्य आकार की नगरपालिकाओं में, प्रति वार्ड औसत जनसंख्या 1500 से 6000 के बीच होती है। परन्तु बड़े शहरों में वार्ड का औसत आकार बड़ा हो सकता है जो 30,000 से 2 लाख तक की जनसंख्या का हो सकता है। इसके कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि सामान्य नागरिक की उसके निर्वाचित प्रतिनिधि तक तत्काल पहुँच नहीं होती। अधिनियम में मतदाता तथा निर्वाचित की दूरी को कम किया है तथा शहरी स्थानीय निकाय में जनता की सहभागिता की वृद्धि का प्रावधान किया है। अधिनियम में आगे 3 लाख या अधिक की जनसंख्या वाली सभी नगरपालिकाओं की वार्ड समितियों के गठन के लिए प्रावधान किया है।

वार्ड समितियों के गठन के लिए दो या अधिक वार्डों को मिलाया जा सकता है। वर्गीकरण को, विभिन्न स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तथा जो राज्य के अंदर अलग–अलग नगरों में अलग–अलग हो सकती हैं लोचशील बनाए रखा गया है। गठन, अधिकार क्षेत्र, तथा वार्ड समितियों की सीटों को भरने के तरीके को राज्य विधान सभा के ऊपर कानून को परिभाषित करने के लिए छोड़ दिया गया है। वार्ड समिति के क्षेत्र के अंतर्गत आने वाला नगरपालिका का प्रतिनिधि – उस वार्ड समिति का सदस्य होगा। अन्य शब्दों में नगरपालिका का यह सदस्य वार्ड समिति का पदेन सदस्य होगा। यदि वार्ड समिति केवल एक वार्ड के लिए है तो वार्ड का प्रतिनिधित्व करने वाला पार्षद वार्ड समिति का अध्यक्ष होगा। जहाँ वार्ड समिति दो या अधिक वार्डों को मिलाकर बनी है वहाँ नगरपालिका में ऐसे वार्ड का प्रतिनिधित्व करने वाले किसी एक पार्षद को वार्ड समिति के सदस्यों द्वारा वार्ड समिति का अध्यक्ष चुना जाएगा। राज्य द्वारा बनाया गया कानून वार्ड समिति के अतिरिक्त भी समिति का गठन कर सकता है (जैसे स्थायी समितियाँ, क्षेत्रीय अथवा जोनल समितियाँ)। इन समितियों के अध्यक्ष को सम्बन्धित नगरपालिका में प्रतिनिधित्व तथा मत का अधिकार होगा।

सीटों के आरक्षण के सम्बन्ध में अधिनियम अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं के आरक्षण का प्रावधान करता है ताकि नगरपालिका निकायों के सभी स्तरों पर उनके प्रतिनिधित्व/सहभागिता को आश्वस्त किया जा सके। नगरपालिका क्षेत्र में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति का आरक्षण उस क्षेत्र की कुल जनसंख्या के अनुपात में होगा। आरक्षित सीटें केवल प्रत्यक्ष निर्वाचन के द्वारा भरी जाएँगी। अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित सीटों में से अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति से सम्बन्धित महिलाओं का आरक्षण एक–तिहाई से कम नहीं होगा। यह प्रावधान अनिवार्य है। कुल सीटों का एक–तिहाई महिलाओं के लिए आरक्षित होगा। इसमें अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिए आरक्षित की जाने वाली सीटें भी सम्मिलित हैं। इस प्रकार महिलाओं तथा अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित सीटें नगरपालिका में विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में बारी–बारी से आबंटित की जाएँगी। यह प्रावधान वैकल्पिक है। राज्य सरकार आरक्षित सीटों के आबंटन का तरीका निर्धारित करती है।

राज्य विधान सभाएँ कानून के द्वारा नगरपालिकाओं में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति एवं महिलाओं के लिए अध्यक्ष पद के आरक्षण का प्रबंध करेंगी। किस सीमा तक आरक्षण किया जाना है

तथा इस प्रकार किए जाने वाले आरक्षण का तरीका संवैधानिक संशोधन की भावना के अनुसार नगरपालिकाओं के अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति तथा महिला अध्यक्षों के राज्य प्रतिनिधियों द्वारा निर्धारित किया जाएगा। राज्य विधानसभाएँ किसी नगरपालिका के नागरिकों को पिछड़े वर्ग के लिए किसी सीट अथवा अध्यक्ष पद का प्रबंध करने के लिए स्वतंत्र है, यद्यपि यह वैकल्पिक प्रावधान है।

नगरपालिकाओं का गठन

नगरपालिकाओं की अवधि इसकी प्रथम बैठक नियत करने की तारीख से लेकर पाँच वर्ष तक है। नगरपालिका का गठन करने के लिए इसका चुनाव इसकी पाँच वर्ष की अवधि समाप्त होने से पहले करना आवश्यक होगा। राज्य सरकार नगरपालिकाओं को स्थगित तथा निलम्बित करने से सम्बन्धित कानून का प्रावधान करती है। राज्य सरकारों को किसी कानून को संशोधित करने का अधिकार नहीं है जिसके परिणामस्वरूप नई नगरपालिका का पाँच वर्ष की अवधि से पूर्व स्थगन अथवा निलम्बन हो। इस प्रावधान के अनुसार राज्य सरकार नगरपालिका को स्वेच्छा से निलम्बित अथवा स्थगित करने का निर्णय नहीं ले सकती। जहाँ तक पाँच वर्ष की अवधि से पूर्व नगरपालिका भंग करने का सम्बन्ध है राज्य सरकार नगरपालिका को भंग करने का निर्णय ले सकती है। राज्य सरकार के लिए नगरपालिका को इस प्रकार भंग करने से पूर्व स्पष्टीकरण का उचित अवसर देना अनिवार्य होगा। यदि नगरपालिका पाँच वर्ष की अवधि से पहले भंग की जाती है, नई नगरपालिका का गठन नगरपालिका भंग होने के छः माह के अंदर–अंदर करना होगा। इसका अर्थ हुआ कि नगरपालिका अधिकतम छह माह तक भंग रह सकती है। नगरपालिका जिसका गठन भंग होने के बाद किया गया है केवल शेष अवधि तक जारी रहेगी, जिसके लिए भंग विधानसभा जारी रहती यदि वह भंग न होती तो। यह प्रावधान राज्य सरकार को स्वेच्छा से किसी नगरपालिका को भंग करने को प्रतिबंधित करता है। नगरपालिका के सदस्य बनने की अयोग्यताएँ किसी विधानसभा सदस्य के लिए निर्धारित अयोग्यताओं के आधार पर ही निहित हैं। नगरपालिका का चुनाव लड़ने की आयु 21 वर्ष है जबकि विधानसभा सदस्य के लिए 25 वर्ष है।

राज्य निर्वाचन आयोग

74वें संविधान संशोधन अधिनियम में, प्रत्येक राज्य/संघ शासित राज्य में राज्य निर्वाचन आयोग की स्थापना का प्रावधान है जो पंचायतों तथा नगरपालिकाओं के सभी चुनाव संपन्न करता है। राज्य के राज्यपाल द्वारा नियुक्त राज्य निर्वाचन आयुक्त आयोग का प्रमुख होगा। आयुक्त की पदावधि और सेवा शर्तों के नियम राज्यपाल द्वारा निर्धारित होंगे। राज्य निर्वाचन आयुक्त को अपने पद से केवल उसी प्रकार हटाया जा सकता है जिस प्रकार उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जा सकता है। राज्य निर्वाचन आयुक्त की सेवा शर्तों में उसकी नियुक्ति के बाद ऐसा परिवर्तन नहीं किया जा सकता जो उसके प्रतिकूल हों। राज्य निर्वाचन आयुक्त को राज्य निर्वाचन आयोग के कार्यों को पूरा करने के लिए राज्यपाल द्वारा स्टाफ दिया जाता है।

नगरपालिकाओं की शक्तियाँ और कार्य

74वें संविधान संशोधन अधिनियम के अनुसार नगरपालिका के कार्य परम्परागत नागरिक कार्यों से भी अधिक होंगे तथा स्थानीय विकास के लिए योजना निरूपित करने तथा विकास परियोजनाओं को कार्यान्वित करने की महत्त्वपूर्ण भूमिका अपेक्षित है क्योंकि शहरी गरीबी दूर करने के लिए विशेषकर निर्मित कार्यक्रम भी इसमें सम्मिलित हैं। बारहवीं अनुसूची में रखे गए कार्यों की सूची इस प्रकार है :

i) शहरी योजना, कस्बा योजना सहित;

ii) भूमि उपयोग का विनियमन तथा भवन निर्माण;

iii) आर्थिक तथा सामाजिक विकास के लिए योजना;

iv) सड़क तथा पुल;

v) घरेलू, औद्योगिक तथा व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए जल संभरण;

vi) जन स्वास्थ्य;

vii) सफाई, संरक्षण तथा ठोस कूड़े का प्रबंधन

viii) अग्नि सेवाएँ

ix) शहरी वनरोपण, पर्यावरण की रक्षा तथा परिस्थितिकी पक्ष को प्रोन्नयन;

x) समाज के कमज़ोर वर्गों के हितों की सुरक्षा, जिसमें विकलांग और मानसिक विकलांग सम्मिलित हैं।

xi) झुग्गी सुधार एवं प्रोन्नयन

xii) शहरी गरीबी हटाना

xiii) पार्कों, बगीचों तथा श्मशान घाटों तथा विद्युत् शवदाह गृहों, पशु तालाबों, जानवरों के प्रति क्रूरता को रोकने जैसी शहरी सुविधाओं का प्रावधान;

xiv) जन्म एवं मृत्यु के पंजीकरण सहित मौलिक सांख्यिकी;

xv) जन सुख सुविधा – स्ट्रीट लाइट, पार्क;

xvi) वध स्थलों तथा चमड़े के कारखानों का पंजीकरण

74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 स्वशासन की संस्थाओं को प्रभावी रूप में कार्य करने के लिए नगरपालिकाओं को शक्ति प्रदान करता है। राज्य विधानसभा कानून द्वारा परिभाषित करती है कि आर्थिक विकास के लिए योजना बनाने तथा सामाजिक न्याय तथा योजना को लागू करने के लिए कौन–से कार्यों को नगरपालिका को सौंपा जाए। राज्य की विधानसभा भी कानून के द्वारा सौंपे गए उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए वार्ड समितियों तथा अन्य समितियों को सशक्त एवं प्राधिकृत कर सकती है।

वे कार्य जो नगरपालिकाओं को सौंपे जा सकते हैं उनकी सूची संविधान की बारहवीं अनुसूची में रखे गए हैं। नगरपालिकाओं द्वारा किए जाने वाले कार्यों को निर्धारित करते समय राज्य विधानसभा सूचित कार्यों को छाँटने या इस सूची में जोड़ने के लिए स्वतंत्र है। बारहवीं सूची में सूचित किए गए कार्य इस प्रकार हैं: कस्बा योजना सहित नगर योजना; भूमि उपयोग तथा भवन निर्माण का विनियमन; आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए योजना; सड़क एवं पुल; घरेलू, औद्योगिक एवं व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए जल संभरण; जन स्वास्थ्य, सफाई, ठोस कचरा प्रबंधन; अग्नि सेवाएँ; शहरी वनरोपण; पर्यावरण की रक्षा; पारिस्थितिकी पक्ष का प्रोन्नयन; समाज के कमज़ोर वर्गों के हितों की सुरक्षा, जिसमें विकलांग और मानसिक विकलांग सम्मिलित हैं; झुग्गी सुधार एवं प्रोन्नयन; शहरी गरीबी हटाना; पार्कों, बगीचों खेल के मैदानों; श्मशान घाटों तथा विद्युत् शवदाह गृहों, पशु तालाबों, जानवरों के प्रति क्रूरता को रोकने जन्म एवं मृत्यु के पंजीकरण; स्ट्रीट लाइट, जन सुविधाएँ, बस स्टाप तथा वध स्थलों तथा चमड़े के कारखानों का पंजीकरण जैसी शहरी सुविधाओं का प्रावधान; (संविधान में, भारत में ग्राम पंचायतों तथा नगरपालिकाओं से सम्बन्धित संवैधानिक प्रावधान) (संवैधानिक प्रावधान, 1993)।

कर तथा वित्त

नगरपालिका के करों और वित्त के सम्बन्ध में, राज्य विधान सभा कानून द्वारा कर लागू करने के मामलों में निर्धारण कर सकती है। वे कानून करों, शुल्कों को जो राज्य कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार नगरपालिकाओं द्वारा लगाए एवं एकत्रित किए जा सकते हैं, परिभाषित कर सकती हैं। कर, चुंगी, शुल्क जो राज्य सरकार द्वारा लगाए एवं एकत्रित किए जा सकते हैं तथा एक हिस्सा नगरपालिकाओं को दे दिया जाता है; सहायता अनुदान राज्य सरकार द्वारा, नगरपालिकाओं द्वारा धन के सृजन एवं अंतरण के लिए निधि का गठन।

राज्य वित्त आयोग

राज्य वित्त आयोग की स्थापना का प्रावधान शहरी शासन संस्थाओं को वित्तीय स्वायत्तता की गारंटी प्रदान करता है। नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति की समीक्षा की दृष्टि से राज्य के राज्यपाल, 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के लागू होने के एक वर्ष के अंदर–अंदर तथा उसके बाद प्रति पाँच वर्ष के बाद राज्य वित्त आयोग का गठन करते हैं। राज्य वित्त आयोग नगरपालिकाओं एवं पंचायतों दोनों के लिए है। राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों में सम्मिलित हैं: करों की निवल प्राप्ति का वितरण, चुँगी, टोल तथा शुल्क जो राज्य द्वारा लगाए जा सकते हैं; राज्य में सभी स्तरों पर नगरपालिकाओं के बीच इन प्राप्तियों के हिस्से का आबंटन; करों, शुल्कों, टोल तथा फीस जो नगरपालिकाओं द्वारा निर्धारित या विनियोजित किए गए हैं, राज्य सरकार की संचित निधि से नगरपालिका को सहायता अनुदान; तथा नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति के सुधार के लिए आवश्यक उपाय।

राज्यपाल नगरपालिकाओं के वित्त के सुदृढ़ प्रबंधन के हित में किसी भी विषय को वित्त आयोग को उसके विचारार्थ भेज सकता है। राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर राज्यों में नगरपालिकाओं के संसाधनों की अनुपूरकता के लिए राज्य के संसाधनों की वृद्धि हेतु सुझाए गए उपाय केन्द्रीय वित्त आयोग के लिए बाध्यकारी हैं। इस प्रकार स्थानीय निकायों, राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार के बीच वित्तों का उचित संपर्क होगा।

जिला योजना समिति (DPC)

अधिनियम जिला स्तर पर योजना समिति के गठन के लिए राज्य सरकार को प्राधिकृत करता है ताकि पंचायतों और नगरपालिकाओं द्वारा तैयार योजनाओं को समेकित किया जा सके। समिति सारे जिले के लिए भी विकास योजना तैयार करती है। राज्य सरकार के लिए प्रत्येक जिले में जिला योजना समिति का गठन बाध्यकारी है। जिला योजना समिति के लोकतांत्रिक चरित्र को बनाए रखने के लिए, एक प्रावधान है कि जिला स्तर पर पंचायत के सदस्यों के बीच से कुल सदस्यों के कम से कम 4/5 सदस्य निर्वाचित होने चाहिए तथा जिले में नगरपालिकाओं को शहरी और ग्रामीण जनसंख्या के अनुपात में। प्रारूप विकास योजना तैयार करते समय, जिला योजना समिति इन विषयों का ध्यान रखेगी जैसे भौगोलिक योजना सहित पंचायतों एवं नगरपालिकाओं के बीच सामान्य हित; जल एवं अन्य भौतिक एवं प्राकृतिक पर्यावरणीय संरक्षण की हिस्सेदारी तथा उपलब्ध संसाधनों की सीमा और प्रकार, चाहे वित्तीय हों या अन्य।

महानगर योजना समिति

महानगर क्षेत्रों के विकास के लिए न केवल मुख्य नगरनिगम अपितु मुख्य नगरनिगम के आसपास शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों से परिवेष्टित, मुख्य नगर के साथ सहयोग से आसपास के कस्बों तथा ग्रामों की उचित विकास योजना बनाने की आवश्यकता है। अधिनियम यह उपबंध करता है कि प्रत्येक महानगर क्षेत्र जिसकी जनसंख्या 10 लाख या अधिक हो समूचे महानगर क्षेत्र के लिए एक प्रारूप

विकास योजना बनाने के लिए महानगर योजना समिति की स्थापना करनी चाहिए। यह प्रावधान अनिवार्य है। जहाँ तक इसकी रचना का प्रश्न हैं, इस प्रकार की समितियों में कम से कम 2/3 सदस्य महानगर क्षेत्र में उस क्षेत्र की पंचायतों और नगरपालिकाओं की जनसंख्या के अनुपात के अनुसार नगरपालिकाओं के निर्वाचित सदस्यों और पंचायतों के अध्यक्षों द्वारा चुने जाने चाहिए (तत्रैव, पृष्ठ 14–17)।

ग्राम परिषद तथा नगरपालिकाएँ

74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम राज्य के अधिसूचित शहरी क्षेत्रों के शहरी लोगों के लिए शासन के विकेन्द्रीकरण का प्रावधान करता है जो शहरी क्षेत्रों की सारी जनता को अत्यधिक सक्रिय राजनीति का अधिकार देता है। नगरपालिकाओं से सम्बन्धित 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 का अनुच्छेद 243 ZC धारा (1) (छठी अनुसूची) में संदर्भित अधिसूचित क्षेत्र तथा अनुच्छेद 244 (पाँचवी अनुसूची) की धारा (2) के लिए लागू नहीं होता (बक्शी, 2000)।

74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम नगरपालिकाओं के भंग होने के छः माह के अंदर–अंदर चुनाव कराने को आश्वस्त करता है। राज्य सरकारों के लिए नियमित चुनाव कराने को यह प्रावधान बाध्य करता है। ग्राम परिषदों के मामलों में यह बाध्यकारी नहीं है। ग्राम परिषदों को वित्तीय संसाधनों, प्रशासनिक उत्तरदायित्वों, राजनीतिक शक्तियों, विकास भूमिकाओं, योजना और निर्णय–निर्माण प्रक्रियाओं के हस्तांतरण को अस्वीकार करता है। इस प्रकार परिषदों में राजनीतिक और वित्तीय विकेन्द्रीकरण दोनों की कमी है। शहरी निर्धन लोगों का सामाजिक–आर्थिक विकास ग्राम परिषदों के कार्य क्षेत्र से बाहर है। संक्षेप में स्थानीय पहल तथा विकास कार्यों में जनता की सहभागिता तथा शहरी क्षेत्रों में सामाजिक–आर्थिकपरिवर्तन लाने में राज्य में एक तीव्र केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति के कारण ग्राम परिषदें असफल हो गई हैं। केन्द्रीकरण की यह प्रक्रिया योजना और निर्णय करने की प्रक्रिया के विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त से मेल नहीं खाती।

ग्राम परिषद अधिनियम ग्राम परिषद चुनावों में महिलाओं को चुनाव लड़ने का प्रावधान करता है परन्तु महिलाओं के लिए सीट के आरक्षण का प्रबंध नहीं करता। इस प्रकार उपरोक्त उल्लेखों से यह जान पड़ता है कि ग्राम परिषदें तथा नगरपालिकाएँ दोनों संरचनात्मक तथा संचालनात्मक दृष्टि से अलग–अलग है। यह तथ्य सत्य है कि परिषदों की नगरपालिकाओं के साथ कोई तुलना नहीं है जो नगरपालिकाओं से सम्बन्धित 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम के प्रावधान के अंतर्गत स्थापित की गई हैं जिनकी प्रकृति राजनीतिक, प्रशासनिक, तथा वित्तीय शक्तियों का हस्तांतरण है। यह अधिनियम उनकी वित्तीय आवश्यकताओं की वृद्धि के लिए राज्य वित्तीय आयोग की संस्थापना करता है ताकि "शहरी भारत" फले–फूले तथा देश विकास और संपन्नता की ओर अग्रसर करने हेतु आश्वस्त हो (अरोड़ा, 2001)। यह अधिनियम स्वाभाविक रूप से शहरी तथा पंचायती राज शासन में क्रांतिकारी तथा अभूतपूर्व परिवर्तन लाया है; अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों का ईमानदारी से कार्यान्वयन यह आश्वस्त करेगा कि अपने क्षेत्र के निवासियों की सेवा के लिए भारतीय शहरी शासन मज़बूत होकर उभरेगा।

74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992, के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए नगरपालिकाओं से सम्बन्धित लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकृत शासन स्थानीय स्वशासन की भावना और तत्व को सारे विश्व में प्रतिबिम्बित करता है।

संविधान के स्तर केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय स्वशासन संरचनाएँ जब नियमितता और कुशलता से कार्य करेंगे केवल तभी संविधान तथा राजनीति की संघीय तथा लोकतांत्रिक प्रकृति को संरक्षित रखा जा सकता है, अन्यथा संविधान अपनी विषयवस्तु तथा कार्यान्वयन में बहुत अधिक विकृत हो जाएगा। आवश्यकता इस बात की है कि "ऐसी इच्छा हो कि नगरपालिकाएँ एक योग्य लोकतांत्रिक संस्था बनें

तथा लोकोन्मुख शासन हो जिस पर वास्तविक अर्थों में विकेन्द्रीकृत शासन फले-फूले। इस प्रकार शहरी शासन की नए प्रकार की धारणा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के विस्तार के रूप में स्वीकार की गई है तथा शहरी क्षेत्र के लिए जनोन्मुख है जो समाज के सभी वर्गों की पहुँच में होने को आश्वस्त करता है विशेषकर गरीब तथा महिलाओं की। ये किसी भी शहरी प्रशासन के लिए संजोकर रखने वाली अमूल्य विशिष्टताएँ हैं।

भारत एक शान्त फिर भी निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण, लगभग वाकपटु आर्थिक सुधारों के साथ-साथ 1990 के दशक के प्रारंभ में राजनीतिक क्रांति के दौर से गुजरा है। स्थानीय सरकारों तथा केन्द्र सरकारों के तुलनात्मक महत्त्व कों इसी तर्क के विस्तार के रूप में देखा जाना चाहिए। निरंतर अस्तित्व की प्रवृत्ति, संसद में 73वें तथा 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों के माध्यम से आश्वस्त कर दी गई है जिसे अभी शहरी क्षेत्रों में 73,000 सहित जनता के 30 लाख से ज्यादा प्रतिनिधियों, जिसमें से 10 लाख महिलाएँ, 2 लाख ग्राम पंचायत निकाय तथा लगभग 3700 शहरी नगरपालिका निकाय द्वारा अनुभव किया ज़ाना है।

राज्य (भारत का जिसका अर्थ है संघ तथा राज्य इकाइयाँ) के नीति निर्देशक सिद्धान्त (अनुच्छेद 40) की ग्राम पंचायतों को स्थापित करने के लिए कदम उठाए जाएँ तथा उन्हें ऐसी शक्तियाँ तथा प्राधिकार प्रदान किए जाएँ जो आवश्यक हों ताकि वे स्वयं शासन के रूप में कार्य कर सकें, का पालन करने की अपेक्षा अतिक्रमण अधिक किया गया है, तो भी कई राज्य इकाइयों ने कई अर्थों में अच्छा कार्य किया है (मैथ्यू, 1996)। शहरी स्थानीय निकाय जो अधिक सौभाग्यशाली थे जो अपने स्थान पर थे तथा उन्हें राज्य सूची के सातवीं अनुसूची की मद संख्या 5 पर स्थान दिया गया जिसका अर्थ है : स्थानीय सरकार, जिसे कह सकते हैं, नगरनिगम सुधार न्यास का संविधान एवं शक्तियाँ, जिला बोर्ड, माइनिंग सैटलमेंट, प्राधिकार तथा अन्य स्थानीय प्राधिकार, स्थानीय स्वशासन या ग्राम प्रशासन के उद्देश्य के लिए।

यद्यपि अनुच्छेद 40 सरकार के सभी स्तरों पर ग्राम पंचायतों को संगठित करने और स्वशासन को इकाई के रूप में कार्य करने हेतु उन्हें इस प्रकार की शक्तियाँ प्रदान करने का व्यादेश देता है। इस प्रकार यह अपेक्षा की गई कि राज्य विधानसभाएँ तथा राज्य संरकारें विधान द्वारा स्थानीय निकायों का गठन करें एवं उन्हें शक्ति प्रदान करें ताकि वे स्वशासन की इकाई के रूप में कार्य कर सकें। जबकि नगरपालिका अधिनियम तथा नगरपालिका निकाय स्वतंत्र से पूर्व से अस्तित्व में थे अधिकांश उसी रूप में जैसे वे आज हैं केवल थोड़ी अधिक स्वायत्तता के साथ तथा कुछ अधिक मूल कार्यों के साथ अपेक्षातया 50 तथा 60 के दशक में अधिक निधि के साथ, ग्रामीण पंचायती राज निकाय सामान्यतः जिला स्तर पर या अधिक से अधिक उप जिला स्तर तक, यद्यपि विकेन्द्रीकरण पर रॉयल आयोग द्वारा पंचायत की अपेक्षा की गई थी (1907–08) तथा भारत सरकार अधिनियम, 1919 के बाद प्रान्तीय सरकारों के ग्राम पंचायत के लिए संविधान बनाए।

स्वतंत्रता से कुछ पहले, 1946 में भारतीय नेतृत्व द्वारा शक्तियाँ प्राप्त करने के बाद अधिकांश प्रान्तों ने अपने ग्राम पंचायत अधिनियमों को परिवर्तित किया, इस दृष्टि से कि अधिक शक्तियाँ और कार्य सौंपे जाएँ। परन्तु तब तक कोई ठोस परिणाम नहीं निकला जब तक कि बलवंत राय मेहता टीम (1959), सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा पर एक बड़ी समिति के भाग के रूप में गठित नहीं कर दी गई, इसने जनता की सहभागिता के लिए लोकतांत्रिक ढाँचे का सुझाव दिया ताकि इन कार्यक्रमों को अधिक प्रभावी ढंग से कार्यान्वित किया जा सके।

यह तर्क है कि "शहरी" स्थानीय निकाय क्यों कमज़ोर हो गए हैं तथा प्रभावी रूप से कार्य नहीं कर पा रहे हैं, जैसे कि स्वशासन की स्पंदनशील लोकतांत्रिक इकाइयों में होता है, उद्देश्यों के विवरण तथा

तर्क 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम के पुनःस्थापन के समय दिए गए थे, जिसमें तीन तथ्यों का उल्लेख किया गया था :

i) चुनावों को नियमित रूप से करवाने में असफलता;

ii) लम्बे समय तक रोकना; तथा

iii) शक्तियों तथा कार्यों का अपर्याप्त हस्तांतरण। संशोधन ने (क) कार्यों और करारोपण शक्तियों तथा राजस्व हिस्सेदारी की व्यवस्था करने के सम्बन्ध में राज्य सरकार तथा शहरी स्थानीय निकायों के बीच सुदृढ़ सम्बन्ध बनाने; (ख) नियमित रूप से चुनावों की आश्वस्तता तथा अधिक्रमण के मामले में समय पर चुनाव कराने; तथा (ग) अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं जैसे कमज़ोर वर्गों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने का प्रयास किया।

इसी पृष्ठभूमि में इस भाग में हमसेः (i) 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के पश्चात् शहरी स्थानीय निकायों को स्थानांतरित किए गए कार्यों तथा (ii) इन कार्यों को संम्पन्न करने के लिए स्थानांतरित पर्याप्त संसाधनों पर बोलने की आशा की जाती थी (चौबे, 2004)।

स्थानीय स्वशासन के मूल तत्व

पंचशील से सम्बन्धित "स्वयं", "स्थानीय", तथा "शहरी" जैसे कुछ तत्व हैं जो इस प्रकार हैं :

1) संरचना में लोकतंत्र के सिद्धान्त

यहाँ हम एक महत्त्वपूर्ण स्वयंसिद्ध तथ्य को रेखांकित करते हैं कि लोगों की रूचि केवल उत्पाद में नहीं है अपितु, उनकी इच्छा निर्णय निर्माण प्रक्रिया का हिस्सा बनने में रहती है। यहाँ विषय ये नहीं है कि क्या लाभ हुआ बल्कि यह भी है कि लाभ किस प्रकार हुआ। यह आश्चर्यजनक नहीं है कि हाल के आम चुनावों में स्थानीय विकास के मुद्दों ने मुखर–मुखर अभिव्यक्ति दी है। इसका अर्थ है कि स्थानीय स्वशासन निकायों के सब सदस्य तथा अध्यक्ष निर्वाचित होने चाहिए, इससे कोई मतलब नहीं है कि अध्यक्ष किस प्रकार निर्वाचित होता है। यह विषय कि हमारे यहाँ पार्टी आधारित लोकतंत्र हो या पार्टी रहित लोकतंत्र हमारे लिए रोक नहीं होनी चाहिए। पंचायत निकायों को विभिन्न निकायों का तथा विभिन्न स्तरों का ध्यान रखना पड़ता है जैसे, जिला योजना समिति तथा महानगर योजना समिति को जितना संभव हो उतना प्रतिनिधि होना चाहिए। इसका अर्थ है कि इन निकायों के सदस्य निर्वाचित प्रतिनिधियों के बीच में से होने चाहिए जिनके साथ चुने हुए लोगों का समर्थन हो। लोकतंत्र यह विश्वास करता है कि लोगों में निर्णय लेने की पर्याप्त सामान्य बुद्धि है। लोक निर्णय के विषय इतने गंभीर होते हैं कि उनको ग़ैर निर्वाचित विशेषज्ञों के ऊपर नहीं छोड़ा जा सकता।

2) कार्य प्रणाली में स्वायत्तता का सिद्धान्त

स्थानीय सरकारों पर यदि कार्य पक्ष पर नहीं तो वित्तीय पक्ष पर, समस्त विश्व में, अत्यधिक प्रतिबंध हैं। अधिकारों और कर्त्तव्यों के बीच कोई मेल नहीं है। संसाधनों पर उनके अधिकारों से बहुत अधिक उनको कर्त्तव्य सौंपे गए हैं (रीगन, 1972)। यदि उच्च स्तर से स्थानांतरण के माध्यम से यदि अंतर हटा भी दिया जाए तो उनके अधिकार के रूप में नहीं अपितु केवल अनुदान और ऋण के रूप में होता है। राजकोष के अतिरिक्त; प्रारंभ में मूल्यांकन/अनुमोदन/संस्वीकृति, मध्य में निरीक्षण/मॉनीटरिंग तथा अंत में लेखा परीक्षा के लिए हमेशा कई निकाय होते हैं। उनके कर प्रयास दरों, प्रक्रियाओं तथा सीमाओं के अर्थों में कई प्रतिबंधों से घिरे रहते हैं। फिर भी यदि पर्याप्त वित्तीय स्वतंत्रता नहीं है तो कार्यात्मक स्वायत्तता का कोई अर्थ नहीं है।

3) भ्रातृ भाव का सिद्धान्त

मुद्दा यह है कि हम समस्त समुदाय के व्यापक हित में भ्रातृत्व के साथ सहयोग करने के लिए आगे की ओर देखते हैं, यहाँ तक कि हमें अस्थायी रूप से कुछ सहन करना पड़े तो भी। यदि इकाइयों के पास एक जैसी क्षमता नहीं है परन्तु दोनों इकाइयाँ अनुभव करती हैं दोनों इकाइयों को कुछ वस्तुओं के उपभोग को समान स्तर पर करना चाहिए, तो संसाधनों को अधिक संपन्न से कम संपन्न की ओर स्थानांतरित करना होगा। जहाँ पुनर्वितरण एक प्रमुख उत्तरदायित्व है जो आधुनिक सरकार पर डाला गया है, इकाइयाँ संसाधनों के स्थानांतरण को जारी नहीं रख सकतीं। अधिक संपन्न का विरोध पनपने की संभावना होती है। कुछ लोग कार्य कुशलता पर इसके प्रभाव का मुद्दा भी उठाएँगे जबकि अन्य, संसाधनों के ग़ैर–राजस्व को एक इकाई/क्षेत्र/कार्यक्षेत्र से अन्य क्षेत्र को स्थानांतरण को। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि सभी बहु–निवासीय राजनीति में कुछ इकाइयों में दूसरों की संपत्ति के स्थानांतरण की आवश्यकता हमेशा रहेगी, यद्यपि निवास का सीटा वही जारी नहीं रह सकता।

4) प्राथमिकताओं में विभिन्नता का सिद्धान्त

मानव होने के नाते हम काफी समतुल्य हैं तथा विस्तृत अर्थों में हमारी आवश्यकताएँ भी काफी समान हो सकती हैं। परन्तु हमारा भूगोल, इतिहास तथा संस्कृति के कारण हम विभिन्न वस्तुओं का चुनाव करते हैं। यह सार्वजनिक वस्तुओं के बारे में भी सच हो सकता है। हमें लम्बे समय से राष्ट्रीय सार्वजनिक वस्तुओं तथा स्थानीय सार्वजनिक वस्तुओं के बीच विभाजन का सुझाव दिया गया है। हम यह नोट कर सकते हैं कि विभिन्न राज्यों के बीच, ग्रामीण और शहरी के बीच तथा विभिन्न स्तर की नगरपालिकाओं के बीच कार्यों में विभिन्नता को कई समीक्षक इंगित करते हैं जैसे कि एकरूपता अपने आपमें सभी मामलों में एक अपेक्षित गुणधर्म हो। यह संभ्रम उत्पन्न हुआ संक्षिप्त आँकड़ों के लिए उनकी अधीरता के कारण। विभिन्नता बड़ी सरलता से विषमता के साथ संभ्रमित हो जाती है।

5) इकाइयों की विषमता का सिद्धान्त

हमारे राज्यों की जनसंख्या 6 लाख से 16 करोड़ के बीच है, संघ शासित क्षेत्रों की 70 हजार से 1.30 लाख के बीच तथा शहरी निवासी वर्ग के अंदर शहरों में कुछ हजार से लेकर कई लाखों के बीच है। हमारे पास 2 लाख के जिले हो सकते हैं और 20 लाख के भी। हमारे राज्यों ने इस विभिन्नता को ध्यान में रखा है तथा उनकी कार्यवाहियों को विभेदी उत्पाद के रूप में देखा जा सकता है। हमारे राजनीतिज्ञ तथा नौकरशाहों के पास, संशोधन प्रस्ताव को तैयार करते एवं समीक्षा करते समय अपने सम्बन्धित राज्य में विशेष वर्ग के कार्यों को हस्तांतरित अथवा प्रत्यायोजित करने में तथ्यों का संज्ञान लेने एवं राज्य विधान सभाओं में पर्याप्त लोचशीलता उपलब्ध कराने की बुद्धिमता थी।

भारत में 100 निगमों के पास लगभग 3700 शहरी स्थानीय निकाय हैं, 1500 नगरपालिका परिषद तथा 2,100 नगर पंचायतें, इसके अतिरिक्त 56 छावनी बोर्ड – संविधान बाह्य निकाय का एक प्रकार। आसाम, मेघालय, त्रिपुरा तथा मिज़ोरम में पाँचवी अनुसूची क्षेत्र राज्य विधानसभा के अंतर्गत 73वें तथा 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के प्रचालन से हटा दिए गए हैं। संसद को पहले कानून के द्वारा प्रावधान करना होगा। जहाँ संसद ने 1996 में ग्रामीण स्थानीय निकायों के सम्बन्ध में कानून पास कर दिया है, इसे अभी शहरी स्थानीय निकायों के प्रावधान को लागू करने के लिए कार्यवाही करनी है। परिणामस्वरूप मिज़ोरम तथा दादर एवं नागर हवेली में कोई नगरपालिका निकाय स्थित नहीं हैं। मेघालय में अधिनियम अभी भी विचाराधीन है। जम्मू एवं कश्मीर तथा सिक्किम में नगरपालिका अधिनियम पारित कर दिए गए हैं, यद्यपि देरी से किए गए हैं। अरुणांचल प्रदेश में किसी भी स्थान को शहरी घोषित नहीं किया जान पड़ता। इन सभी राज्यों में, लोकप्रिय माँगों के अंतर्गत या लोकप्रिय उपाय के अंतर्गत, कुछ नगर पंचायतों को, हाल ही में हरियाणा में, नगरपालिका विहीन कर दिया गया

है (सिंह, 2001)। अन्यत्र, जिसका अर्थ है बड़े राज्यों में अनुरूपता अधिनियम जून 1, 1996 की सीमा रेखा से पहले ही पारित कर दिए गए। बिहार और पांडिचेरी को छोड़कर नगरपालिका निकायों का गठन कर दिया गया है यद्यपि अन्यत्र पहले चुनाव में देरी के कई मामले हैं (शिवरामकृष्णन, 2000)।

नगरपालिकाओं का कार्यक्षेत्र

संशोधनों ने थोड़े विस्तार के साथ सारे देश में स्थानीय निकायों की एकरूपता प्रकट की, हस्तांतरण प्रत्यायोजन के लिए कुछ कार्य/उत्तरदायित्व सुझाए, यदि पहले ही प्रत्यायोजित किए गए हों, तथा राज्य विधान सभाओं को इन शक्तियों, प्राधिकरणों तथा संसाधनों के साथ स्थानीय निकायों को प्रदान करने को प्रेरित किया जो इस प्रकार के कार्यों को संपन्न करने के लिए आवश्यक था। पाँचवीं और छठी अनुसूची क्षेत्रों के सम्बन्ध में, स्थानीय शहरी निकायों के लिए संसद द्वारा प्रावधान करना अभी शेष है।

संवैधानिक स्थिति

संविधान के भाग IX में संघ तथा राज्य के बीच सम्बन्धों का उल्लेख है तथा इसमें दो अध्याय हैं – अध्याय I में वैधानिक सम्बन्धों का वर्णन है तथा अध्याय II में प्रशासनिक सम्बन्धों का वर्णन है। वैधानिक सम्बन्ध रखने वाले ग्यारह अनुच्छेदों में, अनुच्छेद 246 विषयवस्तु के सम्बन्ध में संसद और विधानसभा की वैधानिक सक्षमता का वर्णन करता है। अनुच्छेद का भाग (3) सातवीं अनुसूची की सूची II में गिनाए गए किसी भी विषय के सम्बन्ध में राज्य विधान सभा की कानून बनाने की अनन्य शक्तियों से अनुबद्ध करता है, जबकि भाग (2) सातवीं अनुसूची की सूची III में गिनाए गए किसी भी विषय के सम्बन्ध में राज्य विधान सभा को सहव्यापक अधिकार दिए गए हैं। स्थानीय कार्यों से सम्बन्धित सभी विषयों को सूची II तथा सूची III में सूचीबद्ध किया गया है तथा संसाधनों को बढ़ाने की परम्परागत स्थानीय शक्तियों (कर, उपभोग शुल्क तथा ऋण) को भी सूची II में सूचीबद्ध किया गया है। जैसा कि स्थानीय निकायों के पास अपना कोई अनन्य कार्यक्षेत्र नहीं है, उनका कार्यक्षेत्र राज्य के कार्यक्षेत्रों के कार्यक्षेत्र के साथ तथा उपसमुच्चय के रूप में सह–व्यापक है।

बारहवीं अनुसूची

अनुच्छेद 243 W यह सुझाता है कि राज्य, कानून के द्वारा, नगरपालिकाओं को उन शक्तियों तथा प्राधिकारों को प्रदान कर सकता है जो स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के रूप में कार्य करने के लिए आवश्यक हैं तथा आगे यह भी सुझाव देता है कि इस प्रकार के कानून में नगरपालिकाओं को शक्तियाँ तथा उत्तरदायित्व हस्तांतरण करने के लिए प्रावधान हों – ऐसी शर्तों पर इस सम्बन्ध में विशेष विवरण किया जा सकता है जैसे कि (i) आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय के लिए योजनाएँ तैयार करना; (ii) कार्यों की उपलब्धियों तथा योजनाओं के कार्यान्वयन का निष्पादन, जो उनको सौंपे गए हों, जिसमें बारहवीं अनुसूची में वर्णित विषय भी सम्मिलित हैं। कुछ बातें साफ होनी चाहिए। पहली, अनुच्छेद राज्य विधानसभाओं के लिए कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं है। दूसरी कुछ शर्तों के साथ शक्तियों तथा उत्तरदायित्वों के हस्तांतरण का प्रावधान संकेतात्मक है। तीसरी, बारहवीं सूची केवल उदाहरणार्थ है; उसमें सूचित सभी विषयों को न तो हस्तांतरित करने की आवश्यकता है, न ही संपूर्ण करने के लिए सुझाए गए हैं। चौथी, अनुसूची कार्यों की विषयवस्तु का केवल संकेत करती है, न कि कार्यों का जो उनको सौंपे जा सकते हैं। पाँचवीं, जो कार्य और योजनाएँ उन्हें सौंपी जा सकती हैं उनका पूर्वानुमान लगाकर कानून द्वारा शक्तियाँ, उत्तरदायित्व तथा अधिकार हस्तांतरित किए जा सकते हैं।

कार्यात्मक अधिकार क्षेत्र पर कुछ अभ्यास

सभी प्रमुख राज्यों में, आधुनिक रूप में अस्तित्व में आने से पूर्व नगरपालिका निकायों के साथ-साथ

नगरपालिका अधिनियम विद्यमान थे। (इस प्रकार उनके उपजनक थे)। वहाँ कई नगरपालिका अधिनियम हो सकते हैं जिनके द्वारा नगरपालिका निकाय शासित होते हैं, अंशतः विभिन्न चरणों में राज्यों के पुनर्गठन के कारण। उदाहरणार्थ, महाराष्ट्र राज्य में चार नगरपालिका अधिनियम हैं (पेठे, 2003)। जबकि आंध्र प्रदेश में दो। कुछ राज्यों ने केवल विद्यमान अधिनियमों में संशोधन किया; कुछ राज्यों में ये पहली बार आएँ। सामान्यतः दो अधिनियम हैं – एक नगरनिगमों से सम्बन्धित है तथा दूसरा नगरपालिकाओं से सम्बन्धित है। ये अब तीन स्तरों के हैं: नगरनिगम, नगर परिषद तथा नगर पंचायत। कुछ छोटे राज्यों में कोई शहरी स्थानीय निकाय नहीं हैं, अन्यों के पास कोई नगरनिगम नहीं हैं। प्रमुख राज्यों में से, केरल में कोई नगर पंचायत नहीं है जबकि महाराष्ट्र में केवल दो हैं। कई स्थानों पर छावनी बोर्ड भी अस्तित्व में हैं, जिस पर संविधान मौन है। क्योंकि ग्राम पंचायतों के विभिन्न स्तरों के बीच स्थानीय कार्यों का विभाजन होना है, शहरी स्थानीय निकायों के विभिन्न स्तरों के लिए कानून में निवास के आकार का ध्यान रखा जाना चाहिए।

कार्यात्मक अधिकार क्षेत्र की वर्तमान स्थिति

द्वितीयक स्रोत के अध्ययन के आधार पर, हम निम्नलिखित सामान्य अभिरचना पर आते हैं। सभी प्रमुख राज्यों ने अपने शहरी स्थानीय निकायों को ये उत्तरदायित्व सौंपे हैं (i) जन स्वास्थ्य, स्वच्छता, संरक्षण तथा ठोस कचरे का प्रबंधन (अनुसूची XII की मद संख्या 6, अनुसूची VII की राज्य सूची की मद संख्या 6); (ii) पार्कों, बगीचों तथा खेल के मैदानों की शहरी सुख–सुविधाओं का प्रावधान (अनुसूची XII की मद संख्या 12, राज्य सूची की मद संख्या 18, अनुसूची VII की समवर्ती सूची की मद संख्या 20); (iii) श्मशान घाटों तथा विद्युत् शवदाह गृहों, जैसी शहरी सुविधाओं का प्रावधान (अनुसूची XII की मद संख्या 14, अनुसूची VII की राज्य सूची की मद संख्या 10); (iv) जन्म एवं मृत्यु सहित मूलभूत आँकड़े (अनुसूची XII की मद संख्या 16, अनुसूची VII की समवर्ती सूची की मद संख्या 30); तथा (v) वधशालाओं तथा चमड़ा उद्योगों का विनियमन (अनुसूची XII की मद संख्या 18, अनुसूची VII की राज्य सूची की मद संख्या 15)। जहाँ अंतिम दो नियामक प्रकृति के हैं, बीच का, केवल महानगरों में गंभीर समस्या है।

लगभग सभी राज्यों ने अपने शहरी स्थानीय निकायों को ये उत्तरदायित्व सौंपे हैं: (vi) शहरी वनरोपण, पर्यावरणीय की रक्षा तथा परिस्थितिकी पक्ष को प्रोन्नयन (अनुसूची XII की मद संख्या 8, अनुसूची VII में राज्य सूची की मद संख्या 6, मुख्य अपवाद दिल्ली है)। (vii) घरेलू, औद्योगिक तथा व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए जल संभरण (अनुसूची XII की मद संख्या 5, अनुसूची VII में राज्य सूची की मद संख्या 17, मुख्य अपवाद दिल्ली, आंध्र प्रदेश (वस्तुतः हैदराबाद) तथा मध्यप्रदेश हैं)। (viii) सड़क तथा पुल (अनुसूची XII की मद संख्या 4, अनुसूची VII में राज्य सूची की मद संख्या 13, मुख्य अपवाद उत्तर प्रदेश तथा दिल्ली हैं)। (ix) पशु तालाबों, जानवरों के प्रति क्रूरता को रोक (अनुसूची XII की मद संख्या 15, राज्य सूची की मद संख्या 15 तथा अनुसूची VII में समवर्ती सूची की मद संख्या 17, मुख्य अपवाद आंध्र प्रदेश हैं)। (x) स्ट्रीट लाइटिंग सहित, जन सुख–सुविधाएँ तथा बस स्टैण्ड (अनुसूची XII की मद संख्या 17, राज्य सूची की मद संख्या 5 तथा अनुसूची VII में समवर्ती सूची की मद संख्या 20, मुख्य अपवाद आंध्र प्रदेश हैं)।

कुछ अपवादों को छोड़कर राज्यों ने ये कार्य सौंपे हैं: (xi) विकलांगों एवं मानसिक विकलांगों सहित समाज के कमज़ोर वर्गों के हितों की सुरक्षा (अनुसूची XII की मद संख्या 9, राज्य सूची की मद संख्या 9 तथा अनुसूची VII में समवर्ती सूची की मद संख्या 16), (xii) सांस्कृतिक, शैक्षणिक तथा सौंदर्य पक्ष का प्रोन्नयन (अनुसूची XII की मद संख्या 13, राज्य सूची की मद संख्या 12/33 तथा अनुसूची VII में समवर्ती सूची की मद संख्या 25)। यहाँ यह महत्त्वपूर्ण है कि कई राज्यों में अनुसूची XII के प्रारंभ में सूचित मदों पर आरक्षण है। जबकि आंध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र तथा दिल्ली में शहरी योजना तथा

शहरी गरीबी उन्मूलन के उत्तरदायित्व सौंपने में आरक्षण है। उत्तर प्रदेश उपरोक्त राज्यों में तब सम्मिलित हुआ जब वहाँ भूमि उपयोग तथा भवन निर्माण के विनिमयन का कार्य सौंपा जा रहा था तथा मध्य प्रदेश इसमें झुग्गी सुधार तथा उन्नयन के उत्तरदायित्व को सौंपने में सम्मिलित नहीं होगा। कर्नाटक तथा पश्चिम बंगाल आर्थिक तथा सामाजिक विकास का दायित्व सौंपने के कार्य में सम्मिलित नहीं होगा।

संवैधानिक प्रावधान

अधिनियम विद्यमान कानून और प्रथाओं को दोहराता है। अनुच्छेद 243 X यह अनुबंध करता है कि राज्य की विधानसभा कानून द्वारा :

क) नगरपालिका को कर, शुल्क, टोल तथा फीस लगाने, संग्रहित करने तथा निर्धारित प्रक्रियाओं तथा सीमाओं की शर्तों के अनुसार विनियोग करने को प्राधिकृत कर सकती है;

ख) ऐसे उद्देश्यों के लिए तथा कुछ शर्तों और सीमाओं के अधीन राज्य सरकार द्वारा लगाए एवं संग्रहित किए गए कर, शुल्क, टोल तथा फीसें नगरपालिका को सौंप सकती है;

ग) राज्य की संचित निधि से नगरपालिका को इस प्रकार के अनुदान का उपबंध कर सकती हैं;

घ) नगरपालिका द्वारा या उसके लिए सारे प्राप्त धन के जमाखाते के लिए निधि के गठन प्रावधान कर सकती है तथा जैसा कानून में वर्णित है, उस धन को निकालने का भी प्रावधान भी कर सकती है।

73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों का एक उल्लेखनीय लक्षण है राज्य वित्त निगम के गठन के सम्बन्धों में प्रावधान तथा इसका अधिदेश तथा राज्य की विधान सभा में रखे जाने के लिए आयोग द्वारा संस्तुत किए गए विषयों पर राज्यपाल को निर्देश। फिर भी किसी भी सिफारिश को स्वीकार करने अधिकार एकमात्र विधान सभा को है। अभी तक अनुभव बहुत उत्साहजनक नहीं है फिर भी इसको रोकने का कोई अर्थ नहीं हैं।

15.4.1 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के बाद नगरपालिका वित्त

वित्तीय प्रावधान

73वें और 74वें दोनों संविधान संशोधन अधिनियम शहरी तथा ग्रामीण निकायों के वित्तीय हस्तांतरण के लिए राज्य वित्त आयोग की सिफारिश का प्रावधान करते हैं। अनुच्छेद 243 (I) के अंतर्गत 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम राज्यों से पंचायती राज संस्थाओं को वित्तीय संसाधनों के हस्तांतरण के लिए राज्य वित्त आयोग का प्रावधान करता है। अनुच्छेद 243 (Y) के अंतर्गत 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम शहरी स्थानीय निकायों की वित्तीय आवश्यकताओं को देखने के लिए वित्तीय आयोग का भी उल्लेख करता है। 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम स्थानीय निकायों के वित्तीय संसाधनों के सम्बन्ध में संशोधन के एक वर्ष के भीतर तथा उसके पश्चात् प्रत्येक पाँच वर्ष के भीतर, प्रत्येक राज्य द्वारा राज्य वित्त आयोग के गठन का प्रावधान करता है। दुर्भाग्यवश आयोग की सिफारिशें सम्बन्धित राज्यों के लिए बाध्यकारी नहीं हैं। परन्तु फिर भी नगरपालिकाएँ राज्य सरकारों पर आरोप लगाती हैं कि वे शहरी निकायों को चलाने के लिए आवश्यक वित्त प्रदान नहीं कर रही हैं।

जनता की सहभागिता

74वें संविधान संशोधन अधिनियम के बावजूद "जनता की सहभागिता" मुख्य उद्देश्यों में से एक है, शहर के नगरपालिका मामलों में जनता की वास्तविक सहभागिता अभी भी सीमित है। इस प्रवृत्ति का मुख्य

कारण है कि जनता नगरपालिका निकायों की तरफ अंतर्निहित संदेह से देखती है तथा यह मानकर चलती है कि उनकी समस्याओं और कष्टों का ध्यान नहीं रखा जाएगा।

निजी सार्वजनिक साझेदारी

जैसा कि अधिकांश नगरपालिकाएँ वास्तव में कु:शासन का उदाहरण हैं, कोई निजी पार्टी नगरपालिका प्राधिकारियों से हाथ मिलाने को इच्छुक नहीं है। निजी पाटियाँ यह भी सोचती हैं कि अपनी परियोजनाएँ नगरपालिका के माध्यम से चलाना वास्तव में समय साध्य और निष्फल है।

व्यावसायिकता

अभी भी यह सामान्य धारणा है कि नगरपालिका शासन में "कूड़ा निष्पादन" या "मूलभूत सुविधाओं का प्रावधान करने" में विशेषज्ञता और व्यावसायिकता जैसी आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार नगरपालिका प्राधिकारी लोगों की मनोवृत्ति को "विनियमन" से "विकासात्मक" मनोविज्ञान में परिवर्तित करने में सफल हुए हैं जिसने आगे चलकर व्यावसायिकतावाद का समर्थन किया है।

राजनीतिक समर्थन

यह सामान्य अनुभव है कि जब भी बड़े स्तर पर सुधार किए गए हैं, इसका प्रतिरोध हुआ है। प्रतिरोध दो क्षेत्रों से आता है। पहला कर्मचारी पक्ष से जो अपनी कार्यशैली में परिवर्तन नहीं करना चाहते हैं और राजनीतिज्ञों का आश्रय लेते हैं। दूसरा प्रतिरोध जनता की तरफ से होता है जिनके निहित स्वार्थ होते हैं तथा राजनीतिज्ञों का भी समर्थन होता है (दीक्षित, 2004)।

15.5 सारांश

स्वतंत्र भारत में शहरी शासन ने अत्यधिक परिवर्तन देखे हैं। शहरी सरकारों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक तथा पर्यावरणात्मक प्रकारों की जटिलताओं का सामना करना पड़ता है। शहरी स्थानीय स्वशासन की सफलता तथा प्रभावोत्पादकता राज्य सरकारों की प्रशासनिक तथा राजनीतिक इच्छा पर निर्भर करती है, कि वे संघ के तृतीय स्तर के अपने सबसे छोटे भागीदार के रूप में निचले स्तर की सरकार को स्वीकार करें। संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम के परिणामस्वरूप लोकतंत्र का विकेन्द्रीकरण हुआ। जनता को, निचले स्तर पर प्रशासन में सक्रिय सहभागिता प्रदान की गई। शहरी प्रशासन में एक नया अध्याय जोड़ा गया। इस प्रकार, देश में शहरी प्रशासन का अपनी प्रकृति को "स्थानीय स्वशासन" से "स्थानीय निकाय" में परिवर्तित करने का लम्बा इतिहास है। ध्यान "स्थानीय स्वशासन" से "स्थानीय शासन" और अब "उत्तम स्थानीय शासन" की तरफ केन्द्रित हो गया है (सिंह, 2004)।

नगरपालिका केन्द्रीय विधेयक अर्थात् 74वें संविधान संशोधन अधिनियम ने भौगोलिक रूप से पूरे भारत में सैकड़ों छोटी स्थानीय सरकारें बिखेर दीं। अपने-अपने अधिकार क्षेत्रों वाली सरकारों का गठन हुआ। भारत इस प्रकार "संघों का संघ" बन गया। 74वें संविधान संशोधन अधिनियम ने शहरी स्थानीय सरकारों को न केवल संवैधानिकता प्रदान की बल्कि इसका जीवन, संरचना, कार्य प्रणाली और वित्त में भी सुधार किया। एम. ए. हुसैन की दृष्टि में "कानून की प्रचुरता के बाद भी, यह विडम्बना है कि शहरी स्थानीय निकायों के कार्य में सुधार की अपेक्षा और गिरावट आई। अत्यधिक कानूनों को बनाने का मुख्य उद्देश्य जनता को शक्तियाँ प्रदान करना था। इसके स्थान पर नौकरशाही की एक श्रृंखला का निर्माण हो जाएगा, जो समस्या तथा दुविधा उत्पन्न करेगा तथा अधिक चर्चित नगरपालिका अधिनियम की सुचारु कार्य प्रणाली का निषेध करेगा।

15.6 मुख्य अवधारणाएँ

निजी सार्वजनिक साझेदारी (Public Private Partnership) : योजना बनाने, जनता का समर्थन प्राप्त करने तथा मुख्य सामाजिक कार्यक्रमों के लिए भुगतान या परस्पर लाभदायक परियोजनाओं के निर्माण हेतु स्थानीय सरकारों तथा व्यापारिक समुदाय का संयुक्त प्रयास।

सरकार की परिषदें (Councils of Government) : स्थानीय मामलों के समन्वय में सहायता के लिए विभिन्न स्थानों का प्रतिनिधित्व करते पर्यवेक्षण निकाय।

वितरणीय नीति (Distributive Policy) : व्यक्तियों या वर्गों को सहायता तथा लाभ उपलब्ध कराने हेतु सामान्य कर निधियों के उपयोग से सम्बन्धित नीति।

15.7 संदर्भ व अन्य लेख

झा, सी., 1953, *इंडियन लोकल सेल्फ–गवर्नमेंट,* नावल्टी, पटना।

माहेश्वरी, एस. आर., 1999, "लोकल गवर्नमेंट इन इंडिया, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

कंस्टीट्यूशनल प्रेन्बीसन्स रिलेटिंग टू विलेज पंचायतस् एण्ड म्यूनीसिपेलिटीस इन इंडिया, कंटेनिंग दी कन्स्टीट्यूशन 74वाँ अमेंडमेंट एक्ट, 1992, इस्टर्न बुक कम्पनी।

बक्शी, पी.एम., 2000, दी कन्स्टीट्यूशन ऑफ इंडिया विद् सलैक्टिव कमेंटस, यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली।

अरोड़ा, रमेश, के. (सम्पा.) 2001, *पीपल सेंटर्ड गवर्नेंस,* आलेख पब्लिशर्स, जयपुर।

चौबे, पी.के., 2004, "गवर्नेंस विद सेल्फ रिलायंस" इन *अर्बन लोकल बोडिज इन इंडिया : गवर्नेंस विद सेल्फ–रिलायंस,,* भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली।

रीगन, मिखाइल, डी, 1972, "दी न्यू फेडलिज्म", यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू यार्क।

सिंह, कुलवंत, 2001, "अर्बन गवर्नेंस इन इंडिया : ट्रेन्डस एण्ड इश्यूज, इन डिसेंट्रलाइजेंशन", "गुड गवर्नेंस कैम्पीइन, इंडिया लॉच" में सम्मिलित।

शिवारामा कृष्णा के.सी., 2000, *पॉवर टू दी पीयुपल : दी पॉलिटिक्स एंड प्रोग्रेस ऑफ डिसेंट्रलाइजेशन,* कोणार्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

पेथे, अभय, अजीज कार्निक और दिलीप कारमेकर, 2003, "फाइनेंस ऑफ अर्बन लोकल बोडिज इन महाराष्ट्र : ए स्टेटीस्टीकल प्रोफाइल, इंडिया इंफ्रास्टक्चर रिपोर्ट, 2003 में सम्मिलित।

मुखर्जी, आर. के., 1958, "लोकल गवर्नमेंट इन इंनीसेंट इंडिया", मोतीलाल, दिल्ली।

शर्मा, एम. पी., 1965, "लोकल सेल्फ–गवर्नमेंट इन इंडिया", किताब, इलाहाबाद।

ट्रिंकर, एच., 1954, "फाउंडेशन्स ऑफ लोकल सेल्फ–गवर्नमेंट इन इंडिया", पाकिस्तान और बर्मा, यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन।

खातून, शाहीदा, 1980, "ब्यूरोक्रेसी एंड लोकल सेल्फ–गवर्नमेंट इन इंडिया", पीएच.डी. शोध, राजनीतिक विज्ञान विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय।

माहेश्वरी, एस.आर., 1971, "लोकल गवर्नमेंट इन इंडिया", ओरियंट, दिल्ली।

जैक्सन, डब्ल्यू. ई., 1945, "लोकल गवर्नमेंट इन इंग्लैण्ड एण्ड व्हेल्स" हंट, आयुबुरी।

सिंह, एस. के., 1998, "टूवर्डस इफ्टेवि डिस्ट्रिक्ट प्लानिंग कमेटी, योजना 42(4), अप्रैल, 1998, पृष्ठ 15–18।

सिंह, यू. बी., 2004, "अर्बन एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडियाः एक्सीपीरियंस ऑफ फिफ्टी ईयर्स, सीरलस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

15.8 अभ्यास

1) भारत में स्थानीय सरकार के उद्भव पर चर्चा कीजिए।

2) 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के पश्चात् शहरी स्थानीय सरकार पर इसके प्रभाव की चर्चा कीजिए।

इकाई 16 अंतर-स्थानीय सरकार सम्बन्ध – I : ग्रामीण

रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 ग्राम सभा और ग्राम पंचायत

16.3 सदस्यता के माध्यम से संबद्धता

16.4 अधिकारों और कार्यों का अंतःस्तरीय वितरण

16.5 अंतःस्तरीय दायित्व : ग्यारहवीं अनुसूची

16.6 अंतःस्तरीय कार्यान्वयन में बाधाएँ

16.7 सारांश

16.8 मुख्य अवधारणाएँ

16.9 संदर्भ व अन्य लेख

16.10 अभ्यास

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- स्थानीय सरकार की संस्थाओं के विभिन्न स्तरों के बीच आंतरिक सम्बन्धों का वर्णन कर सकेंगे;
- संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची के अनुसार अंतःस्तरीय दायित्वों (Intra-tiers responsibilities) को परिभाषित कर सकेंगे; और
- अंतःस्तरीय कार्यान्वयन (intra-tiers implementation) में बाधाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

73वें एवं 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों ने स्थानीय शासन में बड़े संरचनात्मक परिवर्तन किए हैं। अभी तक स्थानीय सरकारी संस्थाएँ राज्य सरकारों की तरफ से कार्य करने वाले अभिकरण मात्र बन कर रह गई थीं और वह भी स्थायी आधार पर नहीं। नीति की योजना बनाने के संदर्भ में स्थानीय स्तर पर पहल का स्पष्टतः अभाव था। बार-बार निरस्त करना, अनियमित चुनाव, अधिकारों और कार्यों का अपर्याप्त हस्तांतरण और सर्वाधिक कमजोर बनाने वाले तथ्य अपर्याप्त संसाधनों ने स्थानीय इकाइयों को स्व-सरकार की प्रभावहीन संस्थाएँ बना दिया था। इसके अतिरिक्त स्तरों की संख्या के बारे में अस्पष्टता बनी रही क्योंकि बलवंत राय मेहता समिति ने तीन स्तरों का सुझाव दिया था जबकि अशोक मेहता समिति ने दो स्तरों अर्थात् मंडल पंचायतों और जिला परिषद की सिफारिश की थी। नए संशोधन ने पूर्व तर्क अर्थात् तीन स्तरीय प्रबंध को स्थापित किया और ग्यारहवीं अनुसूची में 29 मुद्दों को विनिर्दिष्ट किया जिनके बारे में राज्य सरकार को स्थानीय सरकारों को कार्य हस्तांतरित करने का विकल्प था। इसके साथ 73वें संवैधानिक संशोधन द्वारा प्रदत्त राज्य अधिनियम और राज्य वित्त आयोग द्वारा तदानुरूप अधिकार और संसाधन भी हस्तांतरित किए गए।

समिति व्यवस्था में प्रत्येक स्तर पर क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया है जो स्तरों के बीच सूचना और विशेषज्ञता का आधार-प्रदान करने के लिए माध्यम (नली) के रूप में कार्य करते हैं जो वास्तव में प्रभावी मूलभूत स्तरीय योजना के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है जैसा कि 73वें संवैधानिक संशोधन में प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि विषय के बारे में संवैधानिक संशोधन कुछ नहीं कहता तो भी इन स्तरों पर समितियाँ हमेशा कार्यरत रहती हैं। यद्यपि किसी भी राज्य के कानूनों में गाँव और समिति स्तरों पर समितियों के लिए कोई प्रावधान नहीं हैं तो भी हरियाणा को छोड़कर सभी राज्यों के कानून परिषद स्तर पर समितियाँ प्रदान करते हैं। ग्राम पंचायत स्तर पर समितियों की संख्या, उनकी संरचना, स्थिति और कार्य विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न हैं। समितियों की संरचना विशिष्ट कार्य विषयों के लिए भी की जाती है। परन्तु वे अपने क्षेत्राधिकार को पार सकती हैं जैसा कि आंध्र प्रदेश में ग्राम सभा से संबद्ध लाभप्रद समिति (Beneficiary Committee) ने किया। आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र को छोड़कर सभी राज्यों ने समिति स्तर पर समितियाँ बनाई हैं। यदि राज्य सरकार द्वारा आवश्यक समझा जाए तो आंध्र प्रदेश में मंडल पंचायत अपनी तरफ से किसी संयुक्त उद्देश्य के लिए अन्य स्थानीय प्राधिकरणों के साथ एक संयुक्त समिति का गठन कर सकती है (बाजपेयी व वर्मा, 1995)।

सम्बन्धित सरकारी और ग़ैर-सरकारी स्रोतों से विशिष्ट सूचनाओं के मिलान में समितियों को किस प्रकार और किस मात्रा में उपयोग किया जाएगा यह विभिन्न राज्यों में विशेष आवश्यकताओं एवं बाधाओं, राजनीतिक बाधाओं व अधिक संभाव्य संसाधनों की बाधाओं के अनुसार इस सम्बन्ध में बनाए गए प्रबंधों पर निर्भर करेगा। फिर भी समिति व्यवस्था ने अंतः स्तर और अंतर क्षेत्राधिकार समन्वय/सहयोग के अत्यधिक अवसर प्रदान किए हैं जो ठोस शहरी ग्रामीण विकास के लिए अत्यधिक लाभदायक होंगे।

स्थानीय सरकारें किस सीमा तक स्व-सरकार की संस्थाओं के रूप में विकसित हुई हैं यह इस संदर्भ में राज्य के इतिहास पर और परम्पराओं एवं रूढ़ियों पर निर्भर करेगा। उदाहरण के लिए कुछ राज्य दूसरे राज्यों से अच्छे लोकतांत्रिक नियमों का पालन करते हैं जैसा कि कर्नाटक, केरल, पश्चिम बंगाल और मध्य प्रदेश एवं कुछ अन्य राज्यों ने इसका उल्लंघन करने की अपेक्षा इसे प्राथमिकता दी जबकि बिहार, उत्तर प्रदेश और अन्य अधिकतर राज्यों ने इसके प्रावधानों का उल्लंघन किया। इस इकाई में हम योजना, दायित्वों और कार्यान्वयन के संदर्भ में अंतःस्तरीय स्थानीय सरकार के सम्बन्धों की चर्चा करेंगे।

16.2 ग्राम सभा और ग्राम पंचायत

73वें संवैधानिक संशोधन ने बीस लाख से अधिक आबादी वाले सभी राज्यों के लिए तीन-स्तरीय पंचायत निर्धारित की है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक मामले में गाँवों में (ग्राम पंचायत) मध्यवर्ती (पंचायत समिति) तथा जिला स्तरों पर (जिला परिषद) पंचायतें होंगी। ग्राम सभा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्था है जहाँ लोगों की भागीदारी को आमंत्रित किया जाता है। पहले जहाँ ग्राम सभा विद्यमान थी तो यह एक निकाय की हैसियत के साथ स्थाई पद और सामान्य मोहर के साथ कार्य करती थी। इसके पास इनके नाम से इस पर और इसके द्वारा मुकदमा करने, संपत्ति अधिग्रहण करने, रखने या हस्तांतरित करने तथा संविदाएँ करने का अधिकार था। संशोधन के बाद ग्राम पंचायत ने वही हैसियत प्राप्त कर ली है। फिर भी, ग्राम सभा अभी भी एक महत्त्वपूर्ण प्राधिकरण है क्योंकि इसके लिए आवधिक बैठकें करना तथा ग्राम पंचायत को सिफारिशें और सुझाव देना आवश्यक है। इन सिफारिशों और सुझावों पर उचित ध्यान दिया जाता है। दोनों संस्थाओं में अंतर-संम्बन्ध इस तथ्य से भी सुनिश्चित होता है कि ग्राम पंचायत का अध्यक्ष ही ग्राम सभा की बैठकों की अध्यक्षता करता है। अधिकतर राज्यों में ग्राम सभा वार्षिक प्रशासनिक रिपोर्टों पर वार्षिक लेखा विवरण और लेखा परीक्षा रिपोर्टों पर विश्वसनीय विचार प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त ग्राम सभा सामाजिक भाई-चारा सुनिश्चित करने और विभिन्न उद्देश्यों जैसे आपदा प्रबंध, परिवार नियोजन, महिला न्याय और ऐसे अनेक कार्यों के लिए अपने कार्यक्षेत्र में स्वयंसेवी

समूहों को संगठित व व्यवस्थित करने के लिए एक आवश्यक साधन है। ये स्वयंसेवी समूह विकास कार्यक्रमों के लिए लाभार्थियों की पहचान करने, कल्याण कार्यक्रमों के लिए ऐसे धन वितरण का निरीक्षण करने के लिए सरकार के साथ मिलकर कार्य करते हैं जहाँ धन वितरण का निरीक्षण करने के लिए साधनरूपी विशिष्ट नियम नहीं होते। लगभग सभी अवसरों पर अन्य रूपों में भी ग्राम सभा का सहयोग लिया जाता है (बाजपेयी एवं वर्मा, 1995)। फिर भी, दसवीं योजना (2002-07) में भिन्न विचार व्यक्त किए गए हैं। गरीबी उन्मूलन (Poverty Alleviation) के अध्याय में दसवीं योजना (2002-07) स्पष्ट करती है कि ग्राम सभा को केवल आयोजन करने वाले कार्य ही आबंटित किए गए हैं। ग्राम सभा को विकास योजनाओं के प्रभावशाली कार्यान्वियन एवं निगरानी के लिए अधिकार प्रदान करने के लिए इसके अधिकारों और कार्यों में वृद्धि करना आवश्यक है। एक घोषणा की गई है कि सभी विकास कार्यक्रमों का सामाजिक लेखा परीक्षण ग्राम सभा के लिए आवश्यक बनाया जाएगा। एक प्रस्ताव है कि पंचायतों में निर्णय-निर्माण प्रक्रिया को अधिक भागीदारी बनाने के लिए कई राज्यों द्वारा अपनाई गई समिति व्यवस्था को राज्य पंचायत अधिनियमों में भी शामिल किया जाना चाहिए। अनुसूची V में वर्णित क्षेत्रों के लिए ग्राम सभा को दिए गए अधिकार उसी प्रकार ग़ैर-अधिसूचित क्षेत्रों में भी ग्राम सभाओं को दिए जा सकते हैं। भारतीय संविधान की अनुसूची V जनजातीय आबादी वाले क्षेत्रों में प्रशासन के लिए विशेष प्रावधान प्रदान करती है। उनके विशिष्ट सरोकार को लक्ष्य कर नीति के माध्यम से जनजातीय उत्थान करना इन क्षेत्रों में प्रशासन की मुख्य कार्यसूची रहती है।

16.3 सदस्यता के माध्यम से संबद्धता

सदस्यता के माध्यम से अंतःस्तरीय संबद्धता के बारे में संवैधानिक संशोधन अधिनियम ने ग्राम पंचायतों और मध्यवर्ती पंचायतों के क्रमशः उच्च स्तर अर्थात् जिला पंचायतों के अध्यक्ष के प्रतिनिधित्व का मामला राज्य सरकारों के विवेक पर छोड़ दिया है। गुजरात, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में ग्राम पंचायतों और मध्यवर्ती स्तर पर पंचायतों में अध्यक्षों का प्रतिनिधित्व नहीं है। कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश और राजस्थान के मामले में मध्यवर्ती पंचायत स्तर पर हर साल बारी-बारी से पंचायतों के कुल अध्यक्षों का एक/पाँचवें हिस्से के बराबर अध्यक्षों के प्रतिनिधित्व का प्रावधान है। तमिलनाडु और हरियाणा के मामले में ग्राम पंचायतों के अध्यक्षों के बारी-बारी से चुनाव का प्रावधान है जो मध्यवर्ती पंचायतों के कुल निर्वाचित सदस्यों के पाँचवें हिस्से के बराबर है। पंजाब ने भी मध्यवर्ती स्तरों पर जिला पंचायत अध्यक्षों के प्रतिनिधित्व के संदर्भ में कमोबेस यही स्वरूप अपनाया है। जहाँ तक जिला स्तर पर पंचातयों में माध्यमिक स्तर पर पंचातयों के अध्यक्षों के प्रतिनिधित्व का प्रश्न है गुजरात और महाराष्ट्र को छोड़कर सभी राज्यों ने प्रतिनिधित्व का प्रावधान किया है। आंध्र प्रदेश और राजस्थान में उन्हें स्थायी आमंत्रित सदस्य माना जाता है। तमिलनाडु के मामले में यह प्रतिबंध है कि कुल निर्वाचित सदस्यों के पाँचवें हिस्से के बराबर की संख्या में ही अध्यक्ष जिला स्तर पर होंगे। अपने कार्य क्षेत्र में कार्यरत पंचायतों के क्रमिक स्तरों पर संसद सदस्यों और विधायकों के प्रतिनिधित्व का निर्णय राज्य विधान मंडलों पर छोड़ा गया है (बाजपेयी एवं वर्मा, 1995)।

16.4 अधिकारों और कार्यों का अंतःस्तरीय वितरण

जब से बलवंतराय मेहता समिति ने कार्यों और अधिकारों के सार्थक और प्रभावी हस्तांतरण के लिए राज्य सरकारों की अनिच्छा को व्यक्त किया है तबसे अधिकारों और कार्यों के संदर्भ में कार्य वितरण और तीनों स्तरों का सापेक्ष महत्त्व काफ़ी बढ़ गया है जो आज तक जारी है। स्थानीय स्तर पर विकेन्द्रित शासन में चीजों की योजना के आधार के रूप में पंचायत समिति रखने के पक्ष में मेहता समिति की सिफारिशों के बावजूद अधिकतर राज्यों ने मज़बूत जिला परिषद का समर्थन किया। यहाँ तक यह कहा गया कि स्थानीय शासन के लोकतांत्रिक मंच के रूप में विकसित करने के लिए जिला विकास परिषद वास्तव में सही संस्था है जिन्हें जिला स्तर तक सभी विकास कार्य लागू करने के

दायित्व सौंपे जा सकते हैं। यहाँ तक भी अनुभव किया मया कि ग्राम पंचायतों और समितियों के कार्यों का पर्यवेक्षण करने का अधिकार प्रदान करना भी उपयुक्त होगा। यद्यपि राजस्थान ने समितियों को मज़बूत बनाने के द्वारा भिन्न संकेत दिया है लेकिन अपेक्षित परिणाम न मिलने पर कुछ वर्षों बाद इस प्रयोग की समीक्षा की गई (तत्रैव)।

जहाँ तक अधिकारों और कार्यों का सम्बन्ध है ये प्रत्येक स्तर पर दिए जाने चाहिए। बलवंतराय मेहता समिति ने सिफारिश की है कि पंचायती राज संस्थाओं के कार्यों में सामान्यतः सम्बन्धित सामाजिक और आर्थिक विकास के सभी क्षेत्रों को शामिल किया जाना चाहिए। विशेषतः उन्हें जन स्वास्थ्य, स्वच्छ जल, प्रकाश व सफाई व्यवस्था, स्थानीय सड़कें और जनसुविधाएँ जैसे कार्य हस्तांतरित किए जाने चाहिए। इनके साथ विकास कार्यक्रम जैसे कृषि, पशुपालन, मछली पालन, सामाजिक वानिकी, ग्रामीण उद्योग, परिवार नियोजन, शिक्षा, सामाजिक शिक्षा, कल्याणकारी कार्यक्रम, सिंचाई प्रणालियाँ, ग्रामीण विद्युतीकरण जैसे कार्यक्रम जोड़ने चाहिए। गाँव की सीमाओं को प्रभावित करने वाले विषय समितियों को सौंपे जाने चाहिए संपूर्ण जिले से सम्बन्धित कार्य परिषद के पास रहने चाहिए। अन्य सभी कार्य ग्राम पंचायतों के पास होने चाहिए।

अशोक मेहता समिति के अनुसार विकेन्द्रीकरण का प्रयास अधिकारों और कार्यों के प्रभावी और वास्तविक हस्तांतरण के रूप में होना चाहिए न कि राजनीतिक रूप से दिखावटी रूप में। प्रत्यायोजन राज्य सरकारों से आरंभ होना चाहिए। राज्य सरकारों द्वारा किए जाने वाले जिले से सम्बन्धित विकास कार्यक्रम जिला परिषदों को हस्तांतरित कर देने चाहिए। ये कृषि और सम्बन्धित क्षेत्रों, विपणन, स्वास्थ्य, शिक्षा, दूरसंचार, ग्रामीण उद्योग, अत्यंत पिछड़ा वर्गों का कल्याण आदि कार्य होंगे। इसमें कुछ कार्य जैसे कृषि अनुसंधान, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय शिक्षा, एक जिले में बड़े क्षेत्र को शामिल करने वाली या जटिल मध्यम सिंचाई परियोजनाएँ तथा प्रायोगिक परियोजनाएँ आदि शामिल नहीं हैं। समिति ने इस पर भी जोर दिया कि हस्तांतरित दायित्वों का दक्षता से निर्वाह करने के लिए संस्थाओं को उसके अनुरूप संसाधन भी प्रदान किए जाने चाहिए। विकास कार्य से सम्बन्धित विनियामक कार्य भी सम्बन्धित स्तरों पर हस्तांतरण के साथ सौंपे जाने चाहिए। अनुभव किया जाता है कि स्थानीय समूहों को नियंत्रण सौंपने के द्वारा संसाधन प्रबंधन को दक्षता से किया जा सकता है और समुदायों को सशक्त करने के द्वारा तथा स्थानीय स्तर पर प्रेरक मध्यस्था के माध्यम से स्वः सहायता को प्रेरित कर गरीबी एवं अक्षमता को अच्छी तरह संभाला जा सकता है।

73वें संवैधानिक संशोधन का समग्र आग्रह सुझाव देता है कि इसने नागरिक सुविधाओं, सार्वजनिक स्वच्छता, लोक कार्य की देखभाल, प्राथमिक शिक्षा, कृषि उत्पादन, ग्रामीण उद्योग तथा प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल, महिला और बाल कल्याण आदि विषयों को आबंटित कर दिया है। पंचायत समितियों के कार्य उन्हें सौंपी गई विभिन्न स्थानीय योजनाओं एवं अपने संसाधनों से उत्पन्न कुछ कार्यों सहित सीमित हैं। जिला पंचायतों को सामान्यतः सलाहकार और धन वितरण संस्थाओं के रूप में रखा गया है। केवल कुछ राज्यों में उन्हें महत्त्वपूर्ण कार्य दिया गया है। 73वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा राज्य सरकारों को स्व-शासन की संस्थाओं के रूप में स्थानीय संस्थाओं को विकसित करने और इस उद्देश्य के लिए उपयुक्त अधिकार और शक्तियाँ प्रदान करने का दायित्व दिया गया है।

हस्तांतरण निम्नलिखित के सम्बन्ध में किया जाना है :

- आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की योजनाएँ बनाना;
- सौंपे जा सकने वाले आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की योजनाओं और ग्यारहवीं अनुसूची में वर्णित मामलों के सम्बन्ध में योजनाओं का कार्यान्वयन (तत्रैव)।

16.5 अंतःस्तरीय दायित्व : ग्यारहवीं अनुसूची

ग्यारहवीं अनुसूची के गहन अध्ययन से पता चलता है कि स्थानीय संस्थाओं को बड़े दायित्व आबंटित किए गए हैं। वास्तव में ये देश की उसके द्वारा भविष्य में होने वाले उस विकास के बारे में अपनाई जाने वाली दिशा निश्चित कर सकते हैं जो अधिकांशतः स्थायी विकास, शिक्षा और अभी तक कमजोर वर्गों के कल्याण से सम्बन्धित हैं; क्योंकि भारत मुख्यतः एक कृषि प्रधान देश अथवा कृषि अर्थव्यवस्था वाला देश है। पर्यावरणीय और सामाजिक सरोकारों का (उन्हें ग्यारहवीं अनुसूची में शामिल करने द्वारा) विकेन्द्रीकरण कर दिया गया है। इस प्रकार इसका उद्देश्य ग्रामीण निर्धन लोगों के दैनिक जीवन से सम्बन्धित मामलों के बारे में प्रशासन को लोगों के द्वार तक नजदीक लाने के द्वारा सेवा वितरण की गुणवत्ता में सुधार लाना है। ग्यारहवीं अनुसूची में शामिल सभी मदें स्थानीय लोगों के जीवन यापन से और पर्यावरण नियंत्रण उपायों को गतिशील करने के माध्यम से उनके आवासों को बचाने तथा दैनिक कृषि और जीवन की अन्य गतिविधियों में उनके प्रसार और स्वदेशीकरण करने से सम्बन्धित हैं। चूँकि ये मामले शिक्षा और विस्तार से सम्बन्धित है अतः शिक्षा का विकेन्द्रीकरण ठीक ही किया गया है।

पहला कृषि है जिसमें कृषि का विस्तार करना भी शामिल है। दसवीं योजना के मसौदा (प्रस्ताव) दस्तावेज में राष्ट्रीय आर्थिक विकास में इस विषय की प्रमुखता को मान्यता दी गई है। नई आर्थिक नीति लागू होने विशेषतः 1995-96 से सार्वजनिक निवेश निरंतर कम होता जा रहा है। कृषि में सार्वजनिक निवेश 1993-94 में सकल घरेलू उत्पाद का 1.6 प्रतिशत से कम होकर 1998-99 में 1.3 प्रतिशत रह गया। सार्वजनिक निवेश में कमी व्यवस्था सम्बन्धी कारणों से है जो पारंपरिक समाजवादी मिश्रित अर्थव्यवस्था के ढाँचे से वर्तमान में परिवर्तित होकर व्यवसाय समर्थक व विकास के नव उदार प्रतिमान की तरफ प्रवृत्त हो गई है।

कृषि सम्बन्धी आधारभूत सुविधाओं जैसे सिंचाई प्रबंध, ऋण, भण्डारण, सीधे बाज़ारों तक पहुँच बनाकर विपणन और यहाँ तक निर्यात के प्रबंधन के लिए कृषक सहकारी समितियों को पुनः गतिशील करने के लिए स्थानीय समुदायों को सशक्त करने की चर्चा की जा रही है। इस बात पर बार-बार जोर दिया गया है कि वास्तविक लोकतंत्र केवल तभी आ सकता है जब लोगों को वास्तव में सशक्त बनाया जाए और यह तभी संभव है जब उनके पास अपने संसाधन हों और उनका नियंत्रण उनके पास हो। जब तक संसाधनों पर नियंत्रण नहीं किया जाता है तब तक अव्यवस्था या उपलब्धता का अभाव आज की अव्यवस्था/दुसाध्य मुसीबत बन जाएगा। इससे सेवाओं के विस्तार में भी सुधार होगा क्योंकि इसमें अपने हिस्सेदारी होगी। कृषि विस्तार प्रणाली और सूचना सहायता कई राज्यों में अप्रचलित हो गई लगती है। कार्मिकों द्वारा स्थापित विश्व बैंक सहायता से चलने वाला प्रशिक्षण और यात्रा कार्यक्रम अधिक सक्रिय नहीं है। मुद्रित और इलेक्ट्रानिक संचार माध्यम और निजी क्षेत्र विशेषतः (सूचना) निवेश अभिकरण और व्यवसायी वर्ग अब किसानों के लिए मुख्य सूचना स्रोत रह गए हैं (दसवीं योजना)।

सहकारी समितियाँ प्राकृतिक संसाधनों जैसे जल, आदि के दुरुपयोग की रोकथाम में सहायता करेगी क्योंकि किसानों के साथ स्वेच्छा के आधार पर सहभागी प्रबंध किए जाएँगे जिससे स्थायी विकास का और अधिक कार्य होगा। स्वेच्छया सहकारी प्रबंधों के माध्यम से सर्वश्रेष्ठ परम्पराओं को आत्मसात किया जा सकेगा। सहकारी संस्थाओं की कार्य प्रणाली अतीत में निम्नलिखित कारणों से खराब रही है :

- सहकारी संस्थाएँ कठोर नौकरशाही नियंत्रण और राजनीतिकरण के कारण प्रभावित हुई जिसके कारण वे अपने उद्देश्य के अनुरूप लोकतांत्रिक स्व-सहायक संस्थाओं के रूप में विकसित नहीं हो सकीं।

- उनका संचालन सुदृढ़ प्रबंध सिद्धान्तों पर नहीं हुआ अतः उन्हें पुनः जीवित करने के लिए प्रबंध विज्ञान जैसे संपूर्ण गुणवत्ता प्रबंध (Total Quality Management; TQM), कार्यनीति सम्बन्धी निर्णय निर्माण, विपणन आदि जैसे प्रबंध शास्त्र से श्रेष्ठ परम्पराएँ कार्य प्रणाली में शामिल करनी होंगी। महिलाओं की उपस्थिति नगण्य थी जिससे सामाजिक आंदोलन के रूप में सहकारी संस्थाओं का प्रभाव कम हो गया।

- उनकी कार्य प्रणाली को समझौतावादी बनाने पर सहकारिता पर राष्ट्रीय नीति का अभाव।

- उनके पास पर्याप्त आधारभूत सहायक सेवाएँ जैसे विपणन, भण्डारण आदि का अभाव था इस प्रकार वे अंतःसम्बन्धित क्षेत्रों में नेटवर्क के रूप में कार्य नहीं करती थी (समंत रै, 2004)।

चीन में सहकारी कृषि की स्थापना के तरीके एक सुविचारित व्यवस्था के रूप में तलाश किए जा रहे हैं। जो उद्यमियों, वैज्ञानिक एवं तकनीकी श्रमिकों और किसानों की एक यूनियन बनेगी। उद्यमी बाज़ार सर्वेक्षणों, उत्पाद श्रेणियों और बाज़ार में उनकी अपेक्षित माँग और पूरी तैयारी तथा बिक्री का अनुमान लगाएँगे। वैज्ञानिक और तकनीकी श्रमिक उन्नत प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने के प्रभारी होंगे जिसमें उन्नत और लाभदायक प्रकार की कृषि प्रौद्योगिकी को लोकप्रिय बनाना तथा जैव-अभियांत्रिकी और जिन अभियांत्रिकी का इस्तेमाल करना भी शामिल है। यद्यपि अकेले किसान बुनियादी उत्पादन इकाई रह गए है तो भी उनकी यूनियन में सदस्यता कृषि के औद्योगिकीकरण में और कृषि आय बढ़ाने में सकारात्मक महत्त्व अनुभव करने में सहायक हो सकती है। चीन का उदाहरण प्रासंगिक है क्योंकि औसत किसान की समस्याएँ अधिकांशतः समान है तथा उद्योग के समक्ष विषय भी समान है (यांग, 2001)।

स्वेच्छया प्रयास का एक अन्य सकारात्मक परिणाम कृषि क्षेत्र में सामूहिक प्रयास का होगा जिससे किसानों के मध्य स्वेच्छां प्रबंध से आर्थिक बचत होगी जिसका वर्तमान कृषि क्षेत्रों में अभाव है क्योंकि अभी तक गहन वैयक्तिक प्रयास रहे हैं। सभी विकसित देशों में व्यावसायिक स्वरूप में बड़े परिवर्तन हुए हैं। प्राथमिक क्षेत्र विशेषतः कृषि से स्थानांतरित होकर दूसरे क्षेत्र (उद्योग) और तीसरे क्षेत्र की तरफ परिवर्तन हुआ है (विकसित देशों में अब सेवा क्षेत्र मुख्य हो गया है) भारत में ऐसा कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। वास्तव में 1970-71 में औसत जोत क्षेत्र 2.28 हेक्टेयर से कम होकर 1990-91 में 1.57 हेक्टेयर रह गया था। जिसका अभिप्राय यह है कि भूमि की एक इकाई पर दबाव 2.25 गुणा बढ़ गया था इससे कृषि में और अधिक लगे रहने का सुझाव मिलता है। इसके अतिरिक्त कृषि उपकरणों की गुणवत्ता भी संतोषजनक नहीं थी। इसकी सफाई में एक कारण यह दिया जाता है कि कृषि उपकरण और उपस्कर लघु औद्योगिक क्षेत्र के लिए आरक्षित थे। अतः इनकी अच्छी गुणवत्ता सुनिश्चित नहीं की जा सकती थी। आधुनिक तकनीक और सूक्ष्म कृषि तकनीकें तो काफी दूर थी। अब पूर्णतया स्पष्ट सुझाव मिलता है कि अब वृहत् पूँजीवादी कृषि को बढ़ावा देने की आवश्यकता है तो भी वर्तमान स्वामित्व स्वरूप में यह संभव नहीं लगता। वांछित आर्थिक बचत के लिए एक व्यक्ति के पास वांछित कितना समेकन होना चाहिए? सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का हिस्सा 1950-51 में 61 प्रतिशत से कम होकर (2001-02) में 24.2 प्रतिशत रह गया था जबकि कृषि पर निर्भरता मामूली सी कम हुई जो इस अवधि में 77 प्रतिशत से कम होकर 69 प्रतिशत थी।

तीसरा परिणाम है लघु सिंचाई, जल प्रबंधन और जल संचय विकास। ग्यारहवीं अनुसूची में इन्हें रखने का अभिप्राय यही था कि स्थानीय समुदायों में समुदायवाद को प्रोत्साहित करना ताकि प्राकृतिक संसाधनों का बेहतर और अधिक सतत् उपयोग किया जाए और इसके लिए स्थानीय सार्वजनिक वस्तुओं का विकेन्द्रित प्रबंधन और संचालन किया जाए। स्पष्टतः यह कार्य एक स्थानीय संस्था जोकि पंचायत है के तत्वाधान में स्थानीय स्तर पर प्रोत्साहित करके ही किया जा सकता है। सार्वजनिक

वस्तुओं का स्थानीय संचालन/प्रबंधन को अधिक उपयोगी और महत्त्वपूर्ण विकल्प समझा जाता है। जल प्रबंधन की देशी परम्पराओं में अनुसंधान और विकास के माध्यम से श्रेष्ठ परम्पराओं को अपनाया जा सकता है तथा इसके लिए स्थानीय प्रयासों को बढ़ावा दिया जाए। जल संचय विकास का उद्देश्य बहते पानी के सुरक्षित निकास पर आधारित भूमि संरक्षण की पारंपरिक क्रियाओं से हटकर स्वदेशी परम्पराओं पर आधारित वर्षा जल को संरक्षित करना है। जल संचय विकास का उद्देश्य ग्रामीण निर्धन वर्ग की बुनियादी जल आवश्यकताओं को पूरा करना होगा। वर्षा जल प्रबंधन में जल के बहुआयामी उपयोग जैसे पशुओं और वन्य जीवों, लोगों के लिए पेय जल, जीवन सुरक्षा और फसलों की बुआई पूर्व सिंचाई, वनस्पति की पुनरुत्पादन और प्राथमिकता के आधार पर अन्य उपयोग सुनिश्चित करना है। वर्षा जल को उपयुक्त सामुदायिक परंपराओं के विकास के द्वारा अभिव्यक्ति के संसाधन के रूप में माना जाना चाहिए जिससे उपयोग के लिए बराबर वितरण सुनिश्चित होगा। वानस्पतिक भूमि संरक्षण उपायों, विकास में पांडय प्रजातियों के उपयोग और पर्यावरण के लिए अनुपयुक्त हानिकारक कीटनाशकों के स्थान पर बंजर भूमि के कृषि योग्य बनाने में स्वदेशी पर्यावरण के अनुकूल परंपराओं को प्रोत्साहित किया जाएगा। पंचायत संस्थाएँ और सरकारी क्षेत्र ग्रामीण निर्धन वर्ग की बुनियादी व्यापक उन जैव आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बंजर भूमि और जंगलों को सुरक्षित करने में सक्रिय रूप से भाग लेंगे जो छोटे-छोटे जंगली उत्पाद हैं जैसे महुआ, चिरौंजी, शहद, गोंद, ईंधन और पशुओं के लिए चारा तथा लघु और कुटीर उद्योगों जैसे टोकरी और चटाई बनाने के लिए कच्चा माल आदि। कुछ ग़ैर-सरकारी संगठनों ने बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने और व्यापक प्राकृतिक वातावरण की सुरक्षा के लिए ग्रामीणों को देहाती भूमि पट्टे और संविदा के आधार पर देने की परंपरा आरंभ कर दी है। जमीनों को पुनः पट्टे पर देने के लिए पुनः प्राप्त किया जाता है (दसवीं योजना)।

इस सम्बन्ध में छठा विषय है सामाजिक वानिकी और कृषि (फार्म) वानिकी। पर्यावरण सुरक्षा के विकेन्द्रीकरण में पुनः वहीं तर्क है कि यदि स्थानीय लोगों को वनों के संरक्षण और विकास में हिस्सेदार बनाया जाए तो उनकी अच्छी सुरक्षा हो सकती है। नई वन नीति के अनुसार संयुक्त वन प्रबंधन (Joint Forest Management; JFM) के विचार की चर्चा ने उपरोक्त विचार/तर्क की परंपरा का समर्थन किया है। संयुक्त वन प्रबंधन के एक भाग के रूप में वनस्पतियों की प्रजातियों और उन्हें संरक्षित रखने के तरीके के बारे में जानकारी विशेषतः ग्रामीण महिलाओं की जानकारी का अच्छे वन संरक्षण के लिए उपयोग किया जाएगा। इसके अतिरिक्त निजी कम्पनियों द्वारा वन संसाधनों के दोहन को रोका जाएगा। लकड़ी आधारित उद्योगों को पके हुए और संसाधित सामग्री के उपयोग तथा लकड़ी उत्पादों के लिए मानकों और नियमों को बढ़ावा देने आदि के बारे में निरर्थक नियमों को कम करने और संशोधित करने के लिए आधुनिक कार्यक्रम बनाने होंगे। निजी लकड़ी व्यापारियों द्वारा वन संसाधनों के निरंकुश दोहन को रोकने के लिए सामुदायिक काष्ठ भूखण्डों और सार्वजनिक काष्ठ भूखण्डों को बढ़ावा दिया जाएगा। संयुक्त वन प्रबंधन के अंतर्गत स्थानीय समुदायों को वन संसाधनों की आय में से हिस्सा दिया जाएगा जिससे उनकी आय बढ़ेगी तथा वे वन प्रबंधन में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित होंगे। चूँकि यह कार्य स्थानीय स्तर पर ही अच्छे ढंग से लागू किया जा सकता है अतः इसे ग्यारहवीं अनुसूची में शामिल किया गया है। पंचायती राज संस्थाओं को इस हरियाली कार्यक्रम में और प्रभावशाली कानूनी सहायता के साथ संयुक्त वन प्रबंधन योजना (Joint Forest Management Scheme; JFMS) को सही तरीके से संस्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी।

चौथा है, पशुपालन, डेयरी और मुर्गी पालन। सार्वभौमिक रूप से यह स्वीकार किया गया है कि कृषि और पशुपालन में सतत् विकास के लिए प्राकृतिक पशु जैविक संसाधनों का संरक्षण और उनका सुधार करना अनिवार्य है। पशुओं की देशी नस्लों में उनके समाप्त होने तक क्रास बिडिंग (संकर नस्ल) तैयार की जाए जो अच्छी तरह से फसलों का भूसा खाने सहित स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल हो। अतः संरक्षण और विकास कार्यक्रमों का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए और ग़ैर-सरकारी संगठनों को

सक्रिय रूप से शामिल किया जाना चाहिए। इस प्रकार विकेन्द्रीकरण की दिशा में दसवीं योजना ने अपना रूप "जटिल पशुधन खेती से परिवर्तित कर पुष्ट और शक्तिशाली पशुधन तथा मुर्गीपालन पर केन्द्रित किया"।

दसवीं योजना में पशुधन उत्पादों को संसाधित और वितरण करने के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी हस्तांतरण एक दबाव वाला क्षेत्र रहेगा जिसके लिए ज्ञान हस्तांतरित करने और पशुपालन विद्यालयों, महाविद्यालयों, कृषि विज्ञान केन्द्रों ओर राज्य कृषि विश्वविद्यालयों तथा उनके क्षेत्रीय केन्द्रों के बीच ज्ञान नेटवर्क स्थापित करने के लिए विस्तार सेवाएँ प्राप्त की जाएँगी। प्रौद्योगिकी हस्तांतरण को सुगम बनाने तथा अच्छे पशुधन उत्पादन के लिए स्वच्छता और वनस्पति स्वच्छता का कार्य करने के लिए पशुपालन तथा डेयरी विभाग सहित पशु अनुसंधान संस्थानों का संघटन करना आवश्यक है। सजग और प्रशिक्षित विस्तार कार्मिकों के माध्यम से ज्ञान उत्पन्न और प्रसारित करने के लिए तथा सम्बन्धित क्षेत्रों में किसानों, ग़ैर-सरकारी संगठनों और विशेषज्ञ अभिकरणों के बीच सहयोग के माध्यम से मानव संसाधन विकास किया जाएगा। इसके अतिरिक्त पशुपालन और डेयरी कार्यों से सम्बन्धित मामलों में कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास मंत्रालय तथा पारंपरिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय आदि के बीच परस्पर व्यापन को ऐसी योजनाओं में समेकित और अभिमुखी प्रयासों के माध्यम से दूर किया जाएगा।

पाँचवां है मत्स्य पालन। जलचर पालन और फसल उत्पादन के लिए जलाक्रांत भूमि को खेती योग्य बनाया जा सकता है। भूमि के क्षारीय और लवणीय तत्वों को प्रभावशाली निकास के द्वारा संसाधित किया जाएगा। लागू प्रौद्योगिकी लोगों की सक्रिय भागीदारी के आधार पर पर्यावरण/लोगों के अनुकूल होगी। सातवाँ है लघु वन उत्पाद जो पुनः नई वन नीति में और जल संचय विकास योजना में, उद्धृत है, जिनका अध्ययन ऊपर किया जा चुका है।

आठवाँ है खाद्य संस्करण उद्योग सहित लघु उद्योग। यह क्षेत्र ग्रामीण प्रकृति का है इसलिए ग्यारहवीं अनुसूची में रखा गया है। इन क्षेत्रों की प्रगति कई प्रकार की बाधाओं जैसे समय पर ऋण न मिलना, अप्रचलित तकनीक, आधारभूत सुविधाओं की कमी, विपणन बाधाएँ और अत्यधिक नियंत्रण विनियम, दमघोंटू नेतृत्व के कारण बाधित हुई। उदारीकरण के अंतर्गत 85 मदों को आरक्षणमुक्त करने से भी यह उद्योग प्रभावित हुआ। एक नई नीति पैकेज (2004-05) घोषित किया गया है। संयंत्र और मशीनों में निवेश की सीमा तथा भारतीय रिज़र्व बैंक से ऋण सीमाओं को बढ़ाया गया है। लघु और और मध्यम श्रेणी के उपक्रमों को मिलाने का प्रस्ताव है तथा सन् 2004 से सिडबी ने 10,000 करोड़ रुपये का एक लघु और मध्यम श्रेणी उद्योग कोष भी चालू किया है। उपरोक्त कठिनाइयों/बाधाओं को दूर करने की तरफ भी ध्यान दिया जा रहा है (आर्थिक सर्वेक्षण, 2004-05)। पंचायत संस्थाओं के अभिकरण इन लाभों को लघु औद्योगिक क्षेत्र में प्रभावी रूप से पहुँचा सकते हैं और वर्णित आवश्यकताओं के संदर्भ में इन क्षेत्रों के योजना प्रयासों में सक्रिय रूप से शामिल हो सकते हैं। अच्छी उत्पादकता और गाँवों में रोज़गार के लिए व्यक्तिगत प्रयासों को प्रेरित कर उद्यमशील गतिविधियों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है।

नौवाँ, खादी, गाँव और कुटीर उद्योग है। भूमंडलीकरण के नए वातावरण में खादी उद्योग अपरिपक्व और अस्पष्ट प्रतिस्पर्धा का सामना कर रहा है। चूँकि यह अशिक्षित निर्धन ग्रामीण का बड़ा रोज़गार साधन है अतः भूमंडलीकरण और मुक्त व्यापार की तरफ परिवर्तित प्रतिमान का पालन करने से उत्पन्न समस्याओं के कारण इस उद्योग को बचाने के उपाय करने होंगे। पिछले कुछ वर्षों से बाज़ार में खादी वस्त्र को सस्ता बनाने की छूट नीति की अनिश्चितता और विपणन सम्बन्धी समस्याओं के कारण खादी व्यापार की प्रगति क्षीण हो गई है। ग्राम उद्योगों को आवश्यकता आधारभूत सुविधाएँ और सहायक सेवाएँ प्रदान करने के लिए ग्रामीण औद्योगिक संपदा और शिल्पकार समूह बनाने के माध्यम से दसवीं योजना में खादी को बढ़ावा देने पर विचार किया गया है। ऐसे समूहों को विकसित भूमि, बिजली, जल,

सामान्य सुविधा केन्द्र, डिजाइन और श्रेष्ठ सामग्री तथा कॉमन पैक की सुविधाएँ प्रदान की जाएँगी। कॉमन सुविधा केन्द्रों का प्रबंध औद्योगिक संपदा के कार्यान्वयन अभिकरणों के द्वारा किया जाएगा। वित्तीय सहायता खादी ग्राम उद्योग निगम (Khadi Village Industries Corporation; KVIC) या राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक – नाबार्ड (National Bank for Rural Development; NABARD), भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक – सिडबी, लोक कार्य और ग्रामीण प्रौद्योगिकी प्रगति परिषद (Council for the Advancement for People Action and Rural Technology; CAPART), कपार्ट आदि जैसे अभिकरणों द्वारा प्रदान की जाएगी। उद्यम का प्रबंधन स्थानीय स्व-शासकीय संस्थाओं को सौंपा जाएगा।

दस से चौदह तक की मदें बुनियादी सेवाओं जैसे आवास ईंधन व चारा पेय जल आदि से सम्बन्धित हैं। स्वच्छ पेय जल के बारे में दसवीं योजना में देखा गया है कि पंचायतें उन जल वितरण परियोजनाओं के संचालन और रखरखाव की जिम्मेदारी उठाने को तैयार नहीं हैं जो अभी तक राज्य के कार्यान्वयन विभागों द्वारा बनाई और लागू की जाती हैं तथा सीधे उपभोक्ताओं को सौंप दी जाती हैं। राज्य सरकारों के पास ग्रामीण स्तर पर इन कार्यक्रमों को लागू करने के लिए सरकारी तंत्र का अभाव है। इसलिए प्रबंध व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है। जल आपूर्ति बढ़ाने की अपेक्षा जल आपूर्ति संरचना अनुमानित माँग और मौलिक संरचना को संभालने की क्षमता के अनुसार होनी चाहिए। हैंडपंपों, लगाने के स्थानों तथा गृहों में कनैक्शन जोड़ने में प्रयोक्ता की प्राथमिकता पर ध्यान देना चाहिए। लोगों को प्रत्येक विकल्प की लागत और लाभों के बारे में सूचित करना चाहिए तथा अपने लिए विकल्प चुनने के लिए कहा जाना चाहिए। इसलिए पंचायती राज संस्थाओं के संरक्षण में भागीदारों के आवश्यक प्रयासों को संगठित किया जा सकता है। पंचायतों को परियोजनाओं का खर्च भी बाँटना चाहिए तथा उनकी देखभाल और अच्छी शिल्प की जिम्मेदारी उठानी चाहिए। इसके अतिरिक्त जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है सामुदायिक संगठनों द्वारा जल संचय प्रबंध साधनों के लिए ठोस प्रयास आवश्यक है क्योंकि उन्हें स्थानीय स्तर पर अच्छी तरह समन्वित किया जा सकता है। चूँकि स्थानीय संस्थाएँ धीरे-धीरे संस्थापित हो रही हैं और उनमें विश्वास भी आ रहा है अतः इस संदर्भ में भावी स्थिति काफी उत्साहवर्धक होगी। अतः कोई भी व्यक्ति पूरे विश्वास के साथ इस विषय को ग्यारहवीं अनुसूची में डालने का समर्थन कर सकता है।

बारहवाँ ईंधन व पशुचारा है। संयुक्त वन प्रबंधन की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। स्थानीय लोगों को ईंधन और चारे की आवश्यकताओं के लिए उगाई जाने वाली वनस्पतियों की जानकारी होती है। अतः वानिकी प्रबंधन के लिए सरकारी अभिकरणों और समुदायों के संयुक्त प्रबंध से दोहरा उद्देश्य पूरा होगा इससे स्थानीय समुदायों की ईंधन और चारे की आवश्यकताएँ पूरी होंगी तथा अन्य वनस्पति प्रजातियों का संरक्षण भी होगा जिन्हें ईंधन के लिए काटा जा सकेगा। सामुदायिक काष्ठ भूखण्डों और सार्वजनिक काष्ठ भूखण्डों के अतिरिक्त ईंधन व चारे, औषधीय पौधों, बाँस इमारती लकड़ी आदि की आवश्यकताओं के लिए फार्मों और आवासीय भूमियों, कम दर्जे किए गए वनों, निर्जन भूमियों, निजी सीमांत भूमियों और कृषि फार्मों को भी इस उद्देश्य के लिए उपयोग किया जा रहा है तथा निजी वृक्षारोपण का स्तर 6 मीटर हेक्टेयर तक बढ़ाया गया है। 1976 से राष्ट्रीय कृषि आयोग द्वारा सामाजिक वानिकी पर जोर देने से प्रयासों को प्रोत्साहन मिला है। देश में 50 प्रतिशत से अधिक लकड़ी की राष्ट्रीय आवश्यकताएँ निजी क्षेत्र द्वारा पूरी की जा रही है। निजी क्षेत्र के योगदान को देखते हुए दसवीं योजना में ऐसे प्रयासों के लिए सरकारी पहल की आवश्यकता की बात कही गई है।

तेरहवाँ सड़कों, पुलियाओं, पुल, नौका, जल मार्ग तथा आवागमन के अन्य साधन है। चौदहवाँ ग्रामीण विद्युतीकरण जिसमें बिजली वितरण करना भी शामिल है। शहरी विकास कोष (UDF) को ग्रामीण क्षेत्रों में मूलभूत संरचनाओं में बड़ी भूमिका निभाने के लिए कहा गया है। ग्रामीण इंफ्रास्ट्रक्चर विकास कोष (Rural Infrastructural Development Fund; RIDF) से कम धन मिलना भी चिंता का विषय रहा है।

इसलिए ग्रामीण इंफ्रास्ट्रक्चर विकास कोष का दायरा विस्तृत किया गया है। ताकि ग्रामीण पेय जल परियोजनाएँ, भू-संरक्षण, पेय जल, ग्रामीण बाज़ार, स्वास्थ्य केन्द्र, विद्यालय, लघु पनबिजली संयंत्र, आँगनवाडियाँ तथा ऊर्जा क्षेत्र में व्यवस्था सुधार आदि जैसी गतिविधियों को शामिल किया जा सके।

पन्द्रहवाँ ग़ैर-पारंपरिक ऊर्जा स्रोत है। बड़ी रोचक बात यह है कि जबसे निर्धन किसान अप्रत्यक्ष रूप से जलाने के लिए ईंधन लकड़ी और तारकोल जैसे संसाधनों का दोहन करने लगे तब से ही ग़ैर-पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों के विकास को विकेन्द्रित किया गया है। ग़ैर-पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों को बढ़ावा देने का दोहरा उद्देश्य है। एक पर्यावरण के अनुकूल साधनों के उपयोग के स्वरूप के परिवर्तन को प्रभावी बनाना तथा दूसरा ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को ऊर्जा का अधिक स्थायी स्रोत उपलब्ध कराना तथा स्थानीय स्तर पर पर्यावरण क्षति और ग्लोबल वार्मिंग (पृथ्वी को गर्म होने से रोकने) के लिए इसे ग्रामीण जनता में लोकप्रिय बनाना।

सोलहवाँ गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम है। यद्यपि, ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी समग्र रूपों में 1993-97 में 37.27 प्रतिशत से कम होकर 1990-2000 में 27.09 प्रतिशत तक कम हुई है तो भी उपलब्धियाँ लक्ष्य से कम हैं। इसका कारण राज्यों में लक्ष्य प्राप्ति में असंतुलन है। निर्धनता कुछ राज्यों जैसे उड़ीसा, बिहार, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश में कुछ क्षेत्रों में महामारी की तरह है। केवल इन राज्यों में ही 1999 (दसवीं योजना) में देश की 69 प्रतिशत निर्धनता थी। अतः विशिष्ट कारणों से इन क्षेत्रों में व्याप्त कष्टों को लघु योजनाओं के माध्यम से निवारण के लिए विकेन्द्रित शासन और स्पष्ट आवश्यकताओं पर जोर दिया जा रहा है। ऊपर से नीचे की तरफ विचारधारा के स्थान पर वास्तविक प्रकट होने वाली परिस्थिति सहित क्षेत्र आधारित लक्ष्य विचारधारा की आवश्यकता है। पंचायतों को सौंपे गए विषयों को ग्यारहवीं अनुसूची में शामिल करने के द्वारा चारों ओर यही संदेश प्रदान करना था।

विस्तृत तरीके से गरीबी कम करने के लिए विभिन्न स्व-रोज़गार और संवेतन रोज़गार कार्यक्रमों को परस्पर संबद्ध करने की भी आवश्यकता है। अन्य क्षेत्रों जैसे स्वास्थ्य और पोषण, परिवार कल्याण की प्रगति को भी संघटित करने की आवश्यकता है क्योंकि निर्धनता की स्थिति को उत्पन्न करने में ये सभी कारक हैं। निर्धनता केवल आर्थिक संकल्पना ही नहीं है। इसके महत्त्वपूर्ण सामाजिक और सांस्कृतिक आयाम भी होते हैं। अतः इसे किसी एक अकेले तरीके से नहीं संभाला जा सकता। ऐसा संघटन केवल राजनीतिक रूप से वैध पंचायत संस्थाओं के तत्वाधान में स्थानीय स्तर पर ही प्राप्त किया जा सकता है। समन्वय कार्य केवल प्रशासन पर ही छोड़ देने से यह निष्प्रभावी रहता है जैसा कि अभी तक हुआ है। आशा है कि स्थानीय स्तर पर प्रत्यायोजित योजना और कार्य कार्यान्वयन से जनजातियों को अपनी भूमि से बेदखल करने जैसी विकृत प्रक्रिया रूक सकेगी।

स्थानीय स्तर पर नागरिक समाज के सक्रियतावाद को भी अच्छे तरीके से प्राप्त किया जा सकता है जो गरीबी उन्मूलन के क्षेत्र में एक आशा दर्शाता है। उदाहरण के लिए सहयोग को समितियों के माध्यम से संस्थात्मक बनाया जा सकता है। समाज के पददलित वर्ग का जीवनयापन के लिए सफल नागरिक समाज की सक्रियातावाद का उदाहरण उनके प्रयास हो सकते हैं। जमींदारी उन्मूलता का कृषि श्रमिकों को अधिक लाभ नहीं हुआ क्योंकि उनके पास कोई भूमि नहीं है और ग़ैर कृषि क्षेत्र में रोज़गार के पर्याप्त अवसर उत्पन्न नहीं होते। इसके अतिरिक्त ग़ैर कृषि समुदायों आदि में वितरण के लिए उपलब्ध फालतू भूमि को गुप्त रखने जैसे कदाचार भी हैं। काश्तकारों को मालिकाना हक प्रदान करना भी विपरीत उपाय सिद्ध हुआ क्योंकि इसने किसानों को पट्टे पर जमीन देना बंद कर दिया चाहे उनके परिवार में फसल उगाने के लिए कोई सदस्य न भी हो तो भी उन्हें पट्टेदार द्वारा जमीन का स्वामीत्व प्राप्त करने का भय था। इसका उत्पादकता और कृषि श्रमिकों के रोज़गार अवसरों पर विपरीत प्रभाव पड़ा। इससे पट्टेदारी कानूनों को नए दृष्टिकोण से देखने का आधार प्रस्तुत हुआ। इस संदर्भ में ग़ैर-सरकारी संगठनों द्वारा आरंभ किए गए नए प्रयोग ने कार्य किया। जैसे महाराष्ट्र में पानी पंचायत

का विचार जहाँ पर गाँव के प्रत्येक सदस्य को किसी भी भूखंड का स्वामीत्व न होने पर भी पानी का समान अधिकार प्रदान किया गया और इसलिए बड़े किसान अधिक पानी के लिए भूमिहीन श्रमिकों को भूमि पट्टे पर देने के लिए विवश हो गए। इस विचारधारा के रूपांतर ने सांझे संपत्ति संसाधनों के बड़े भाग को स्वीकृत किया जिसके फलस्वरूप पानी वितरण कार्य कृषि श्रमिकों के द्वारा किए जाने के कारण जल संचय का तो कायाकल्प हो गया। ये परिवार सहकारी जल संचय विकास के फलस्वरूप पशुपालन या मत्स्य पालन का कार्य करने में सक्षम हो गए। बिक्री पर लगे प्रतिबंध को हटाने के लिए भूमि बाज़ार के विकास के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर भूमि को गिरवी रखने या पट्टे पर देना उपयुक्त होगा क्योंकि कई परिवार गाँव से चले गए हैं परन्तु इन प्रतिबंधों के कारण जमीन उन्हीं के अधिकार में है। तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक की तरह राज्य भी इसमें भूमिका निभा सकता है। जहाँ राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति वित्त विकास निगम भूमि खरीदने के लिए अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के परिवारों को सहायता प्रदान करता है। बलात् बेदखली द्वारा अनुसूचित जनजातियों को अपनी जमीन से बेदखली को भूमि अभिलेखों को कंप्यूटरीकृत करने के और उस PISA, 1996 के उपायों द्वारा रोका जा सकता है जिसे राज्य सरकारों द्वारा कठोरता से लागू नहीं किया गया है। पंचायतों ने 73वें संवैधानिक संसाधन अधिनियम, 1992 के प्रावधानों को अनुसूचित क्षेत्र अधिनियम, 1996 का विस्तार आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा और राजस्थान के अनुसूचित क्षेत्रों में लागू किया है। PISA जनजातियों को भूमि सहित प्राकृतिक संसाधनों के उनके पारंपरिक अधिकारों को सुरक्षित और संरक्षित रखने में सक्षम बनाता है।

सत्रहवें और अठारहवें संविधान संशोधन से सम्बन्धित विषय हैं शिक्षा जिसमें प्राथमिक और उच्चतर विद्यालय, तकनीकी प्रशिक्षण व व्यावसायिक शिक्षा; प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा, पुस्तकालय व सांस्कृतिक गतिविधियाँ शामिल हैं। यह कृषि वानिकी, फार्म वानिकी, भूसंरक्षण व अन्य तथा रोज़गार उत्पन्न करने के द्वारा गरीबी उन्मूलन में स्थायी विकास परंपराओं से सम्बन्धित अन्य कार्यों के विकेन्द्रीकरण का एक स्वभाविक उदाहरण होगा। बेहतर व्यापक सेवाओं के लिए मानव संसाधन विकास तथा प्राकृतिक संसाधनों के बेहतर उपयोग ओर पर्यावरण के अनुकूल परंपराओं के लिए साधारण जनता विशेषतः किसानों को सशक्त बनाना।

बाइसवाँ बाज़ार और मेले हैं। ग्रामीण उद्योगों और कृषि उत्पादों के लिए वर्तमान में विपणन प्रबंध अपर्याप्त है। विस्तार कार्यकर्त्ताओं के पास मूल्यों के बारे में बाज़ार की स्थितियों की अपर्याप्त सूचनाएँ होती हैं, किसानों को झूठी सूचनाएँ दी जाती हैं और संसाधनों की कमी तथा किसानों के प्रति राजनीतिक इच्छा शक्ति का अभाव सरकार की व्यापक उदासीनता को स्पष्ट करती है। यदि शासन के नव उदार प्रतिमान की तरफ जाने के कुछ नकारात्मक परिणाम जैसे कृषि में सार्वजनिक निवेश में कमी रहे होंगे तो कुछ सकारात्मक संभावनाएँ भी प्रकट हुई हैं। निजी क्षेत्र की बढ़ती सांझेदारी/भागीदारी एक ऐसी ही विशेषता है। इससे विस्तार, भण्डारण और विपणन, शिक्षा तथा आवासी विद्युत जैसी बुनियादी सेवाओं आदि में उत्पादक परिणाम प्राप्त होंगे। इसके लिए स्थानीय स्तर पर नीति निर्णयों और यहाँ तक नीति में भी हिस्सा लेने के लिए स्वायत्तता आवश्यक होगी। पिछले अनुभव बताते हैं कि स्थानीय निर्वाचित कार्मिकों को अधिकार प्रत्यायोजन में विधायक दुराग्रही रहे हैं और उनके बढ़ते प्रभाव को बुरा मानते हैं। ऐसी अंतःव्यक्तिगत मतभेद वर्तमान परिवर्तन के उस उद्देश्य को समाप्त कर सकते हैं जिसका मुख्य लक्ष्य आधारभूत स्तर पर योजना बनाना है।

तेइसवाँ स्वास्थ्य और स्वच्छता है जिसमें चिकित्सालय, प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल केन्द्र और औषधालय भी शामिल है। स्वास्थ्य के बारे में उन सम्बन्धित कार्यक्रमों के क्षैतिज रूप से संबद्ध करना मुख्य आवश्यकता/मुद्दा है जो वर्तमान में बिना किसी अन्य विभागीय संपर्क अपने-अपने विशिष्ट विभागों के माध्यम से संचालित किए जाते हैं। क्योंकि स्वास्थ्य और स्वच्छता सम्बन्धित समस्याएँ हैं।

निर्धनता कमजोर करने वाला कारक है तथा प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल केन्द्र और मानव शक्ति आदि का इनमें अभाव है। ऐसे क्षैतिज संपर्क स्थानीय प्रशासन के सक्रिय होने पर भी स्थापित किए जा सकते हैं। प्रायः स्थानीय स्तर पर सेवाओं के बारे में समस्याएँ प्रशासनिक अधिक हैं क्योंकि अध्यापक और अन्य कार्मिक कार्य निष्पादन किए बिना चले जाते हैं। अतः निगरानी करना, सम्मान करना और दण्ड देना आदि प्रेरणा से सम्बन्धित अनिवार्य समस्याएँ हैं जो स्थानीय स्तर पर चिंता के क्षेत्र हैं। उदाहरण के लिए ग्राम पंचायतों को ऐसे भवन निर्माण नियम अपनाने की आवश्यकता है जो हाथों से साफ किए जाने वाले शुष्क शौचालयों के निर्माण को प्रतिबंधित करते हों। कम लागत के विकल्पों, उनके प्रदाता, चाहे वे सरकारी हैं या ग़ैर-सरकारी के बारे में सूचना समितियों के पास होनी चाहिए और बाज़ारों आदि के माध्यम से उसका प्रचार किया जाना चाहिए।

चौबीसवाँ है परिवार कल्याण। आबादी की राष्ट्रीय विकास समिति (NDC) की उपसमिति ने सिफारिश की कि परिवार कल्याण कार्यक्रमों में उल्लेखनीय परिवर्तन होना चाहिए तथा निम्नलिखित पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए :

- आवश्यकताओं के मूल्यांकन पर आधारित विकेन्द्रित क्षेत्र विशेष सम्बन्धित योजना;
- महिला और बाल सेवाओं की परिवर्धित पहुँच और गुणवत्ता पर जोर।
- कार्य निष्पादन में न्यूनतम अंतर के लिए कम निष्पादन करने वाले राज्यों/जिलों को विशेष सहायता प्रदान करना।
- कार्यक्रम की निगरानी के लिए गुणवत्ता, कार्य क्षेत्र और प्रभाव संकेतकों का जिला स्तर पर डेटाबेस (विवरण) तैयार करना।

इस प्रकार परिवार नियोजन का विकेन्द्रीकरण आवश्यकता आधारित और कार्यक्रमों के विशिष्ट सांस्कृतिक कार्यान्वयन के व्यापक उद्देश्यों के अनुकूल है जो इस बारे में 1994 में कैरो में अंतरार्ष्ट्रीय जनसंख्या और विकास सम्मेलन में घोषित अंतरार्ष्ट्रीय नीति के अनुरूप भी है।

पच्चीसवें से सताइसवें तक लोगों के जीवन की गुणवत्ता सुधारने से सम्बन्धित हैं। इसके अनुसार पच्चीसवाँ महिला और बाल विकास से सम्बन्धित है, छब्बीसवाँ सामाजिक कल्याण से जिसमें शारीरिक और मानसिक रूप से अक्षम व्यक्तियों का कल्याण भी शामिल है और सत्ताइसवाँ कमजोर वर्गों विशेषतः अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों से सम्बन्धित है। चूँकि अधिकतर ग्रामीण निर्धन लोग ग़ैर-कृषि गतिविधियों में संलग्न है अतः इस क्षेत्र में रोज़गार अवसर बढ़ाने की आवश्यकता है। अतः कमजोर वर्गों के लिए रोज़गार अवसर और शिक्षा तथा प्रशिक्षण के साथ ऋण सहायता आवश्यक है जिसके लिए योजना बनाने की आवश्यकता है। अतः उपरोक्त विषयों को ग्यारहवीं अनुसूची में रखा गया है और अंततः विकास योजना की संस्थाओं के रूप में स्थानीय संस्थाओं का विकास होगा। फिर योजना कार्यान्वयन के दौरान लाभार्थियों की पहचान करना भी पंचायत संस्थाओं के माध्यम से अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी होगा। ध्यान देने योग्य है कि उपरोक्त स्वास्थ्य जैसे सामाजिक कल्याणकारी सरोकारों के लिए अकेली/आंशिक रूप से लागू की जाने वाली विचारधारा के स्थान पर एक संघटित विचारधारा की आवश्यकता है जिसे मंत्रालयों/विभागों में कार्य क्षेत्रों/कार्य विशिष्टताओं के पार लागू होने वाले घटकों के साथ कमजोर वर्गों के कल्याण के लिए लागू करना व्यापक सरोकार है। अतः इस संदर्भ में वास्तविक परिणामों के लिए उपेक्षित स्तर पर संघटित करना महत्त्वपूर्ण है। कल्याण को शिक्षा से भी जोड़ा/संबद्ध किया जाता है। चूँकि शिक्षा को विकेन्द्रित करने का एक उद्देश्य है अतः कल्याण को लक्षित लाभार्थियों अर्थात् नागरिक और प्रशासन के एकदम आमने-सामने के स्तर पर अच्छी तरह लागू किया जाता है।

अठाइसवाँ सार्वजनिक वितरण प्रणाली के विशेष विषय से सम्बन्धित है जिसका निर्धनता से सीधा सम्बन्ध है। खाद्य सुरक्षा के इस विषय को दो तरह से लागू किया जा सकता है। पहला, खाद्य वस्तुओं के लिए माँग उत्पन्न करने हेतु ग्रामीण निर्धन लोगों में क्रय शक्ति उत्पन्न करने के द्वारा। यह कार्य ग्रामीण निर्धन व्यक्तियों को रोज़गार प्रदान करके किया जा सकता है। दूसरा, निर्धन व्यक्तियों को कम मूल्य पर भोजन उपलब्ध कराया जा सकता है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली दूसरी विचारधारा पर आधारित है। यद्यपि यह पहली विचारधारा की पूरक है क्योंकि पहली विचारधारा के अनुसार किसी भी माँग को बनाए रखने के लिए रोज़गार उत्पन्न करना महत्त्वपूर्ण है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली उचित दर दुकारों के नेटवर्क के माध्यम से लागू की जाती है जो आवश्यक वस्तुओं को कम मूल्य पर बेचती है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली का संचालन भ्रष्टाचार और लाभार्थियों की पहचान की समस्याओं के कारण पूरी तरह से प्रभावित हुआ है। बेईमान लोग कार्मिकों के तथाकथित गुप्त सहयोग से कम मूल्य पर वस्तुओं को खरीदकर खुले बाज़ार में बेच देते हैं। इससे सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर वस्तुओं की कमी या घटिया खाद्यान्न बचता है। अच्छी सेवा प्रदान करने के लिए एक विकल्प के रूप में विकेन्द्रित क्रय करने की तलाश की जा रही है। सामुदायिक खाद्यान्न का भण्डार आकस्मिक परिस्थितियों और बाधाओं के कारण सक्रिय रोज़गार उत्पन्न न कर सकने वाले क्षेत्रों में सामान्य परिस्थितियों में भी सहायता करेगा। नए उपायों जैसे स्मार्ट कार्डों, भोजन क्रेडिट/डेबिट कार्डों तथा भोजन मोहरों के द्वारा लाभार्थियों की पहचान अच्छे तरीके से की जा सकती है। ये सभी प्रबंध विकेन्द्रित संचालनों के माध्यम से अच्छी तरह से किए जा सकते हैं। यह तथ्य सार्वजनिक वितरण प्रणाली को ग्यारहवीं अनुसूची में रखने के तर्क की व्याख्या करता है।

उन्नतीसवाँ सामुदायिक सम्पत्तियों का रखरखाव है। उपरोक्त कार्यक्षेत्रों में विकास प्रक्रिया के अंतर्गत जल संरक्षण संरचनाएँ आदि संपत्तियाँ होंगी जिनके प्रबंध का दायित्व स्थानीय समुदायों के पास होगा। यह प्रशासन की सूक्ष्म भिन्नता में स्थानीय कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षित करने के लिए किया गया है जो उचित समय में स्वःशासन की एक संस्था के रूप में विकसित हो जाएगा। स्थानीय प्रबंधन स्पष्टतः स्थानीय सांझेदारी, सन्निकता और उस सार्वजनिक उत्तरदायी संस्था अर्थात् पंचायत की उपस्थिति के कारणों से दक्ष तथा उपयोगी भी होगा। आशा है जो प्रभावशाली ढंग से कार्य करेगी।

16.6 अंतःस्तरीय कार्यान्वयन में बाधाएँ

ग्यारहवीं अनुसूची में 29 मदें हैं तो भी कार्यों/कार्यक्षेत्र, अभिप्राय, पर्यवेक्षण, कार्यकारी, वैधानिक आदि में मदों के विवरण की परिभाषा को विनिर्दिष्ट नहीं किया गया है। मुखर्जी और दत्ता (1996) के अनुसार पंचायत कार्यों के रूप में दायित्वों के तीन अलग-अलग समूह आबंटित किए गए हैं। ये हैं (i) नागरिक सेवाएँ, (ii) विकासात्मक कार्य और (iii) अभिकरण कार्य। वास्तव में पंचायतों की नागरिक सेवाएँ और विकास कार्य राज्यों के क्षेत्र प्रशासन के साथ संयुक्त दायित्व हैं जबकि अभिकरण कार्य राज्य सरकार के आदेश से पंचायतों द्वारा ग्रहण किए जाते हैं। सातवीं अनुसूची से पंचायत के कार्यों की अलग सूची बनाने के स्थान पर ग्यारहवीं अनुसूची में नागरिक/जन सेवाओं तथा विकास कार्यों की एक मिश्रित सूची प्रस्तुत की है जो पंचायतों और राज्य क्षेत्र प्रशासन की अलग-अलग जिम्मेदारी होने की अपेक्षा संयुक्त जिम्मेदारी हो सकती है। दो संभावित परिदृश्य उत्पन्न हो सकते हैं, स्थिति जैसी की तैसी रह सकती है या अधिक अव्यवस्था हो सकती है अथवा परंपरा रीति रिवाज, स्थान के इतिहास के अनुसार एक स्वाभाविक व्यवस्था प्रत्येक राज्य में विकसित हो सकती है। जहाँ कार्य विभाजन दायित्व अच्छे शासन के हित में प्रभावी हो सकते हैं। यह भी संभव है कि राज्य सरकारें स्थानीय प्रशासनिक मामलों में अपने असीमित अधिकार रखें और स्थानीय प्रशासन की स्थिति को राज्य सरकार की सुविधानुसार समय-समय पर किसी भी स्तर को हस्तांतरित कार्य करने वाले अभिकर्त्ताओं के रूप में बनाए रखे।

जैसा कि बाजपेयी और वर्मा (1995) द्वारा संकेत किया गया कुछ विशेषज्ञ अनुभव करते हैं कि कार्यों

की सूची बनाने से अभीष्ट उद्देश्य पूरा नहीं होगा। प्रत्येक क्षेत्र के अंतर्गत प्रत्येक स्तर के लिए कार्यों को पहचानना और उन्हें बजट योजना के अनुसार विनिर्दिष्ट करने के लिए उनका विस्तृत विवरण देना आवश्यक है। स्थानीय स्तर पर हस्तांतरित की जा सकने वाली योजनाओं की पहचान करने के लिए प्रत्येक राज्य में विशेषज्ञ समूहों का गठन किया जाना चाहिए। राज्य कार्मिकों के विवेकाधिकार पर मामले को छोड़ना उपयुक्त नहीं होगा।

मुखर्जी और दत्ता (1996) के अनुसार, "पंचायतों के तीनों स्तरों पर व्यय दायित्व विशेषतः आर्थिक छूट आबंटित करने में लगता है कि किसी विवेकपूर्ण सिद्धान्त का पालन नहीं किया जाता। इसका अभिप्राय है कि निम्नतर स्तर पर जो कुछ हल किया जा सके उस स्तर पर स्वतः वही आबंटित किया जाना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप विभिन्न पंचायत स्तरों पर व्यय आबंटन में आच्छादित दायित्व और भूमिका भ्रम नजर आता है।" स्तरों पर बुनियादी संबद्धता होने के बावजूद प्रत्येक स्तर पर गतिविधि विशेष आधार पर व्यय आबंटन लागू किया जा सकता है। उच्च स्तरों को केवल फैले हुए कार्यों में समन्वयकारी भूमिका या प्रबंधन भूमिका तक सीमित रहना चाहिए। यह आंशिक रूप में दसवीं योजना में उल्लिखित तथ्य के कारण है। केन्द्रीय/राज्य की योजना को लागू करने के लिए पंचायतों को मिलने वाले संबद्ध अनुदान के अलावा संयुक्त अनुदान भी मिलना चाहिए ताकि उनकी संसाधन की क्षमता को मज़बूत बनाया जा सके। स्थानीय संस्थाओं को स्थानीय समुदायों से भी अपने संसाधन उत्पन्न करने की और राज्य कोषों पर निर्भरता समाप्त करने की आवश्यकता है। वर्तमान में अधिकतर राज्यों में पंचायतों के कोषों की सही लेखा जाँच का उपयुक्त प्रबंध नहीं है अतः निर्वाचित कार्मिकों द्वारा राशि के दुरुपयोग की जाँच करना कठिन है। (DPCs) के बारे में संवैधानिक प्रावधान बहुत कमजोर है और यह DPCs द्वारा केवल मसौदा योजनाएँ तैयार करने का प्रावधान करता है। राज्य सरकारों ने DPCs पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है और जिला योजना के मार्गदर्शनों को शामिल नहीं किया गया है। दसवीं योजना में गाँव विकास योजनाओं को बनाने में ग्राम सभा/ग्राम पंचायत को और भारत में आधारभूत स्तरों पर योजना के लक्ष्य के कार्यान्वयन करने के लिए समिति और जिला स्तरों पर तैयार योजनाओं के साथ उनके संघटन को शामिल करने की आवश्यकता पर पूरा जोर दिया गया है।

DPCs के कार्यकर्त्ताओं और सामान्यतः स्थानीय प्रशासन में शामिल अन्य कार्मिकों को विशिष्ट क्षेत्रों जैसे योजना, बजट और लेखा क्षेत्रों में प्रशिक्षित करने की भी आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त पंचायती राज संस्थाओं में पर्याप्त और योग्य तथा सम्बन्धित क्षेत्रों में प्रशिक्षित कार्मिक प्रदान करने की आवश्यकता है। दसवीं योजना स्वयंसेवी क्षेत्र की भूमिका पर जोर देती है। ग्रामीण विकास में उनके प्रभावशाली योगदान करने वाले के रूप में सामाजिक कार्य समूह या कोई विशेषज्ञ व्यक्ति/संस्था हो सकती है। अनुभवजन्य साक्ष्य बताते हैं कि जहाँ कहीं पंचायतों, उपयोगकर्त्ता समूहों और सामुदायिक संगठनों के बीच जानकार सहयोग हुआ है वहाँ विकास कार्यक्रमों से लोगों को सर्वाधिक लाभ हुआ है। फिर भी, चूँकि पंचायतें और स्वयंसेवी क्षेत्र एक ही विषय क्षेत्र में कार्य करते हैं इसलिए दोनों के बीच मतभेद होने की भी सूचनाएँ मिली हैं।

यह एक आशंका वाला प्रभाव है, अतः समितियों या किसी अन्य संस्थागत प्रबंध के माध्यम से प्रभावशाली आवाज के द्वारा नागरिक सामाजिक भागीदारी स्वयंसेवी क्षेत्र के लिए एक निश्चित राजनीतिक स्थान प्रदान करेगी जो काफी हद तक समस्या का समाधान कर सकेगा। स्वयंसेवी क्षेत्र को ग्रामीण विकास विशेषतः सेवा प्रदान करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना है क्योंकि स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोज़गार योजना (SGSY) और स्वर्ण जयंती ग्राम रोज़गार योजना (SGRY) का रूपात्मक कार्यान्वयन, सामुदायिक संगठनों, वित्तीय संस्थाओं और सरकारी अभिकरणों के बीच भागीदारी के आधार पर स्व-सहायता समूहों के नेटवर्क के माध्यम से होगा। समन्वयकर्त्ताओं की पहचान और प्रशिक्षण की व्यवस्था को अपनाया जाएगा। जैसे स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोज़गार योजना में परिवर्तन चार अवस्थाओं में प्रक्रिया-अनुकूलन विचारधारा पर केन्द्रित होगा :

- स्व-सहायता समूह निर्माण के लिए सामाजिक गतिशीलता अवस्था
- समूहों में बचत करना और सदस्यों में अंतः ऋण देना तथा आवर्तित कोष की प्रावधान अवस्था;
- लघु वित्त अवस्था; और
- लघु उपक्रम विकास अवस्था।

16.7 सारांश

अंतःस्तरीय सहयोग प्राप्त करने के लिए प्रत्येक स्तर पर समितियाँ महत्त्वपूर्ण साधन होंगी जैसा कि देश में आधारभूत स्तरों पर वास्तव में लोकतंत्र लागू करने के लिए विकास/लघु योजना की संस्थाओं के रूप में स्थानीय संस्थाओं के सार्थक विकास की योजना बनाई गई थी। नागरिक समाज की भागीदारी तथा सामाजिक पूँजी का संस्थाकरण भी जिनकी लोक प्रशासन सिद्धान्त और अभीष्ठ लोक प्रशासन व्यवहार में आजकल काफी चर्चा की जाती है, समितियों के संस्थात्मकरण के माध्यम से लागू किया जा सकता है जो प्रशासन में लोगों की भागीदारी के लिए तंत्र व्यवस्था और विषयों पर संयुक्त रूप से विचार विमर्श करेगा। यद्यपि ग्यारहवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट व्यापक कार्यों का स्तरों के बीच सूक्ष्म विभाजन नहीं किया गया है तो भी आवश्यकतानुसार व्यवहार में प्रबंधन की व्यवस्था कर ली जाएगी। यदि ब्रिटेन मौखिक संविधान के अनुसार कार्य कर सकता है तो विश्व में सबसे बड़े लोकतंत्र के लिए संविधान में 93 संशोधन होने के बावजूद इस संदर्भ में कम से कम स्थानीय शासन के स्तर पर तो सर्वोत्तम परंपरा विकसित करना संभव होना चाहिए।

16.8 मुख्य अवधारणाएँ

जल संचय (Watershed) : जल संचय जलीय भौगोलिक क्षेत्र होता है जिसका जल एक सामान्य बिन्दु पर निकलता है। जल संचय विचारधारा परियोजना आधारित विकास योजना है जो जल संचय जल संरक्षण और अन्य सम्बन्धित आर्थिक और सामाजिक कार्यों के लिए पर्वतमाला से घाटी तक चलती है जिससे स्थायी आधार पर किसी क्षेत्र की उत्पादन संभावनाओं को व्यापक बनाया जाता है। जल संचय विकास कार्यक्रम मंत्रालयों द्वारा किए जाते हैं जिसमें प्रायः प्रत्येक लघु जल संचय लगभग 500 हेक्टेयर का होता है। फिर भी, वास्तविक परियोजना क्षेत्र स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर भिन्न-भिन्न हो सकता है (दसवीं योजना)।

सहकारी संस्था (Cooperative Society) : सहकारी संस्था एक स्व-सहायता संगठन है जो व्यवसायों की तरह कार्य करती है लेकिन आंतरिक रूप से लोकतांत्रिक होती है और कृषि, ऋण, विपणन आदि जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। कोई भी सहकारी संस्था सोसायटीज पंजीकरण अधिनियम, के अंतर्गत पंजीकृत होती है। सहकारी संस्थाओं का पंजीयक (registrar) सहकारी संस्थाओं की लेखा जाँच करता है।

सार्वजनिक वस्तुएँ (Public Goods) : सार्वजनिक वस्तुएँ वे होती हैं जिनका अधिकार उनके लिए अदायगी करने वालों तक सीमित नहीं होता जैसे सुरक्षा।

सामुदायिकवाद (Communitarianism) : सामाजिक और भावात्मक (पारिवारिक) संबद्धताओं के कमजोर होने से पश्चिम देशों में समुदाय लघुतम परिवार (Nuclear family इकाई की समस्या रही है जिससे स्वयंसेवी सहयोग के माध्यम से पारस्परिक समस्याओं के समाधान हेतु सामुदायिक सहयोग जैसी पारंपरिक विशेषताएँ बनीं। इस कारण भारत जैसे पारंपरिक समुदाय लाभान्वित हुए जहाँ विशेषतः गाँवों में समुदायवाद बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसे उपयुक्त नीति कार्यान्वयन और लक्षित/सम्बन्धित नीति को लागू करने के लिए महत्त्वपूर्ण आर्थिक संसाधन के रूप में देखा जा सकता है।

अधिसूचित पाँच क्षेत्र (Scheduled V Areas) : भारतीय संशोधन की पाँचवीं अनुसूची जो संशोधन अधिसूचित क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासी लोगों को संरक्षण प्रदान करती है। इन क्षेत्रों का प्रशासन एक जनजातीय परिषद के द्वारा किया जाता है जो सीधे राज्यपाल के नियंत्रण में कार्य करती है। इस क्षेत्र में कानून राज्यपाल द्वारा उपयुक्त समझे जाने वाले संशोधनों के साथ लागू किया जाता है और इसकी सार्वजनिक अधिसूचना जारी की जाती है। अनुसूची पाँच को जनजातीय भूमियों को ग़ैर-जनजातीय और औद्योगिक क्षेत्र में हस्तांतरित करने की अनुमति देने सम्बन्धी निकट भविष्य में संशोधित करने का खतरा है। इस कदम से इस देश के 8 करोड़ जनजातीय लोगों के लिए गंभीर आर्थिक और सांस्कृतिक परिणाम होंगे। यह रिपोर्ट हाल ही में हुई क्रमिक घटनाओं को उजागर करने और सहायता के अनुरोध को प्रकाशित करने का प्रयास करती है (भारत एक साथ से रिबाप्रगदा)।

ग्रामीण इंफ्रास्ट्रक्चर विकास कोष (Rural Infrastructural Development Fund; RIDF) : 1995-96 में सरकार ने ग्रामीण इंफ्रास्ट्रक्चर विकास कोष की स्थापना की ताकि वर्तमान जारी आधारभूत परियोजनाओं को धन उपलब्ध कराया जा सके। यह कोष राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक – नाबार्ड (NABARD) द्वारा रखा जाता है। कोष में कमी को व्यावसायिक बैंकों में निवेशों के द्वारा पूरा किया जाता है। इस कोष का उद्देश्य ग्रामीण आधारभूत परियोजनाएँ चलाने के लिए राज्य सरकारों और राज्य सरकार के स्वामीत्व वाले निगमों को ऋण उपलब्ध कराना है (आर्थिक सर्वेक्षण, 2004-05)।

16.9 संदर्भ व अन्य लेख

बाजपेयी एवं वर्मा, 1995, *पंचायती राज इन इंडिया : ए न्यू थर्स्ट*, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, भारत।

नंदिनी दुर्गेश, 2005, *रिलेशनशिप बिटवीन पॉलिटिकल लीडर्स एंड एडमिनिस्ट्रेटर्स*, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

भारत सरकार, दसवीं पंचवर्षीय योजना, 2002-07।

भारत सरकार, *इकॉनामिक सर्वे*, 2004-05।

लिंग यंग, 2001, "फार्मर्स कॉपरेटिव इकॉनामिक ऑर्गेनाइजेशनः ए वे आउट फॉर चाइनाज एग्रीकल्चर" वेबसाइट http://www.china.org.in

मुखर्जी, निर्मल, एवं अभिजित दत्ता, 1996, "न्यू पर्सेप्सन्स सन लोकल गवर्नमेंट इंडियन इंस्ट्रीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेस ओकेजनल पेपर सीरिज, 20, नई दिल्ली।

रिबा प्रगदा, रवि, 2006, "इंडिया टुगैदर" वेबसाइट http://www.indiatogether.org

समंतरै, पी.सी., 2004, "हंडर्ड इयर्स ऑफ कॉपरेटिव मूवमेंट : एमर्जिंग इश्यूज एण्ड चैलेजेंस", *उड़ीसा रिव्यू*।

16.10 अभ्यास

1) अपने आस-पास किसी सहकारी समिति के मामले का अध्ययन करें। किसी एक उपयुक्त अनुसंधान साधन से इसका सनिकट अध्ययन करें। (साक्षात्कार कार्यक्रम या प्रश्नावली) जिसका उद्देश्य उसकी कार्य प्रणाली में बाधाएँ और उनको दूर करने के सुझाव देना हो।

2) भारत में स्थानीय स्वशासन के विकास पर एक निबंध लिखें। अपने निबंध के उत्तरार्ध में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समाचारपत्रों और आवधिक पत्रिकाओं से उद्धरण देते हुए हाल ही के विकास का उल्लेख करें।

इकाई 17 अंतर-स्थानीय सरकार सम्बन्ध – II : शहरी

रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 शहरी स्थानीय सरकार की उपइकाइयाँ

17.3 समेकन प्रवृत्ति

17.4 बहुकेन्द्रीयता

17.5 भारत के लिए शिक्षा

17.6 अंतर-स्तरीय कार्य विभाजन की आवश्यकताएँ

17.7 सारांश

17.8 मुख्य अवधारणाएँ

17.9 संदर्भ व अन्य लेख

17.10 अभ्यास

17.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- शहरी स्थानीय सरकार के व्यवस्थिति क्रम को समझ सकेंगे;
- अंतर-स्तरीय (intra-tier) स्थानीय सरकार सम्बन्ध में मुख्य विषयों को समझ सकेंगे;
- बहुकेन्द्रीयता (Polycentricity) पर चर्चा कर सकेंगे; और
- सरकार के विभिन्न स्तरों और शहरी स्थानीय सरकार के विभिन्न स्तरों के बीच कार्य दायित्वों और संबंधों के विभाजन को उज़ागर कर सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

शहरी स्थानीय सरकार के स्तरों में ऐसा कोई क्रमिक प्रबंध नहीं होता क्योंकि प्रत्येक स्तर सीधे राज्य सरकार के अंतर्गत कार्य करता है। फिर भी प्रबंधों में काफी भिन्नताएँ होती हैं जो इस तरह के उपयोगी उद्देश्य पूरा करती हैं कि अनेक प्रकार के संस्थात्मक प्रबंधों का अस्तित्व बनता है। ये नगर निगमों और नगर परिषदों के अलावा अधिसूचित क्षेत्र समितियाँ (Notified Area Committees), नगर क्षेत्र समितियाँ छावनी बोर्ड (Town Area Committees Cantonment Boards) और नगर क्षेत्र (Townships) जैसी संस्थाएँ होती हैं। 74वाँ संवैधानिक संशोधन अधिनियम स्थानीय सरकार को तीन स्तरीय संरचना प्रदान करता है जैसे नगरनिगम, नगर परिषद और पारगमन क्षेत्रों के लिए नगर पंचायतें। यह नए संवैधानिक संशोधन में अनुबंधों के साथ विद्यमान पुरानी संरचना को समन्वित करने का प्रयास है। इसके अनुसार यह या तो नाम पद्धति बदलने की प्रक्रिया है जैसे पंजाब में अधिसूचित क्षेत्र समितियों का नगर पंचायत

नामकरण किया गया है या फिर सन्निकट ग्रामीण या शहरी वर्तमान उपइकाइयों का सहयोजन करना है जैसे गुजरात में नगर क्षेत्र समितियों का नजदीकी शहरी या ग्रामीण क्षेत्रों में सहयोजन किया गया है। अतः कहा जा सकता है कि यह स्थानीय स्तर पर परिवर्तन की स्थिति है।

इस इकाई में हम भारतीय स्थिति में गतिशीलता को अच्छी तरह समझने के लिए इस संदर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का अध्ययन करेंगे। भारतीय संदर्भ में इसके उपयोग की संभावना के लिए बहुकेन्द्रीयता के सैद्धान्तिक प्रस्ताव की जाँच की जाएगी।" शहरी क्षेत्रों में सार्वजनिक वस्तुओं और सेवाओं के सर्वोत्तम प्रबंध के विचार प्रदान करने का तथा शहरी अव्यवस्था की समस्या के सर्वोत्तम समाधान का प्रयास किया जाएगा। इससे पूर्व हम शहरी स्थानीय सरकार की संरचना में भिन्नताओं का अध्ययन करेंगे।

17.2 शहरी स्थानीय सरकार की उपइकाइयाँ

अधिसूचित क्षेत्र समितियों और नगर क्षेत्र समितियों को नगर परिषद की सौतेली बहनों के नाम से जाना जाता है। 1997 की स्थिति के अनुसार बिहार, गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, पंजाब, जम्मू और कश्मीर, उत्तर प्रदेश और हिमाचल प्रदेश में कुल 202 अधिसूचित क्षेत्र समितियाँ स्थित थीं। अधिसूचित क्षेत्र समिति उन क्षेत्रों में बनाई जाती है जो अभी तक नगर परिषद की संरचना के लिए योग्य नहीं हैं लेकिन उन्हें महत्त्वपूर्ण शहरी क्षेत्र माना जाता है। नया बनने वाला नगर भी अधिसूचित क्षेत्र समिति के रूप में पंजीकृत किया जा सकता है। नगर क्षेत्र समितियों की संख्या 385 से अधिक है जो छोटे नगरों में है। नगर क्षेत्र समितियाँ असम, केरल, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, जम्मू व कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश में बनाई गई हैं। स्थानीय सरकार के ऐसे स्वरूप का जिज्ञासु, रूप उत्तर प्रदेश है जहाँ 297 नगर क्षेत्र समितियाँ देश की कुल नगर क्षेत्र समितियों की 80 प्रतिशत से भी अधिक हैं। अब नगर क्षेत्र समितियाँ सन्निकट बड़े क्षेत्रों में सहयोजित की जा रही हैं। नगर क्षेत्र समितियों के स्थान पर गुजरात में नगर पंचायतों और कर्नाटक और तमिलनाडु में नगर पंचायतों (Town Panchayats) का गठन किया गया है।

इसके अतिरिक्त, शहरी स्थानीय सरकारों के कुछ विशिष्ट रूप भी हैं जैसे छावनी बोर्ड जो सीधे रक्षा मंत्रालय के अधीन कार्य करते हैं फिर नगर क्षेत्र हैं जो सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों द्वारा गठित किए जाते हैं। छावनी बोर्ड की संरचना 1924 के छावनी अधिनियम के अंतर्गत की जाती है। स्थानीय सरकार के अन्य रूपों की तरह यह भी संस्थात्मक निगम है जिसके पास स्थायी उत्तराधिकार और सामान्य सील होती है जिसके पास संपत्ति प्राप्त करने और रखने तथा संविदाएँ करने का और मुकदमा करने तथा लड़ने का अधिकार होता है। बोर्ड केन्द्रीय सरकार की पूर्व स्वीकृति से किसी भी छावनी में ऐसा कोई भी कर लगा सकता है जो किसी अधिनियम के अंतर्गत कुछ समय के लिए लागू हो, क्षेत्र की किसी नगरपालिका जहाँ छावनी बनी हो वहाँ लागू किया गया है।

ग्रामीण-शहरी सम्बन्ध समिति (Rural Urban Relationship Committee) ने नगर क्षेत्रों (Townships) को इस प्रकार वर्गीकृत किया है :

- एकल औद्योगिक नगर क्षेत्र जैसे राउरकेला, भिलाई और जमशेदपुर;
- औद्योगिक समूह वाले नगर क्षेत्र जैसे दुर्गापुर; और
- भोपाल शहर के निकट छोटे नगर क्षेत्र जैसे हैवी इलैक्ट्रीकलस लिमिटेड और बंगलौर के निकट टेलीफोन उद्योग और हिन्दुस्तान वैमानिक (Hindustan Aeronautics)।

स्थानीय सरकार के पारंपरिक रूपों की अपेक्षा नगर क्षेत्र के अनेक लाभ हैं। ये सुनियोजित होते हैं तथा अपने निवासियों को अपेक्षाकृत अच्छी सुविधाएँ प्रदान करते हैं जैसे जल आपूर्ति, विद्युत, सफाई

आदि। अच्छे रोज़गार अवसरों के कारण लोगों के समूह नगर क्षेत्रों की ओर भागते हैं। इसके सकारात्मक ओर नकारात्मक दोनों प्रभाव होते हैं। नगर क्षेत्र के आसपास यादृच्छिक विकास से शहरी प्रबंध की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। नगर क्षेत्र के होने से निकटवर्ती क्षेत्रों के विकास को बढ़ावा मिलता है जो स्वतः नगर क्षेत्र के रूप में विकसित हो जाते हैं जैसे जमशेदपुर के पास जगसलाई और आदित्यपुर। फलस्वरूप नगर क्षेत्रों द्वारा उत्पन्न निकटवर्ती क्षेत्रों में सहयोजन के प्रयासों का प्रतिरोध किया जाता है तो भी इन पर काफी दबाव होता है। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम अपने नगर क्षेत्र के व्यवस्था सम्बन्धी प्रबंध करते हैं जैसे कुछ उपक्रम मुख्यतः हिन्दुस्तान स्टील, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, निवेली लिगनाइट कार्पोरेशन, हैवी इंजीनियरिंग कॉर्पोरेशन ने नगर प्रशासकों की नियुक्ति की है जिनकी सहायता आबंटन, रखरखाव आदि विभाग प्रमुखों द्वारा की जाती है। कुछ अन्य उपक्रम जैसे भारतीय उर्वरक निगम (Fertilizer Corporation of India), भारी विद्युत, (Heavy Electricals), नेपाल मिल्स ने प्रशासन अधिकारियों या संपदा अधिकारियों की नियुक्ति की है जिनकी सहायता अभियंताओं और अन्य कार्मिकों द्वारा की जाती है। चुनावी तत्व को दूर रखा गया है अतः प्रशासनिक प्रबंध पूर्णतः नौकरशाही का प्रकार है (नायक, सेन व मनसुखलाल, 1997)।

17.3 समेकन प्रवृत्ति

अंतर-स्तरीय स्थानीय सरकार सम्बन्धों में शहरी प्रगति और विकास मुख्यतः एक आर्थिक सरोकार है। क्योंकि सेवा वितरण में अधिकतम कुशलता प्राप्त करने के लिए कार्य विभाजन कैसे किया जाए विशेषतः आर्थिक संदर्भ में (economies of scale) जो किफायती हो अर्थात् लागत कम की जाए और संपूर्ण अधिकार क्षेत्र में, भौगोलिक रूप से तथा समाज के वर्गों में प्रगतिशील पद्धति (Progressive manner) से कर भार कैसे डाला जाए यह मुख्य विषय होता है।

शहरी आधारभूत सुविधाओं में पेयजल, स्वच्छता, जल-मल निकास, विद्युत प्रणाली और गैस वितरण, शहरी यातायात, प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाएँ तथा पर्यावरण नियंत्रण आदि शामिल हैं। इनमें से कई सेवाएँ स्थानीय सार्वजनिक वस्तुओं की प्रकृति वाली हैं। सार्वजनिक वस्तुएँ वे वस्तुएँ हैं जिनके लाभ निर्धारित नहीं किए जा सकते तथा लाभार्थियों में समान रूप से वितरित किए जाते हैं। अतः प्रत्येक कार्य और स्वीकार्य आधार पर इनका शुल्क नहीं लिया जा सकता जैसे सार्वजनिक सुरक्षा। निःशुल्क सुविधा की समस्या की व्याख्या यह है कि लोग सेवा का लाभ उठाते हैं परन्तु अपेक्षित मापदंड से इसका भुगतान नहीं करते। सार्वजनिक वस्तुओं में यह आम बात है। अतः न्याय व्यवस्था में इसका स्वीकार्य शुल्क लागू नहीं किया जा सकता। स्थानीय सामान्य सार्वजनिक संसाधनों के बारे में भी जानना महत्त्वपूर्ण है जैसे जल आपूर्ति जहाँ निःशुल्क सुविधा अपरिहार्य है लेकिन खपत को नियंत्रित/घटाया जा सकता है (एलिनर ऑस्ट्रोम)। सार्वजनिक वस्तुओं का आसपास के क्षेत्रों में व्यापक प्रभाव पड़ता है। जैसे बेहतर जल आपूर्ति एवं ऊर्जा के माध्यम से निकटवर्ती कृषि क्षेत्रों में अच्छी सिंचाई, बेहतर यातायात से बाज़ारों में अच्छी पहुँच तथा ग्रामीण निर्धन वर्ग के लिए बेहतर गतिशीलता के कारण अच्छे जीवनयापन के अवसर आदि। इन योजक तत्वों को मज़बूत बनाने की आवश्यकता है। स्थानीय समुदाय की जनसंख्या का आकार सेवाएँ प्रदान की जा सकने वाले की गुणवत्ता और उसमें निहित सभ्य जीवन की प्रकृति दोनों प्रकारों को प्रभावित करता है। अमेरिका में अत्यधिक छोटे स्थानीय समुदाय स्वयं अपनी पुलिस, अग्नि शामक सेवाएँ एवं विद्यालय एवं पुस्तकालय अथवा नाले और कचरा निपटान सेवाएँ प्रदान नहीं कर सकते। अतः इन सेवाओं के लिए प्रायः वे नजदीकी समुदायों से मिल जाते हैं अथवा इन्हें प्रदान करने के लिए वे राज्य अथवा प्रदेश (काउंटी) सरकारों से करार कर लेते हैं।

फ्रांस में स्थानीय प्रशासन के तीन मुख्य स्तर हैं: कम्यून (संप्रदाय); विभाग और क्षेत्र। कम्यून 1789 से है और फ्रांसीसी प्रशासन क्रम में निम्नतम स्तर है (फ्रांस में यह शब्द सभी नगरपालिकाओं के लिए प्रयुक्त होता है चाहे उनका कोई भी आकार हो उनमें से 80 प्रतिशत में तो 1000 नागरिकों से भी कम

लोग रहते हैं। ऐसे लगभग 37000 कम्यून हैं तथा यूरोपियन संघ के अनेक देशों में इससे भी अधिक कम्यून होते हैं)। इस स्थिति ने सरकार को शहरी समुदायों या कई कम्यूनों की संबद्धता से एक समूह (अंतर-कम्यूंन सिंडिकेट) के निर्माण हेतु छोटे कम्यूनों के मिलाने को प्रोत्साहित कर स्थानीय सरकार की संरचना को युक्तिसंगत बनाने पर विचार/प्रयास किया। फिर भी लोकप्रिय जनमत ने इस मिश्रण का विरोध किया क्योंकि लोगों की सही पहचान उनके विशिष्ट कम्यून से होती है। अतः मिश्रणों की अपेक्षा कई प्रकार से सहयोगात्मक प्रबंध किए गए जिसका एक उदाहरण सेवाओं का एकीकरण बनाना था ताकि सेवाओं को प्रभावी बनाया जा सके (नीक एवं कैरवेल्ला)।

समेकन एक प्रणाली है जिसका उपयोग स्थानीय सरकार की इकाइयों की संख्या कम करने केद्वारा आर्थिक बचत करने के लिए किया जाता है। जापान में स्थानीय सरकार की संरचना दो स्तरीय प्रीफेक्चर्स (कांउटियों के बराबर) तथा नगरपालिकाएँ (Municipalities) (शहरों और नगरों के बराबर) रूप में की जाती है। प्रीफेक्चर्स तथा नगरपालिकाओं को प्रशासन, बजट सम्बन्धी मामलों और स्थानीय नियमों उपनियमों में पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त है जबकि जापान के संविधान में संघीय संरचना कोई संदर्भ नहीं है और वह एकात्मक सत्ता वाला राज्य है। व्यावहारिक रूप से वहाँ अधिक मिश्रण हुआ है। सरकार का उद्देश्य विद्यमान 3110 नगरपालिकाओं को केवल 1000 में पुनः संरचित करना है। यद्यपि समेकन के लिए संसाधनों में वृद्धि करना विश्व व्यापी प्रवृत्ति बन गई है तो भी मूलाधार संतुष्टि है क्योंकि कुछ समय बाद प्रबंधों को सीमित कर किफायत/आर्थिक बचत इसकी वचनबद्धता है (स्टीवन्स)।

संयुक्त राज्य अमेरिका में समेकनों को अपनाया गया था परन्तु अब ये नागरिकों एवं जन प्रतिनिधियों दोनों में लोकप्रिय नहीं रहे हैं क्योंकि छोटी इकाइयों में कार्मिकों की राजनीतिक शक्तियाँ इस प्रक्रिया में छिन गई हैं। यद्यपि इस समस्या का समाधान किया जा सकता है जैसा कि कनाडा में किया गया है। वहाँ छोटी इकाइयों के सार्वजनिक कार्मिकों को समेकित इकाइयों में प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। इससे लोक विकल्प सिद्धान्तवादियों का दावा सिद्ध होता है कि आर्थिक बचत और कार्य की बेहतर स्थिति, शासन की केन्द्रित अवस्थिति को बहुकेन्द्रीत व्यवस्था के पक्ष में निष्क्रिय करने की आवश्यकता है। जो केन्द्रीयवाद को कमजोर करता है और अनेक प्रकार के संस्थागत प्रबंध प्रदान करने के लिए उपभोक्ता विकल्पों को बढ़ावा देता है। यह प्रत्येक मामले (सार्वजनिक वस्तुओं) में विकल्प लोगों को प्रदान करता है जो बाज़ार, राज्य और नागरिक समाज के बीच अपनी सेवा वितरण विकल्प का चयन कर सकते हैं। ये अब लोकतांत्रिक शासन के तीन स्तंभ हैं या अपने मामलों और समस्याओं को उठाने एवं स्थानीय कार्मिकों के दायित्व लागू करने के लिए प्राप्त अधिक अधिकारों के मामले में अपनी सहायता पर निर्भर करते हैं।

विभिन्न सेवाओं के लिए आर्थिक बचत सुनिश्चित करते हुए और इकाइयों की प्रादेशिक अखण्डता सुनिश्चित करते हुए अंतर-क्षेत्राधिकार कार्यों की समस्याओं के लिए नए समाधान भी पाए गए हैं। अब शहरी शासन को गौण शहरीकरण होना एक सामान्य बात हो गई है। एक स्थिति के रूप में स्पष्ट किया जाता है कि जहाँ शहरों की सीमाओं पर आवास होने लगता है वहाँ शासन में समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। यद्यपि कनाडा, सिंगापुर, फ्रांस जैसे देशों में इन छोटे समुदायों को बड़े क्षेत्रों में मिलाने के प्रमाण हैं तो भी, अमेरिकावासियों ने अपनी बहुवादी संरचना को बनाए रखा है। राज्य काउंटियों, नगर क्षेत्रों और नगरपालिकाओं के साथ राज्य विद्यालय जिले और अन्य विशेष जिले भी बनाते हैं जो प्रादेशिक सीमाओं को पूर्ववत् रखते हुए सेवाओं की दक्षता सुनिश्चित करते हुए अंतर-क्षेत्राधिकार रूप से कार्य करते हैं। वे वित्तीय उदारता भी प्रदान करते हैं क्योंकि राज्य के सिद्धान्त स्थानीय कर्ज की सीमा रखते हैं। कभी-कभी विशेष जिले सार्वजनिक ऋणपत्र जारी करने के द्वारा व्यापक पूँजी वाली परियोजनाएँ संचालित कर लेते हैं।

17.4 बहुकेन्द्रीयता

एक बहुकेन्द्रीय व्यवस्था (Polycentricity Order) इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर देती है कि शहरी क्षेत्रों में विशेषतः विकासशील देशों में स्थानीय सामूहिक वस्तुओं को समान और दक्षतापूर्वक कैसे प्रदान और उत्पन्न किया जाए। बहुकेन्द्रीयता छोटी इकाइयों के समेकन का विकल्प प्रदान करती है जो बड़ी इकाइयों के साथ जुड़कर एकल केन्द्रीत व्यवस्था बनाती है जिसने पूरे यूरोप में और काफी हद तक अमेरिका में शहरी सुधारों का आधार बना दिया है। इसके बाद देखा गया है कि प्रत्येक सार्वजनिक वस्तु के मामले में समेकन से आर्थिक बचत प्राप्त नहीं हुई। इसकी अपेक्षा समेकनों ने एकल केन्द्रीय व्यवस्था को बढ़ावा दिया जिसने प्रशासन को दूर व अलग बना दिया और सरकारी कार्मिकों के व्यवहार को और विकृत कर दिया जिसे निंदनीय अर्थ में "भाड़ा खाने वाला" (rent seeking) या अनुचित विशेषाधिकारों पर जोर देने वाला कहा जाता है। इस प्रकार के राजनीतिक/सरकारी अधिकारों से आर्थिक लाभ उठाते हैं और इसके लिए एकल केन्द्रीत व्यवस्था में अवसर काफी बढ़ जाते हैं। इसके स्थान पर सार्वजनिक निजी सांझेदारी तथा राज्य की प्रोत्साहन सहायता से लोगों के स्वेच्छाया प्रयासों के माध्यम से विभिन्न प्रबंधों को संस्थात्मक बनाया जाना चाहिए जैसे आत्म सहायता के माध्यम से स्वच्छता व सुरक्षा प्रदान करने वाला बस्ती परिसंघ/समुदाय, राज्य के माध्यम से शिक्षा प्रदान करना, सरकारी अभिकरणों की सक्रिय सहायता से पुलिस सेवा प्रदान करना, जो सामुदयिक पुलिस सहायता या भारत में भागीदारी का प्रयोग जहाँ आवासीय कल्याणकारी संघ राज्यों की सरकारों के साथ सार्वजनिक वस्तु प्रावधान में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। इस प्रबंध को ऑस्ट्रॉम्स (Ostroms) ने सह-उत्पादन (Co-production) कहा है।

एकल-केन्द्रीत समुच्चय विचारधारा को शीर्ष निम्न विचारधारा के नाम से जाना जाता है और एलिनर और स्ट्राम के अनुसार निम्नलिखित धारणाओं पर आधारित हैं :

- "सामूहिक वस्तुएँ संजातीय होती हैं;
- महत्त्वपूर्ण आर्थिक बचत होती है।
- शहरी मतदाताओं की प्राथमिकताएँ समान होती हैं।
- मतदान के बहुमत की प्राथमिकताएँ अच्छी होती हैं।
- निर्वाचित पदाधिकारी वांछित चीजें उत्पन्न करने के लिए सरकारी कार्यालयों का नियंत्रण करते हैं।
- वस्तुएँ और सेवाएँ वितरण के लिए कार्यालय/विभाग प्रमुख निचले स्तर की नौकरशाही का नियंत्रण करते हैं।
- निचले स्तर के कार्मिक निष्क्रिय ग्रहणकर्त्ताओं को सेवाएँ प्रदान करते हैं।"

विकासशील देशों में कुछ अतिरिक्त धारणाएँ हैं जैसे :

- "सरकार को सार्वजनिक वस्तुओं का प्रबंध और उत्पादन करना चाहिए।
- सामान्य नागरिकों के पास सामूहिक कार्यवाही की समस्याओं का समाधान करने की क्षमता सीमित होती है।
- सार्वजनिक वस्तुओं की माँग करने वाले दावेदारों या लोगों और जनता का ध्यान राष्ट्रीय सरकार द्वारा रखना होता है।"

बहुकेन्द्रीय बहस/तर्क यह है कि सार्वजनिक-निजी और राज्य समुदाय के विभिन्न क्रमों और सांझेदारी से संचालित काफी संख्या में बड़े/छोटे संगठन एक अकेले अभिकरण की तुलना में अधिक दक्षता से कार्य करते हैं। प्रत्येक मामले में पसंद किया गया प्रबंध सम्बन्धित सार्वजनिक वस्तु की प्रकृति पर आधारित होना चाहिए। उदाहरण के लिए, सड़कें, शिक्षा और पुलिस विभिन्न प्रकार की चीजें हैं इसलिए इनकी व्यवस्था में एक जैसा मापदण्ड नहीं लगाया जाना चाहिए।

फिर आर्थिक तर्क भी है कि स्थानीय सरकारों को स्थानीय स्व-सरकार की सार्थक संस्थाओं में विकसित करने के लिए स्थानीय सरकारों को वित्तीय अधिकार तथा स्थानीय संस्थाओं को कार्यों को हस्तांतरण करना आवश्यक है। चूँकि सार्वजनिक वस्तुओं का निकटवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों पर भी प्रभाव पड़ता है इसलिए प्रशासन में आर्थिक बचत के द्वारा अच्छी किफायत की जा सकती है क्योंकि ग्रामीण पदचिह्नों पर चलकर शहरी कार्मिकों को अतिरिक्त कार्य सौंपे जा सकते हैं। इससे लागत न्यूनतम रखने में सहायता मिलेगी लेकिन यह तभी संभव हो सकता है जब संपर्कों को संस्थात्मक बनाने के लिए अपेक्षित कार्यकारी स्वायत्तता हो। लचीले निर्णय निर्माण/संस्थात्मक प्रबंधों के लिए एक "बहुकेन्द्रीत प्रबंध" व्यवस्था का होना आवश्यक है जिसके द्वारा उत्पादन और वितरण केन्द्रों का निर्णय क्रमशः राजनीतिक/प्रशासनिक विवशताओं/सीमाओं के द्वारा नहीं अपितु आर्थिक आवश्यकताओं के अनुसार किया जाए।

स्थानीय योजना में बहुकेन्द्रीय विकास एक महत्त्वपूर्ण संकल्पना है। यह शहरी विकास में मुख्य और सीमांत क्षेत्रों के बीच लाभदायक आर्थिक और सामाजिक प्रभाव के साथ परस्पर पूरक कार्यों की रचना करती है। इसके द्वारा अनेक स्थानों का सम्बन्ध बन जाता है ताकि वे एक नेटवर्क का निर्माण कर सके।

एक साथ कार्य करते हुए ये एक नए महत्त्वपूर्ण जन समूह को एकत्रित कर सकते हैं जो व्यवसाय, सेवाओं और सुविधाओं को स्थायी बना सकते हैं और उनमें वृद्धि कर सकते हैं। इस प्रकार बहुकेन्द्रित विकास का अभिप्रायः उन ऐतिहासिक बाधाओं को दूर करने के द्वारा नए संपर्क विकसित करना है जो राष्ट्रीय सीमाओं या स्थानीय मतभेदों अथवा दूरस्थ/कमजोर संप्रेषण के कारण उत्पन्न हुई हैं। संपर्क परिवहन या वेब के द्वारा बनाए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, शहरी परिधि पर विकसित विपणन केन्द्र से निकटवर्ती क्षेत्रों में किसानों को लाभ होता है तथा केन्द्रीय क्षेत्र में मुख्य व्यवसाय के साथ संपूर्ण क्षेत्र में अन्य व्यवसाय आरंभ हो जाते हैं (ओ डी पी एम, इंग्लैण्ड)।

संयुक्त राज्य अमेरिका का उदाहरण

भारतीय संविधान प्रकृति में संघीय होते हुए भी एकात्मक झुकाव रखता है। भारत में अवशिष्ट अधिकार केन्द्र के पास है न कि राज्यों के पास (भारतीय संविधान का अनुच्छेद 246) दूसरी तरफ संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान राष्ट्रीय सरकार को सीमित अधिकार प्रदान करता है। जबकि केन्द्रीय अवधारणाएँ/प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हैं जैसा कि ऑस्ट्रेलिया और कनाड़ा जैसे अन्य संघों में पाई जाती हैं तब भी धारणा यह है कि राष्ट्रीय सरकार के पास केवल संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार ही हैं तथा अन्य सभी अधिकार राज्यों के पास हैं। अमरीकी संविधान में स्थानीय सरकार का कोई वर्णन नही है तो भी व्यापक रूप से माना यह जाता है कि स्थानीय सरकार राज्य का मामला है न कि संघ का। इससे लोकप्रियं प्रभुसत्ता का प्रच्छन प्रभाव सामने आने लगता है जो वास्तव में व्यवहार में देखा जाता है। भारत में इससे भिन्न स्थिति है वहाँ राज्य और नागरिक दो अलग-अलग अस्तित्व हैं। व्यावहारिक संदर्भ में अमरीकी लोकतंत्र ऊपर की तरफ विकसित होती व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति और परिवार मिलकर स्थानीय समुदाय बनाते हैं जो बदले में राज्य बनाने के लिए संघबद्ध हो जाते हैं जिससे अंततः राष्ट्रीय सरकार की उत्पत्ति होती है।" इस प्रकार पूरे अमेरिका में स्थानीय सरकारों की संरचना में उन भिन्नताओं की व्याख्या की जाती है जो आवश्यकतानुसार होती है। लोकप्रिय प्रभुसत्ता की मूल भावना

को बनाए रखने के लिए स्थानीय संस्थाओं का उत्तरदायित्व भी स्थानीय होता है। स्थानीय समुदाय अपना अधिकांश राजस्व स्वयं अर्जित करते हैं और केन्द्रीय लेखा परीक्षा का कार्य एकदम सीमित है तथा सामुदायिक मामलों के राज्य विभाग स्थानीय सरकारों को केवल सेवाएँ प्रदान करने के लिए होते हैं। वे उनके संचालन को नहीं देखते।

संयुक्त राज्य अमेरिका में सामान्य उप-विभाजन काउंटी, नगर क्षेत्र या लघु क्षेत्र हैं जिन्हें कोई शासनाधिकार प्रदान नहीं किया जाता लेकिन शहरों को उनके अधिकारों/कर्त्तव्यों एवं कार्यों को विनिर्दिष्ट करते हुए शासनाधिकार प्रदान किया जाता है। काउंटियों के मुख्य कार्य हैं न्यायिक प्रशासन, सार्वजनिक सुरक्षा और चुनावों का आयोजन तो भी हाल ही के वर्षों में उन्होंने अनेक प्रकार के नए कार्य भी ले लिए हैं जैसे ठोस अपशिष्ट निपटान, जन स्वास्थ्य, पुस्तकालय, तकनीकी और सामुदायिक महाविद्यालय तथा पर्यावरण सुरक्षा।

मूलतः नगर क्षेत्र काउंटी सरकार के उप-विभाजन थे और उनका मुख्य दायित्व सड़कों का रखरखाव करना था। आज नगर क्षेत्र अनेक प्रकार से बहुत से सरकारी कार्य करते हैं जैसे पुलिस और अग्नि सुरक्षा, कचरा एकत्रित करना, मॉडल बनाना और भूमि उपयोग, पुनर्निर्माण एवं आर्थिक विकास करना। राज्य कानून प्रायः उन्हें जनसंख्या के आकार या घनत्व के आधार पर वर्गीकृत करता है। कई राज्यों में नागरिक शासनाधिकार को छोड़कर वे छोटे शहरों जैसे लगते हैं।

शहर नगर निगम होते हैं जो राज्य से प्राप्त शासनाधिकार के अंतर्गत कार्य करते हैं। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक राज्य द्वारा प्रत्येक नगर निगम को उसकी विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप शासनाधिकार प्रदान करने की प्रवृत्ति थी। उदाहरणार्थ, 1875 में मिसोरी राज्य आरंभ में राज्यों ने स्थानीय समुदायों के लिए गृह कानून प्रदान करने के लिए अपने संविधानों में परिवर्तन तक करना आरंभ कर दिए। पिनसिलवानिया के गृह कानून का संवैधानिक प्रावधान विशिष्ट है तथा प्रदान करता है कि "नगर निगमों को गृह कानून शासनादेश बनाने के अधिकार और शक्तियाँ प्रदान की जाएगी"। ऐसे शासनाधिकारों के अधीन कार्य करते हुए नगर निगम ऐसे किसी अधिकार का प्रयोग या ऐसे किसी कार्य का निष्पादन कर सकती है जिसे इस संविधान के द्वारा, गृह कानून शासनाधिकार के द्वारा या महासभा के द्वारा मना नहीं किया गया है। पेंसिलवानिया ने कानून के द्वारा गृह कानून विकल्प को काउंटियों और नगर क्षेत्रों तक भी बढ़ा दिया है।

फिर भी यह नहीं मान लेना चाहिए कि व्यवस्था में स्थानीय सरकारों का अस्थायी अस्तित्व होता है। निःसंदेह वे अखण्ड व सुव्यवस्थित हैं। वे राज्य के संविधान और कानूनों की समग्र संरचना में विद्यमान रहती हैं। जैसा अधिकांशतः अमरीकी राज्यों में है जो अमेरिका के संविधान की संरचना में अपना अस्तित्व रखते हैं। फिर भी इसमें भिन्नताएँ हैं जैसे कनेक्टिक्ट, न्यू हैम्पशायर और अनेक न्यू इंग्लैण्ड एवं मिडल एटलांटिक राज्य – न्यू मैक्सिको, इडाहो और अनेक पश्चिमी एवं दक्षिणी राज्यों जो अधिक अभिकेन्द्रित हैं से अधिक संघीय है।

कनाडा की नई विचारधारा

जैसा कि निक्क स्विट द्वारा बताया गया है कि कनाडा में संघीय और प्रान्तीय सरकारें संरचनात्मक रूप से कमोबेश एक जैसी हैं। फिर भी स्थानीय शब्द अभिकरणों के समग्र स्वरूप जैसे नगरपालिका, विद्यालय एवं अन्य विभिन्न बोर्डों, अभिकरणों एवं आयोगों तथा पुलिस, सड़क, कर संग्रहण, कूड़ा संग्रहण, पार्कों, नालों एवं जल सम्बन्धित अभिकरणों और कुछ मामलों में स्वास्थ्य एवं जन कल्याण पर लागू होता है।

सभी नगरपालिकाएँ संविधान के अनुच्छेद के अनुसार प्रांत (या प्रदेश) के द्वारा बनाई जाती हैं जो उन्हें

अन्य सरकारी संस्था को कुछ दायित्व प्रत्यायोजन करने की अनुमति देता है। कनाडा में स्थानीय नगरपालिका को आकार के अनुरूप शहर, नगर या नगर क्षेत्र का नाम दिया जाता है यह नगर सरकार का एक अन्य स्तर है जैसे काउंटी या क्षेत्र जो अपने निवासियों को सेवाएँ प्रदान करते हैं। इन तीनों नगरपालिकाओं (शहर, नगर और नगर क्षेत्र) को निम्न स्तरीय नगरपालिकाएँ भी कहा जाता है। कुछ लोग इन्हें विभक्त नगर और शहर कहते हैं ये किसी काउंटी में केवल भौगोलिक रूप से ही स्थित होते हैं।

संघ और प्रान्तीय सरकारों तथा नगरपालिकाओं के बीच श्रम विभाजन व्यावहारिकता/सुविधा और अधिकतम उपयोगिता के आधार पर किया गया है जो बहुकेन्द्रित तर्क के अनुसार है। जैसे प्राथमिक और उच्चतर शिक्षा विद्यालय बोर्डों द्वारा प्रदान की जाती है। सामान्यतः विद्यालय प्राधिकरण नगरपालिकाओं से स्वतंत्र होते हैं और प्रशासन वित्त एवं शिक्षा का स्तर बनाए रखने के लिए अपने मतदाताओं के प्रति उत्तरदायी होते हैं। वे प्रायः प्रत्यक्ष रूप से कर संग्रहण नहीं करते अपितु नगरपालिकाओं से धन की माँग करते हैं जो अपने-अपने अधिकार क्षेत्रों में संपत्ति कर एकत्रित करती हैं।

कनाडा में अभिकरणों, आयोगों और विशेष बोर्डों को भी स्थानीय सरकार का घटक समझा जाता है। इनकी संरचना नगरपालिकाओं की एक संख्या के एक समान कार्यों को करने के लिए या ऐसी विशेष सेवाएँ प्रदान करने के लिए की जाती है जिन्हें साधारण शहर या नगर सरकार के शासनाधिकार से बाहर समझा जाता है।

कनाडा के कुछ प्रान्तों में स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करने वाली इकाइयाँ स्थानीय रूप से प्रांतीय नियंत्रण में कार्य करती हैं और स्थानीय रूप से लगभग संपूर्ण जिम्मेदारी ग्रहण करती है। कल्याण के क्षेत्र में, 1920 के दशक से संघीय सरकार के कार्य के रूप में वृद्धावस्था पेंशन के रूप में वृद्धों (या कनाडा में इन्हें वरिष्ठ नागरिक कहा जाता है) की देखभाल की जाती है। धीरे-धीरे संघीय और प्रांतीय सरकारों ने ऐसी अन्य कल्याणकारी सेवाओं की जिम्मेदारी ग्रहण कर ली है क्योंकि वे अपेक्षा के रूप में स्थानीय इकाइयों की क्षमता से परे समझी जाती हैं।

फ्रांस में विकेन्द्रीकरण की प्रतिबद्ध प्रक्रिया के द्वारा प्रशासन को लोगों के नजदीक लाने का प्रयास किया जा रहा है और कानून द्वारा इसे पूरा किया जा रहा है। फ्रांसीसी प्रशासन स्थानीय सरकारों के मुकाबले अत्यधिक अभिकेन्द्रित रहा है। 2 मार्च 1982 के विकेन्द्रीकरण कानून से विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया आरंभ होने से स्थिति में अत्यधिक परिवर्तन हुआ है। राष्ट्रीय स्तर पर और स्थानीय संस्थाओं द्वारा भी अपने अधिकारों से लिए गए प्रशासनिक निर्णयों का पालन किया जाता है। इससे केन्द्र और स्थानीय संस्थाओं के बीच प्रशासनिक एवं बजट सम्बन्धी कार्य विभाजन से निर्णय-निर्माण में स्वायत्तता बढ़ गई है।

17.5 भारत के लिए शिक्षा

तिवारी (2005) के अनुसार, संवैधानिक संशोधनों के अनुसार अंतर-स्तरीय विभाजन करना विशेष रूप से काफी नहीं है। राज्य सरकारों के विवेक पर बहुत कुछ रह गया है। नगरनिगम, परिषदें और नगर पंचायतें हैं। इस आधार पर उनकी संरचना से या तो एकल केन्द्रित स्पष्ट होगा अथवा बहुकेन्द्रीयता के माध्यम से नागरिक भागीदारी को प्रोत्साहन मिलेगा। तिवारी के अनुसार संवैधानिक (74वाँ संशोधन) अधिनियम के अंतर्गत शहरी स्थानीय संस्थाओं को सौंपी गई नई जिम्मेदारी उनके द्वारा पूरी करने के लिए विद्यमान नगरपालिका कानून पूरी तरह अपर्याप्त है। यद्यपि राज्य सरकारों ने 74वें संविधान संशोधन अधिनियम के पालन में नगरपालिका कानूनों को संशोधित किया है तथापि संशोधित अधिनियम स्थानीय संस्थाओं विशेषतः शहरी संस्थाओं को नगर योजना सहित कोई विशेष कार्य नहीं

सौंपते। तिवारी के अनुसार शहरी स्थानीय संस्थाओं को एक अभिकरण के रूप में भागीदारी, कार्यान्वयन और लागू करने की योजना बनाने में निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं :

1) सरकार के विभिन्न स्तरों में कार्य दायित्वों और सम्बन्धों का स्पष्ट विभाजन ताकि शहरी स्थानीय संस्थाओं को धन हस्तांतरित करने के अपने संवैधानिक कार्य करने में राज्य वित्त आयोगों को निम्न और शीर्ष स्तर पर जिम्मेदारी सुनिश्चित करने के योग्य बनाया जा सके।

2) राज्य और केन्द्र सरकारों के साथ नगरपालिका के कार्यों को आवश्यक कार्य, अभिकरण कार्य तथा संयुक्त कार्यों में विभाजित करना।

3) "अनिवार्य" और "स्वविवेकाधीन" कार्यों के बीच पारंपरिक विभाजन से बचना क्योंकि ऐसा विभाजन अनिश्चितता और नगरपालिका के उत्तरदायित्व की अपारदर्शी व्यवस्था उत्पन्न करता है।

4) शहरी योजना बनाना जिसमें नगर योजना, भूमि उपयोग विनियमन तथा भवनों का निर्माण करना और आर्थिक एवं सामाजिक विकास की योजना बनाना तथा नगरपालिका अधिनियमों में संशोधन करना नगरपालिका के अनिवार्य कार्यों में शामिल है।

17.6 अंतर-स्तरीय कार्य विभाजन की आवश्यकताएँ

तिवारी (2005) के अनुसार अधिक गतिशील शहरी योजना कार्य के लिए अंतर-स्तरीय योजना उत्तरदायित्वों के विभाजन के संदर्भ में निम्नलिखित संशोधन करने की आवश्यकता है:

1) **लचीलापन:** हमेशा प्रगतिशील और शहरी सीमाओं के विस्तार के लिए तथा निवासियों को अच्छी जीवनशैली प्रदान करने के लिए योजनाओं का लचीलापन होना आवश्यक है। योजना को न केवल विद्यमान आवश्यकता को पूरा करने वाली अपितु भावी बदलती परिस्थितियों के प्रति भी संवेदनशील होने के लिए लचीला होना चाहिए।

2) **कर्त्ताओं की भूमिका :** नीतियाँ बनाने, सम्बन्धित योजना, विकास योजना और वार्षिक योजना निर्माण में नगर परिषदों/निगमों तथा वार्ड समितियों में निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करनी चाहिए।

3) **सूचना प्रणाली :** एक सुसज्जित सूचना प्रणाली ही विभिन्न/सम्बन्धित क्षेत्रों से प्राप्त विवरणों के आधार पर शहरी विकास में बदलते परिदृश्य के अनुसार योजना कार्यान्वयन की विभिन्न अवस्थाओं पर योजना प्रस्तावों का सही समन्वय कर सकती है।

4) **शहरीकरणीय क्षेत्र:** विकसित की परिधि में स्थित क्षेत्रों की विकास संभावनाओं का मूल्यांकन किया जाए। वहाँ पर विकास संभावनाओं का विवरण तथा विद्यमान आधारभूत सुविधाओं को आशावादी बनाने के लिए इन क्षेत्रों के विकास की प्राथमिकताओं का निर्णय किया जाना चाहिए।

5) **प्रगति केन्द्र:** संसाधनों के अभाव में चुने गए मध्यवर्ती शहरों, प्रगति केन्द्रों और उनके भीतरी क्षेत्रों में कार्यनीतिगत विकास प्रयासों को बढ़ावा देना सुविधाजनक और अभीष्ट होगा। प्रगति केन्द्रों में आधारभूत सुविधाओं की अवस्थिति और पर्यावरणीय सेवाएँ विकास योजना का केन्द्र बिन्दु बना सकती है।

6) **नीति मार्गदर्शन:** कानून के अंतर्गत अधिसूचित मार्गदर्शन प्राथमिकता क्षेत्रों की पहचान करने और सामान्यतः योजनाओं और प्रशासन में परवर्ती संशोधन करने में सहायता कर सकते हैं।

7) **मिश्रित भूमि उपयोग:** विकास प्रदान करने के विचार से खण्ड (Zone) बनाने के नियंत्रण को

सरल करने की आवश्यकता है। किसी भी प्राधिकरण के द्वारा भूमि उपयोग पैकेज को बदलने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। केवल शहर/नगर क्षेत्र पर विकास योजना की समीक्षा के भाग में बदलने की अनुमति दी जा सकती है।

8) **वित्तीय योजना:** भूमि विकास और आधारभूत निवेश को भौतिक, वित्तीय और निवेश योजनाओं के संघटन से समन्वित करने की आवश्यकता है। राजस्व जनावृद्धि पर ध्यान केन्द्रित करते हुए स्थानिक विकास योजना को संसाधन गतिशीलता के साथ जोड़ने की आवश्यकता है।

9) **सेवाएँ और पर्यावरण:** संपूर्ण शहर में उपलब्ध जल, नाले और स्वच्छता में अधिक समानता प्रदान करने के लिए सेवाओं को उन्नत करने हेतु शहरी योजना के सफल होने की पूरी संभावना रहती है।

10) **अनौपचारिक क्षेत्र की आवश्यकताएँ:** योजना अनौपचारिक क्षेत्र की आवश्यकता पूरी करने वाली होनी चाहिए ताकि उन्हें शहरी विकास प्रक्रिया का एक अभिन्न हिस्सा बनाया जा सके।

11) **भू-नीति एवं प्रबंध:** बलात् भूमि अधिग्रहण करने और क्षतिपूर्ति की कम दर सम्बन्धित विषय के विपरीत शहरी स्थानीय संस्थाओं को विद्यमान कानूनी संरचना में सहयोगी विचारधाराएँ अपनानी चाहिए।

12) **कानूनी ढाँचा:** योजना कार्यान्वयन के लिए एक कानूनी ढाँचे की आवश्यकता होती है ताकि इसको प्रवर्तनीय और शासनादेश बनाया जा सके। कानूनी ढाँचे के पीछे एक प्रभावशाली और दक्ष तंत्र प्रणाली का होना आवश्यक है जो यह देखेगा कि आधारभूत स्तर पर मुख्य योजना प्रस्तावों में कोई विकृति न आए।

13) **मानक:** भूखंड के साइज, नक्शा और सामाजिक खर्चों को इस प्रकार बनाने की आवश्यकता है ताकि विभिन्न आय समूहों के द्वारा वहन करने के लिए लागत को कम किया जा सकें तथा विभिन्न मूल्यों के द्वारा निम्न आय समूहों के लिए विक्रय मूल्य भी कम किया जा सके।

14) **भवन निर्माण उपनियम:** शहर/नगर के लिए भवन निर्माण उपनियम और जोन विनियमन स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप होने चाहिए। फिर भी, विद्यमान उपनियमों को सरल और पारदर्शी बनाने की आवश्यकता है और इसमें स्वनिर्णय अधिकार नहीं होना चाहिए। वाहन खड़ा करने की सुविधा का पर्याप्त प्रावधान बनाना चाहिए।

15) **महानगर, जिला और राज्य स्तरों पर डाटाबेस:** योजना कार्य में निरंतर विवरण एकत्रित करने, व्याख्या का विश्लेषण करने और विवरण अद्यतन करने की आवश्यकता है। भौगोलिक सूचना प्रणाली (Geographical Information System; GIS) वातावरण में कम्प्यूटरीकृत डाटाबेस और सूचना विभिन्न स्तरों पर विकसित की जानी चाहिए जिसमें विकास योजना निर्माण में योजनाकारों को सहायता मिलेगी।

16) **मानदंडों और प्रक्रियाओं का सरलीकरण:** विकास योजनाओं की तैयारी 12 महीने में पूरी हो जानी चाहिए तथा उनका अनुमोदन 3 मास के अंदर हो जाना चाहिए एवं अनुमोदन के बाद योजना की तैयारी और अनुमोदन में 18 मास से अधिक समय नहीं लगना चाहिए। नगर योजना विभागों के निदेशक की सलाह से विकास योजनाओं का अनुमोदन अधिकार शहरी स्थानीय निकायों (Urban Local Bodies; ULB) के पास होना चाहिए। सम्बन्धित योजना निदेशक, नगर योजना के माध्यम से राज्य सरकार से भी अनुमोदित कराई जानी चाहिए।

17) **योजना तंत्र और संस्थाओं को मज़बूत बनाना:** विभिन्न योजनाओं की व्याख्या, भविष्य और

आकार स्पष्ट करने के द्वारा अंत-लाभकारी योजनाओं के निर्माण के लिए नगर और देश के योजना अधिनियमों को संशोधित करने की आवश्यकता है।

18) **प्रशासनिक और तकनीकी क्षमताओं को मज़बूत बनाना:** शहरी स्थानीय निकायों की प्रशासनिक, तकनीकी, प्रबंधन और वित्तीय क्षमताओं को मज़बूत बनाने की आवश्यकता है। अच्छे समन्वय के लिए शहरी स्थानीय निकायों और नगर योजना विभागों को राज्य के एक ही विभाग के अंतर्गत कार्य करने की आवश्यकता है। इसके साथ लागत वसूल करने की प्रक्रियाओं और राजस्व संग्रहण पद्धतियों को भी मज़बूत बनाना आवश्यक है।

17.7 सारांश

यद्यपि इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों का संघटित विकास करना महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि दोनों क्षेत्रों में घनिष्ठ सम्बद्वता हो तो ही बहुकेन्द्रीयता से दक्षता का मूल उद्देश्य पूरा होगा। यह नहीं माना जा सकता कि बड़ा (क्षेत्र) अच्छा होता है। इसलिए आवश्यकतानुसार किसी भी वस्तु/सेवा के सर्वोत्तम अधिकतम उत्पादन/व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिए बहुकेन्द्रवादिता की भावना में स्तरों के बीच अनेक प्रबंध किए जाने चाहिए। इसके लिए शीर्षवत् शीर्ष क्रम की अपेक्षा सामूहिक प्रबंध करना आवश्यक होगा। ऐसा नव परिवर्तन सुनिश्चित करेगा कि उद्देश्य के साथ, 74वें संवैधानिक संशोधन के उद्देश्य के साथ तथा भारतीय संविधान की ग्यारहवीं एवं बारहवीं अनुसूची में वर्णित मदों के साथ न्याय किया गया है। 74वें संशोधन में शामिल न होने वाले कार्यों के बावजूद ये गाँवों में कार्मिकों को व्यस्त रखेंगे।

17.8 मुख्य अवधारणाएँ

छावनी (Cantonment) : छावनी शब्द का अर्थ है कार्य करने वाले (सैन्य) दलों के लिए अस्थाई आवास। ऐतिहासिक रूप से ये स्थान राजाओं के साथ समझौते के अंतर्गत क्रय और विजय के माध्यम से प्राप्त किए जाते थे। स्थानीय सरकार के इस रूप में निर्वाचित तत्व का कोई महत्त्व नहीं है क्योंकि छावनी का प्रशासन पूरी तरह सेना के द्वारा किया जाता है। जब कोई सैन्य अड्डा स्थापित किया जाता है तो ऐतिहासिक रूप से छावनी सैन्य कार्मिक परिवारों के आवासीय प्रबंध के रूप में विकसित हुई है। धीरे-धीरे यह सिविल क्षेत्र के रूप में विकसित हो गया क्योंकि निवासियों के लिए सभी बुनियादी सुविधाएँ जैसे विद्यालय, जलपान गृह आदि बनाए गए।

अनुपूरकता (Complementarity) : एक क्षेत्र पर दूसरे क्षेत्र की प्रधानता के स्थान पर उदाहरण के तौर पर अंतर कार्य क्षेत्र संगठनों द्वारा अप्रिय विषय और परिधि तथा परस्पर लाभभोगी भूमिकाएँ ले ली जाती हैं जिससे प्रतिस्पर्धा के नकारात्मक पक्ष समाप्त हो जाते हैं और सकारात्मक पक्ष बने रहते हैं। यूरोपीय संघ में अनुपूरकता स्थानीय योजना का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है।

मुख्य परिधि/सीमा (Core-Periphery) : मुख्य परिधि/सीमा विकास का पारंपरिक स्वरूप है जिसे अभिकेन्द्रित घेरे के रूप में उद्धृत किया जा सकता है।

अपेक्षाकृत बृहत घेरों में अर्थात् बाहरी सीमांत की तरफ विकास स्तर काफी कम हो जाता है। बहुअभिकेन्द्रिता के परिप्रेक्ष्य में अनुपूरकता के नए तरीके शहरी योजना के पारंपरिक स्वरूपों में परिवर्तन कर रहे हैं।

अधिसूचित क्षेत्र समितियाँ (Notified Area Committees) : इन संस्थाओं को अधिसूचित नाम प्रदान किया गया है क्योंकि इनके गठन को सरकारी राजपत्र में अधिसूचित किया जाता है। ऐसी समिति सरकारी राजपत्र में अधिसूचित नगरपालिका अधिनियम के इस पर लागू होने वाले प्रावधानों के अंतर्गत सभी कार्य करती है। सरकार इसे किसी अन्य अधिनियम के अंतर्गत आने वाले अन्य कार्य भी सौंप सकती है। अधिसूचित क्षेत्र समिति को नगर परिषद के सभी अधिकार प्राप्त होते हैं परन्तु परिषद से भिन्न राज्य सरकार इसके अध्यक्ष सहित सभी सदस्यों को नामित करती है जिससे ये पूरी तरह नामित संस्थाएँ बन जाती हैं।

लोक विकल्प (Public Choice) : लोक विकल्प समूह के कार्यों की प्रगति जानने और लक्षित नीति प्रतिक्रियाओं के माध्यम से लोगों के सहयोगी व्यवहार को बढ़ाने के तरीके ढूँढ़ने का एक प्रयास है। राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र और लोक प्रशासन तथा मनोविज्ञान के अनुसंधानकर्त्ता शैक्षणिक नियमों की शैक्षिक जाँच एवं वैधता की जाँच में मुख्यतः शामिल रहते हैं क्योंकि वे अनुसंधान से प्राप्त होते हैं।

स्थानिक/स्थानीय योजना (Spatial Planning) : मुख्यतः स्थानिक/स्थानीय योजना उस स्थान से सम्बन्धित है जहाँ विकास होता है। यह परिवहन, कृषि, अनुसंधान और विकास या पर्यावरण सुरक्षा जैसे क्षेत्रों में निवेश को संघटित करती है ताकि स्थायी विकास किया जा सके (ओ डी पी एम, यू.के.)।

नगर क्षेत्र समितियाँ (Town Area Committees) : नगर क्षेत्र समितियाँ राज्य सरकारों द्वारा पारित अलग अधिनियमों द्वारा बनाई जाती हैं, यद्यपि असम में ये असम नगरपालिका अधिनियम, 1961 के प्रावधानों के अंतर्गत कार्य करती है। जिला समाहर्ता को नगर क्षेत्र समिति पर नजर रखने और नियंत्रण रखने के अधिकार प्रदान किए गए हैं। नगर क्षेत्र समिति के सदस्य निर्वाचित या राज्य सरकार द्वारा नामित अथवा आंशिक निर्वाचित और आंशिक नामित किए जाते हैं। समिति को गली की लाइटें लगाना, जल-मल निकास और सफाई जैसे सीमित कार्य दिए जाते हैं।

17.9 संदर्भ व अन्य लेख

कैट्ज, एलीस, 1999, "लोकल सेल्फ-गवर्नमेंट इन दी यूनाइटेड स्टेट्स", *यू एस आई एस, इश्यूज ऑफ डेमोक्रेसी।*

मेयराज, फाहीम, "यू एस वोटर्स आर नॉट कनविंस्ड दैट बिग इज बैटर इन लोकल गवर्नमेंट", लोकल गवर्नमेंट एडवाइजर, एट सिटी मेयर्स गवर्नमेंट (ऑनलाइन)।

नंदिनी दुर्गेश, 2005, *रिलेशनशिप बिटवीन पॉलिटिकल लीडर्स एंड एडमिनिस्ट्रेटर्स*, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

नायक, प्रमोद कुमार, एस. सेन और जी. एस. मनसुखलाल, 1997, *यूनिक क्यूटिसेन्स ऑफ इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन*, यूनिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

ऑस्ट्रोम, एलिना, अमॉस स्वेयर, 2005, "पोलीसेन्ट्रिक ऑर्गनाइजेशन, रिक्वीजिट फॉर सोलाविंग अरबन प्रॉब्लम्स" वर्कशॉप इन पॉलिटिकल थियोरी एण्ड पालिसी एनालाइसिस" इंडियाना यूनिवर्सिटी।

पोलीसेन्ट्रिक स्कोपिंग स्टडी", वेबसाइट http://www.odpm.gov.uk

स्टीवन्स, एन्ड्रयू (राजनीतिक सपादक), "लोकल गवर्नमेंट इन जापानः ए वैरायटी ऑफ टैक्सस फंड्स जापान'स परफेक्चर्स एण्ड म्यूनिसिपेलिटिज" एट सिटी मेयर्स गवर्नमेंट वेबसाइट http://www.citymayors.com

स्विफ्ट निक और गे केरवेल्ला, (यूरोपियन संपादक), "ए कॉम्पलेक्स सिस्टम एम्स टू ब्रिंग फ्रेंच लोकल गवर्नमेंट क्लोसर टू द पीपल", एट सिटी मेयर्स गवर्नमेंट (ऑनलाइन)।

स्विफ्ट निक, "कनाडा ऑफर्स इट्स पीपल एन एरे ऑफ लोकल गवर्नमेंट्स", एट सिटी मेयर्स गवर्नमेंट, फेडरेशन ऑफ कनाडियन म्यूनसिपिलटीज, वेबसाइट http://www.fcm.ca

तिवारी, डी. पी., 2005, "चैलिन्जिस इन अर्बन प्लानिंग फॉर लोकल बोडिज इन इंडिया", वेबसाइट http://www.gisdevelopment.net

अर्बन इंफ्रास्ट्रक्चर वेबसाइट http://www.budget.nic.in

अर्बन गवर्नेंस इन पंजाब, ए स्टडी इन दी कन्टेक्स्ट ऑफ दी कंस्टीट्यूशन (74थ अमेंडमेंट एक्ट, 1992), 1998, इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साईन्स मैनुस्क्रिप्ट रिपोर्ट, 10, नई दिल्ली।

17.10 अभ्यास

1) बहुकेन्द्रीयता से आप क्या समझते हैं? अंतःस्तरीय स्थानीय सरकार के सम्बन्धों में मुख्य मुद्दों की पहचान कीजिए।

2) सरकार के विभिन्न स्तरों और शहरी स्थानीय सरकार के विभिन्न स्तरों के बीच कार्य दायित्वों के विभाजन एवं सम्बन्धों का वर्णन कीजिए।